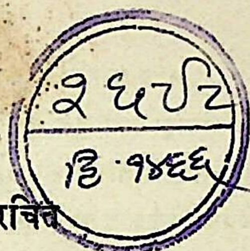
3.6 v





महाकवि-रत्नाकरवर्णि-विरचित

भरतेश-वैभव

(योगविजय-मोक्षविजय-अर्ककीर्तिविजय)

तृतीय-चतुर्थ-भाग

-संपादक, अनुवादक व प्रकाशक-

श्री वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

(विद्यावाचस्पति, न्यायकाव्यतीर्थ)

(संपादक-विश्वबंधु, मंत्री मुंबई परीक्षालय, श्री आ. कुंथुसागर ग्रंथमाला आदि, कल्याणकारक (वैद्यक), दानशासन, शतकत्रय, कषायजयभावना, आदि ग्रंथोंके संपादक)

द्वितीयावृत्ति	१९५३	मूल्य
१०००	फरवरी	५)

संपादकीय निवेदन

आज पाठकोंके करकमलोमें भरतेश वैभवके तीसरे, चौथे भागकी द्वितीयावृत्तिको देते हुए हमें परमहर्ष होता है। क्योंकि बहुत समयसे वे इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। इसके प्रकाशनमें कुछ अपरिहार्य कारणोंसे विलंब हुआ। इस विवशताके लिए वे हमे क्षमा करेंगे।

पहिले भागमें भोगविजय, दूसरे भागमें दिग्विजय, तीसरे भागमें योगविजय और चौथे भागमें मोक्षविजय और अर्ककीर्तिविजय नामक दो कल्याण लिये गये हैं। इस प्रकार पंचकल्याणकी परिसमाप्ति हुई है। इन पंचकल्याणोंको भक्तिसे पठन करनेवाले, सुननेवाले एवं सुनकर प्रसन्न होनेवाले भव्य नियमसे पंचकल्याणोंके अधिकारी होकर मोक्ष-साम्राज्यमें पहुंचते हैं। क्योंकि यह आदि भगवान्‌के आदिपुत्र त्रिषष्टि शलाका पुरुषोमें सर्वश्रेष्ठ भरतेश्वरका चरित्र है। इसी सद्भावनावश हमने इस ग्रंथको यथाशक्ति हिंदी पाठकोंके समक्ष रखनेका यत्न किया है। इसमें हमारा कोई स्वार्थ, लाभ व ख्यातिकी अपेक्षा नहीं है। इसमें प्रमाद वश कुछ दोष रहे भी होंगे। उनका उत्तरदायित्व मुझपर है। और गुणोंका श्रेय मूल लेखकको मिलना चाहिये। यह हम पहिलेसे निवेदन कर चुके हैं कि हमने शब्दशः अनुवाद नहीं किया है। भावको प्रधानता दी गई है। कहीं २ अतिश्रृंगार व वर्णनात्मक विषयको संक्षिप्त करनेका भी यत्न किया गया है।

काव्यकी लोकप्रियता इसीसे स्पष्ट है कि अभीतक इस ग्रन्थके सर्व भागकी दो दो आवृत्तियां प्रकाशित हो चुकी हैं। और प्रति नित्य इसके स्वाध्यायकी आकांक्षा जनसाधारणमें ही नहीं, विद्वानोंमें भी बढ रही है। यही इसके लिए सबल प्रमाण है। आशा है पाठक पूर्वभागोंके अनुसार ही इसका भी स्वाध्यायकर ज्ञानार्जन करेंगे।

विनीत—

सोलापुर
फाल्गुन सुदी २
सं. २४७९

वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

भरतेश-वैभव ।

तृतीय भाग ।

योगविजय ।

श्रेण्यारोहणसंधि

परमपरंज्योति, कोटिचंद्रादित्य किरणसुज्ञानप्रकाश ।
सुरमकुटमणिरंजितचरणाब्ज शरणश्री प्रथमजिनेशः ॥

त्रिकरण योगोंके होनेपर भी रागादि परिभवोंके न होनेसे बंध-रहित योगविजय हे वीतराग निरंजनसिद्ध ! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये ।

सम्राट् भरतने अब षट्खंडको अपने वशमें कर लिया है । भूमंडलपर उनका कोई शत्रु नहीं है । एक छत्रमें अब इस धात्रीको वे मित्रभावसे पालन कर रहे हैं ।

योग्य वयमें आये हुए अपने पुत्र, पुत्रियोंका विवाह करते हुए, अपने पुत्र पौत्रोंके साथ प्रेम करते हुए एवं अपनी प्रिय पत्नियोंके साथ लीला विलास करते हुए वह पुण्यशाली अपने समयको बडे आनंदसे व्यतीत कर रहे हैं ।

दिन दिनमें नये नये शुभ समाचार मिलते हैं । प्रतिदिन महलमें कोई मंगल कार्य चलता है । बार २ नये २ आनंद विलास होरहे हैं, इस प्रकार वे अपने सातिशय पुण्यके फलको आत्मसाक्षीमें अनुभव करके उसे आत्मक्षेत्रसे कम कर रहे हैं ।

एक दिनकी बात है, भरतजी आनंदसे महलमें विराजे हैं। एक दूतने आकर समाचार दिया कि कच्छ और महाकच्छ योगीको केवलज्ञान हुआ है। कच्छ और महाकच्छ योगी खास भरतजीके मामा हैं, इसलिए उनको यह समाचार सुनते ही बडा हर्ष हुआ। पट्टरानी सुभद्रादेवी हर्षके मारे नाचने लगी, माता यशस्वतीके आनंदकी सीमा ही नहीं, इस प्रकार महलमें आनंद ही आनंद हो रहा है।

इतनेमें अनंतवीर्य मुनिको भी केवलज्ञान होनेका समाचार मिला। अनंतवीर्य भरतके छोटे भाई थे। भरतजी पुनः हर्षभरित हुए। समाचार जो लाया था उसे रत्नवस्त्रादिक खूब इनामें दिए गए। इसीका नाम तो है धर्मानुराग। भरतजीके हृदयमें वह धर्मानुराग कूटकूट कर भरा हुआ था यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है?

इतनेमें उन आये हुए सज्जनोंसे यह पूछा कि हमारे भुजबलि योगींद्र कैसे हैं? तब वे कहने लगे कि स्वामिन्! वे कैलासपर्वतको छोडकर गजविपिन नामक घोर अरण्यमें तपश्चर्या कर रहे हैं। उनके तपका वर्णन भी सुन लीजिये।

जबसे उन्होंने दीक्षा ली है तबसे वे भिक्षाके लिए नहीं निकले हैं, वृक्षशोषण करने योग्य धूपमें खडे होकर आत्मनिरीक्षण कर रहे हैं। एक दफे मिची हुई आखें पुनः खुली नहीं, एक दफे बंद की हुई ओठें पुनः खुली नहीं, दीर्घकाय कायोत्सर्गसे दृढ होकर खडे हैं, लोक सब आश्चर्यके साथ देख रहा है।

उनकी चारों ओर बंबई उठ गई है, लतायें सारे शरीरमें व्याप्त हो गई हैं, अनेक सर्प उनके शरीरमें इधर उधर जाते हैं, परंतु वह योगींद्र चित्तको अकंप करके पत्थरकी मूर्तिके समान खडा है।

यह सुनकर भरतजीको भी आश्चर्य हुआ। दीक्षा लेकर एक वर्ष होनेपर भी तबसे मेरुके समान खडा है। भगवान् ही जाने उसके तपोबलको। इतनी उग्रता क्यों? इन सब विचारोंकी भगवान् आदि-

नाथसे ही पूछेंगे, इस विचारसे भरतजी एकदम उठे व विमानारूढ होकर आकाश मार्गसे कैलासपर्वतपर पहुंचे, समवसरणमें पहुंचकर पिताके चरणोंमें भक्तिसे नमस्कार किया। तदनंतर कच्छ केवली, महाकच्छ केवली व अनंतवीर्यकेवलीकी वंदना की, एवं बादमें भगवान् वृषभ की भक्तिसे पूजाकर उन तीनों केवलियोंकी भी पूजा की। स्तुति की। भक्तिपूर्वक विनय किया और अपने योग्य स्थानमें बैठकर प्रार्थना करने लगे कि भगवान् बाहुबलि योगीके कर्मकी इतनी उग्रता क्यों ? अत्यंत घोर तपश्चर्या करने पर भी केवल ज्ञानकी प्राप्ति क्यों नहीं हो रही है ?

तब भगवान्ने भरतजीसे कहा कि हे भव्य ! घोर तपश्चर्या होने मात्रसे क्या प्रयोजन ? अंतरंगमें कषायोंके उपशमकी आवश्यकता है। इस चंचल चित्तको आत्मकलामें मिलानेकी आवश्यकता है।

क्रोध, मान, माया और लोभके बोधसे जो अंदरसे बेध रहे हैं उनको बोधकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ? उसके लिए अपने चित्तको निर्मल करके आत्मसमाधि में खडे होनेकी जरूरत है।

बाहरके सर्व पदार्थोंको छोड सकते हैं। परंतु अंतरंगके शल्य को छोडना कठिन होता है। कपडेको छोडने मात्रसे तपस्वी नहीं होता है। सर्प कांचलीको छोडनेपर क्या विषरहित होता है ? कभी नहीं।

मनकी निर्मलता होनेपर ही आत्मसुखका लाभ होता है। उस की प्राप्ति मुनियोंको भी कठिनतासे होता है। पर इतने बडे राज्यका भार होते हुए भी तुम्हारे लिए वह आत्मसुख सहज मिला।

भरत ! सुनो, धानके छिलकेको निकालकर जिस प्रकार चावल पकाया जाता है उसी प्रकार पंचेंद्रियसंबंधि विषयोंको त्याग कर सब आत्मनिरीक्षण करते हैं। परंतु तुम उस पंचेंद्रिय विषयके बीचमें रहते हुए भी आत्माको निर्मल बना रहे हो, इसलिए तुम ऋषियोंसे भी श्रेष्ठ

हो। चावलके भूसेको अलग करके केवल सफेद चावलको जिस प्रकार पकाया जाता है उसी प्रकार शरीरके वस्त्रको छोडकर आत्मध्यान कुछ लोग करते हैं। परंतु तुम तो शरीरका वस्त्रादिसे शृंगारकर ध्यान करते हो।

अंतरंगकी शुद्धिके लिए बाह्यवस्तु संततिका कोई परित्याग करते हैं। परंतु कोई बाह्य वस्तुवोंके होते हुए उनमे भ्रांत न होकर अंतरंग से शुद्ध होते हैं।

आभूषणोंको पहनकर आत्मध्यान करते हुए आत्मसुखको प्राप्त करने वाले भूषणसिद्ध हैं, कोई२ भूषणोंको त्याग कर आत्मसंतोष धारण करते हैं।

हम सबने बाह्य पदार्थोंको छोडकर आत्मध्यानमें केवलज्ञानको प्राप्त किया। और तुम तो बाह्य पदार्थोंके बीचमें रहते हुए भी आत्म सुखका अनुभव कर रहे हो, इसलिए तुम धन्य हो।

जिन नहीं कहलाकर, तपस्वी नहीं कहलाकर अनुदिन आत्मानुभवमें मग्न होकर उस आत्मसिद्धिको पारहे हो, तुम भाग्यशाली हो।

तब भरतजीने विनयसे कहा कि स्वामिन्! आपके ही प्रसादसे उत्पन्न मेरे लिए कैवल्यकी सिद्धि हो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है। यह सब आप ही की महिमा है! ठीक है। कृपानिधान! कृपया यह बतलावें कि बाहुबलि योगीके अंतरंगमें क्या है? हे चिद्मलेक्षण व चित्प्रकाशक! मुझे उसे जाननेकी उत्कंठा है।

उत्तरमें भगवान्ने अपने दिव्यवाणीसे फरमाया कि "हे भरत! जब वह बाहुबलि तुमसे अलग होकर आया तब उसने कुछ कटु वचन सुना, उस कारणसे उसके हृदयमें क्षोभ उत्पन्न हुआ, अतएव तपोभारको प्राप्त किया है। तुम्हारे दो मित्रोंने उसे कहा कि हमारे राजाके राज्यके अन्नपानको छोडकर और कहां तपश्चर्या करोगे? जावो, इस प्रकार कहनेके बाद वह खिन्न मन होकर चला गया। यहां आकर उसने दीक्षा ली। मोक्षमार्गका उपदेश सुना, बादमें आत्म-निरीक्षण करनेके लिए जंगल चला गया। परंतु वहांपर भी मनमें

शल्य है कि यह क्षेत्र चक्रवर्तिका है। इसलिए उसने मनमें निश्चय किया है कि इस भरतके क्षेत्रमें अन्नपानको ग्रहण नहीं करूंगा। समस्त कर्मोंको जलाकर एकदम मुक्तिको ही जाऊंगा, इस विचारसे वह खडा है। अतएव गर्वके कारणसे ध्यानकी सिद्धि नहीं हो रही है।

पर्वतके समान खडा होनेपर क्या होता है, परंतु गर्वगलित नहीं होता है, तुह्मारे राज्यपर खडा हूं, इस बातका शल्य मनमें होनेसे आत्मनिरीक्षण नहीं हो रहा है। भरत! व्यवहारधर्म उसे सिद्ध है, परंतु निश्चयधर्मका अवलंब उसे नहीं हो रहा है। जरा भी कषायांश जिनके हृदयमें मौजूद हो उनको वह निश्चयधर्म साध्य नहीं हो सकता है। एक वर्षसे उपवासाग्नि व कषायाग्निसे जल रहा है, परंतु कुछ उपयोग नहीं हुआ, आज तुम जाकर वंदना करोगे तो उसका शल्य दूर होता है, और ध्यानकी सिद्धि होती है। आज उसके घातिकर्म नष्ट हो जायंगे। उस मुनिको केवलज्ञान सूर्यका उदय होगा। इसलिए " तुम अब जावो " इस प्रकार कहनेपर भरतजी वहांसे गजविपिन तपोवनकी ओर रवाना हुए।

बडे भारी भयंकर जंगल है, सर्वत्र निस्तब्धता छाई हुई, आगके समान संतप्त धूप है। अपनी दीर्घ भुजावोंको छोडकर आंखोंको मीचकर अत्यंत दृढताके साथ बाहुबलि योगी खडे हैं। भरतजीको आश्चर्य हुआ।

तीव्र धूपमें खडे हैं, शरीरतक वंबई उठी है, धूपसे लतायें सूख कर शरीरमें चुभने लगी है। विद्याधरी स्त्रियां ब्राह्मी और सुंदरीके रूपको धारण कर उन लतावोंको अलग कर रही हैं।

सज्जनोत्तम भरतजीने उसे दूरसे देख लिया व " भुजबलि योगीश्वराय नमो नमो विज्ञरात्मने नमोस्तु " इस प्रकार कहते हुए उनके चरणोंमें मस्तक रक्खा। तदनंतर मुनिराज बाहुबलिके सामने खडे होकर इस प्रकारके वचनोंका उच्चार किया जिससे वह दुष्ट कर्म घबराकर भाग जावे। भरतजीने कहा—

गुरुदेव ! आपके मनमें क्या है यह सब कुछ मैं पुरुनाथसे जान कर आया हूं। इस पृथ्वीको आप मेरी समझ रहे हैं यह आश्चर्यकी बात है। जिस पृथ्वीको अनेक राजावोंने पहिले भोग लिया है और जिसका शासन वर्तमानमें मैं करता हूं, भविष्यमें दूसरे कोई करेंगे, ऐसी वेश्यासदृश इस भूनारीको आप मेरी समझ रहे हैं। क्या यह बुद्धिमानोंको उचित है ?

योगिराज ! विचार करो, छिपानेकी क्या बात ? जिस समय षट्खंडको विजयकर मैं वृषभाद्रिपर विजयशासनको लिखनेके लिए गया था वहांपर मेरा शासन लिखनेके लिए जगह नहीं थी। सारा पर्वत पूर्वके राजावोंके शासनसे भरा हुआ था, फिर मुझे एक शासनको उससे घिसाकर मेरा शासन लिखवाना पडा, ऐसा अवस्थामें इस पृथ्वीको आप मेरी कहते हैं क्या ? इस जमीनकी तो बात ही क्या है, यह मट्टो है, स्वर्गके रत्नमय विमान, कल्पवृक्ष, आदि स्वर्गीय विभूति भी देवोंकी नहीं होती है, उनको छोडकर जाना पडता है, फिर इस पृथ्वी और मनुष्योंकी क्या बात है ? फिर आप यह पृथ्वी मेरी कैसे कहते हैं ?

गुरुदेव ! विचार तो कीजिये, यह शरीर जब अपना नहीं है तब अन्य पदार्थ अपने कैसे हो सकते हैं। भरतजीके वचनको सुनते हुए बाहुबलिका गर्व गलित हो रहा था।। " और देखो, तुम इस पृथ्वीको तृणके समान समझकर लात मारकर आये परंतु मैं उसे छोड नहीं सका, इसलिए तुम गुरु हो गए मैं लघु ही रहा। " इसे सुनते ही मुनिराजका मान और भी कम होने लगा है।

भवभ्रमणके लिए कारणभूत शल्यभूतको वाक्यमंत्रसे चक्रवर्तिने दूर किया। अब उस योगीका चित्त शांत हुआ, ध्यानसंपत्तिकी प्राप्त हुई।

भरतजी भी बहुत चतुर हैं, उस दिन अपनेको नमस्कार किए हुए भाईको आज मुनि होनेसे नमस्कार किया है। उसमें मुनि होकर भी बाहुबलिके मनमें संक्लेश हुआ। परंतु गृहस्थ होनेपर भी भरतजीके

मनमें कुछ नहीं। क्या ये राजा है या राजयोगी है ! शरीरको नंगा कर और मनको अंधकारमें रखकर वह बाहुबली योगी खडे थे। उनके मनमें जो शल्य था उसे भरतजीने दूर किया तो दोनोंमें संयम किसका अधिक है।

इस सम्राट्को बाह्यमें सब कुछ है तो क्या बिगडा ? और इस बाहुबलिने बाह्यमें सब छोड दिया तो उसे क्या मिला ? जो आत्म से बाह्य हैं वे बाह्यमें घोर तपश्चर्या करे तो भी कोई उपयोग नहीं होता है।

भवितात्म भरतजीके वचनको सुनते २ चित्तका अंधकार दूर होता जा रहा था, दीपकके समान आत्मरूपका दर्शन हो रहा था।

चित्तके समस्त व्यग्रभावोंको दूर करके अपने चित्तको योग्य दिशा में लगानेपर विषयग्रामकी ओरसे उपयोग हट गया। अब उनका शरीर भी अत्यंत निष्कंप हुआ हैं।

सबसे पहिले आज्ञाविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय व अपाय-विचय नामक व्यवहारधर्मध्यानको सिद्ध कर तदनंतर शुद्धात्मस्वरूप मैं हूं इस धर्मका उन्होंने अवलंबन किया।

सबसे पहिले सिद्धोंका ध्यान किया। तदनंतर अष्टगुणयुक्तसिद्धोंके समान मैं हूं इस प्रकार अनुभव करते हुए निरंजनसिद्धका दर्शन किया।

अंतरंगमें जैसी २ विशुद्धि बढती जाती थी वैसे ही आत्मज्योति उज्वल होकर प्रकाशित होती थी। वही निश्चयोज्वल धर्म है।

दर्शन, व्रतिक, तापसि और अप्रमत्त इस प्रकार चार गुणस्थानोंमें उस उज्वल धर्मकी प्राप्ति होती है। अतएव उसके अवलंबनसे बाहुबलि कर्मकी निर्जरा कर रहे हैं।

ध्यान करते समय वह ज्योति प्रकाशमान होकर दिख रही है, पुनः उसी समय वह धुंधली हो जाती है। इस प्रकार हजारों बार होता है, अर्थात् हजारों बार प्रमत्त और अप्रमत्तकी परावृत्ति होती है।

उज्वल प्रकाश जिस समय दिख रहा है तब अप्रमत्त अवस्था है। जब वहां अंधकार आता है तो प्रमत्तदशा है। प्रमत्त और अप्रमत्तका यही भेद है।

इस प्रकार इस आत्माको मोक्षके प्रधान मार्गमें पहुंचकर अप्रमत्त, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण इस प्रकार करणत्रयका अवलंबन वह योगी करने लगा तब धर्मयोगका प्रभाव और भी बढ गया।

पुनः जब उन्होंने एकाग्रतासे निश्चय धर्मयोगका अवलंबन किया तो निरायास नारक, सुर व तिर्यगायुष्य नष्ट हुए। तदनंतर तत्क्षण अनंतानुबंधि क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यङ्मिथ्यात्व इस प्रकार सप्तप्रकृतियोंका सर्वथा अभाव होनेपर क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई।

सप्तप्रकृति ही आत्माके संसार परिभ्रमणके कारण हैं, जब उनका अभाव होता है तब आत्मामें नैर्मल्य बढता है। सम्यक्त्वमें दृढता आती है। इसे क्षायिकसम्यक्त्व भी कहते हैं। इक्ष्वाकु सम्यक्त्व भी कहते हैं।

अप्रमत्त गुणस्थानसे आगे बढे, अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थानमें आरूढ हुए। उस स्थानमें प्रथम शुक्लध्यानकी प्राप्ति हुई। वहांपर दो प्रकारके शुक्लध्यानकी प्राप्ति होती है। एक व्यवहारशुक्ल और दूसरा निश्चयशुक्ल। व्यवहारशुक्लसे देवगतिको पा सकते हैं, निश्चयशुक्लसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

उपशमश्रेणीमें जो चढते हैं वे व्यवहारशुक्लका अवलंबन कर उसके फलसे स्वर्गगतिको पाते हैं। क्षपकश्रेणीमें चढकर जो निश्चयशुक्लका अवलंबन करते हैं वे अपवर्गको (मोक्ष को) ही पाते हैं।

श्रुतविकल्पसे बढकर आत्मामें दिखनेवाला प्रकाश ही व्यवहारशुक्ल हैं। संपूर्ण विकल्पोंके अभावमें आत्मकलाकी वृद्धिसे आत्मज्योतिका दर्शन जो होता है उसे निश्चयशुक्ल कहते हैं।

मस्तकसे लेकर अंगुष्ट तक चांदनीके शुभ्र प्रकाशकी पुतलीके समान

आत्मा दिखे एवं बीचबीचमें उसमें चंचलता पैदा होजाय उसे व्यवहार-शुक्ल कहते हैं । यदि निश्चलता रहे तो उसे निश्चयशुक्ल कहते हैं ।

इस प्रकार बाहुबलि योगीने व्यवहारशुक्लके अवलंबनसे करण-त्रयकी रचना की, तत्क्षण नैर्मल्यकी वृद्धिसे निश्चयशुक्लका भी उदय हुआ । वहांपर आयुत्रिकका नाश हुआ । सातों कर्मोंकी स्थिति भी ढीली होती जा रही है ।

तदनंतर आगे बढकर अनिवृत्तकरण नामक नौमें गुणस्थानपर आरूढ हुए, वहांपर पहुंचते ही ३६ कर्मप्रकृतियोंको नाश किया ।

इस प्रकार पहिलेसे उस योगीने गुणस्थानक्रमसे निम्न लिखित प्रकार कर्मोंकी बंधव्युच्छित्ति की ।

१–मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तासृपाटिका, एकेंद्रिय, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु. १६.

२–अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभ, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचला–प्रचला, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमंडल, संस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जसंस्थान, वामनसंस्थान, वज्रना-राचसंहनन, नाराचसंहनन, अर्धनाराच, कीलितसंहनन, अप्रशस्तविहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यंचगति, तिर्यंच-गत्यानुपूर्वी, उद्योत, तिर्यंचायु ।

४–अप्रत्याख्यान कषाय ४, वज्रवृषभनाराचसंहनन, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु ।

५–प्रत्याख्यानकषाय ४

६–अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशःकीर्ति, अरति, शोक

७–देवायु ।

८–प्रथम भागमें निद्रा, प्रचला छटे भागमें तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्तविहायोगति, पंचेंद्रिय, तैजस, कामण, आहारकशरीर,

आहारक अंगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्णादि ४, अगुरुलघु उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय ७ वें भागमें हास्य, रति, भय, जुगुप्सा।
९—पुरुषवेद, संज्वलनक्रोधमानमायालोभ।

इस प्रकार उपर्युल्लिखित कर्मोंको दूर कर नवमें गुणस्थानके अंतमें बादरलोभके साथ मायाको भी दूर किया। तब उस योगीने सूक्ष्मसांपराय नामक दसवें गुणस्थानमें पदार्पण किया। वहांपर सूक्ष्म लोभका भी नाश किया, उसी समय मोहनीय कर्मकी अवशेष प्रकृतियोंको नष्ट कर आगे बढे। उपशांत कषाय नामक ११ वें गुणस्थानपर आरोहण न कर एकदम बारहवें गुणस्थानमें ही आरूढ हुए। क्योंकि ये क्षपक श्रेणीपर चढ रहे हैं। उस क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थानपर आरूढ होते ही द्वितीय शुक्लध्यानकी प्राप्ति हुई। वहांपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अंतराय कर्म पूर्णतः नष्ट हुए। अर्थात् घातिया कर्म दूर हुए वह योगी जिन बन गये।

क्षुधा, तृषा, आदि अठारह दोष दूर हुए। उस समय सयोगकेवली नामक तेरहवें गुणस्थानपर वे योगी आरूढ हुए। हवाके समान चलित होनेवाला चित्त अब दृढ होगया है। अब उसका संबंध शरीरके साथ न होकर आत्माके साथ हुआ है। चारित्रमोहनीय कर्मका सर्वथा नाश होनेसे यथाख्यातचारित्र होगया है। मोह नाम अंधकारका है। उसके दूर होनेपर वहांपर एकदम प्रकाश ही प्रकाश है। आत्मामें आत्माकी स्थिरता हुई है। आत्मामें आत्माका स्थिर होना इसीको कोई सुखके नामसे वर्णन करते हैं।

ज्ञानावरण व दर्शनावरणके सर्वथा अभाव होनेके कारण अनंतज्ञान व अनंतदर्शनका उदय हुआ। एवं आत्मीय शक्तिके प्रगट होनेमें विघ्न कारक अंतरायके दूर होनेसे अनंतवीर्य व अनंतसुखकी प्राप्ति हुई।

इस प्रकार ६३ प्रकृतियोंका नाश होनेपर उस आत्मामें विशिष्ट तेज प्रज्वलित हुआ। मेघमंडलसे बाहर निकले हुए सूर्यमंडलके समान उस आत्मामें केवलज्ञानज्योति जागृत हुई।

तीन लोकके अंदर व बाहर स्थित सर्व पदार्थोंको वे अब एक समयमें जानते हैं। तीन लोकको एक साथ उठा सकते हैं, इतना सामर्थ्य अब प्राप्त हुआ है। विशिष्ट आत्मोत्थ सुखकी प्राप्ति हुई है। विशेष क्या? इन्हीमें नवविध लब्धियोंका अंतर्भाव हुआ।

इस प्रकार आत्मसिद्धिके द्वारा बाहुबलि योगीने कर्मोंको दूर किया तो एकदम इस धरातलसे ५००० धनुष ऊपर जाकर खडे होगए। उस समय एक पर्वत ही ऊपर उड रहा हो ऐसा मालूम हो रहा था। उसी समय चारों ओरसे नर, सुर, व नागलोकके भव्य जयजयकार करते हुए वहांपर उपस्थित हुए। कुबेरने भक्तिसे गंधकुटिकी रचना की। आकाशके बीचमें गंधकुटीकी रचना हुई थी, उस गंधकुटीमें स्थित कमलको चार अंगुल छोडकर बाहुबलि जिन खडे हैं। परमौदारिक दिव्य शरीरसे अत्यंत सुंदर मालुम हो रहे हैं।

भरतजी हर्षभरित हुए। आनंदसे कूदने लगे। अत्यंत भक्तिसे साष्टांग नमस्कार किया व उठकर भक्तिसे बाहुबलि जिनकी स्तुति करने लगे।

भगवन्! आपको मेरे द्वारा कष्ट हुआ। मैं बहुत ही हतभागी हूं।

उत्तरमें भुजबलि भगवंतने कहा कि भव्य! यह बात मत कहो, दुष्कर्मने मुझे उस प्रकार कराया, मेरे पापने मुझसे तुम्हारे साथ विरोध कराया, और अभिमानने तपश्चर्याके लिए भिजवाया व उसी अभिमानके साथ तपश्चर्या भी की परंतु उपयोग नहीं हुआ। मेरे पुण्यने ही तुमको बुलवाया, इसलिए मुझसे ही मुझे सुख हुआ। कहनेका तात्पर्य यह है कि पापसे दुःख व पुण्यसे सुखकी प्राप्ति होती है। परंतु इसे विवेकपूर्वक न जानकर संसारमें हमें सुख दुःख दूसरोंसे हुआ इस प्रकार अज्ञानी जीव कहा करते हैं। दुःख सुखको समभावमें अनुभव करते रहनेपर आत्मसिद्धि होती है।

शरीरके संबंधसे होनेवाले सुख दुःख सचमुचमें स्वप्नके समान हैं वे देखते २ नष्ट होते हैं।

परंतु पवित्र आत्मसुख एक मात्र अविनश्वर है, उस सुख समुद्रके सामने देवोंका सुख भी बिंदुमात्र है।

भद्र! मेरे कर्म कठोर है। इसलिए उनको दूर करनेके लिए कठिन तपश्चर्या करनी पडी। परंतु तुम्हारे कर्म कोमल है। इसलिए भोगमठमें ही वे जारहे हैं। हमें इसी प्रकार मुक्ति जाने का था, इसलिए यह सब हुआ। तुम्हें उसी प्रकार सुखको भोगते २ मुक्ति जानेका है, कर्मलेपके दूर होनेपर तो सब एक सरीखे हैं। फिर कोई अंतर नहीं रहता है। इस प्रकार परमात्मा बाहुबलि जिनेंने कहते हुए भरतजीसे यह कहा कि अब हमें कैलास पर्वतकी ओर जाना है, तुम अब अपने नगरको चले जावो।

भरतजीने उसी समय बाहुबलीकेवलीके चरणोंमें साष्टांग नमस्कार कर अनेक देवोंके साथ अयोध्याकी ओर प्रस्थान किया।

तदनंतर बाहुबलि केवलीकी गंधकुटीका कैलास पर्वतकी ओर विहार हुआ। उस समय अनेक देवादिक जयजयकार शब्द कर रहे थे। इधर अपने परिवारके साथ भरतजी अपने नगरकी ओर जा रहे हैं।

मार्गमें भरतजीके हृदयमें अनेक विचारतरंग उठ रहे हैं। आनंदसे हृदयकमल विकसित हुआ। ध्यान—सामर्थ्यसे जब भुजबलीका कर्म दूर हुआ एवं केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई, इस बातको बार २ याद कर आनंद मान रहे हैं। उनको इतना आनंद हो रहा है कि बाहुबलिको कैवल्य प्राप्त नहीं हुआ है, अपितु स्वतःको जिनपद प्राप्त हुआ हो, इस प्रकार आनंदित होते हुए वे अयोध्यापुरमें प्रवेश करके महलमें पहुंचकर कैलासको जानेके बाद बाहुबलिको कैवल्य प्राप्त होनेतकका सर्व वृत्तांत माता व अपनी पत्नियोंसे कहकर आनंदसे रहने लगे।

भरतजी सचमुचमें पुण्यशाली महात्मा हैं। क्योंकि जिनके कारण से बडे बडे योगियोंके हृदयका भी शल्य दूर हो एवं उनको ध्यानकी सिद्धि होकर कैवल्यकी प्राप्ति हो, उनके पुण्यातिशयका वर्णन क्या करें ? इसका एकमात्र कारण यह है कि उन्हें मालुम है कि आत्म साधनकी विधि क्या है ? परपदार्थोंके कारणसे चंचल होनेवाले आत्मा को उन विकल्पोंसे हटानेका तरीका क्या है ? उसी अनुभवका प्रयोग बाहुबलिके शल्यको दूर करनेमें उन्होंने किया।

इसके अलावा वे प्रतिनित्य व परमात्माको इस रूपमें स्मरण करते हैं कि—

हे परमात्मन् ! आप पहिले अल्पप्रकाशरूप धर्मध्यानसे प्रकट होते हैं। चित्तका नैर्मल्य बढनेसे अत्याधिक उज्वल प्रकाश रूप शुक्लध्यानसे प्रकट होते हैं। इसलिए हे चिदंबरपुरुष ! मेरे हृदयमें बने रहो।

इति–श्रेण्यारोहण संधि।

—०—

अथ स्वयंवर संधि.

भगवान् बाहुबलिस्वामी, अनंतवीर्य एवं कच्छ महाकच्छ योगियोंको केवलज्ञान हुआ इससे भरतजी बहुत प्रसन्न हुए हैं। उसे स्मरण करते हुए आनंदसे अपने समयको व्यतीत कर रहे हैं।

महाबल राजकुमार व रत्नबल राजकुमारका योग्य वयमें बहुत वैभवके साथ विवाह कर पितृवियोगके दुःखको भुलाया।

अपने दामाद राजकुमारोंको एवं अपनी पुत्रियोंको कभी २ बुलवा कर उनको अनेक विपुल संपत्ति देकर भेजते थे। इस प्रकार बहुत आनंदसे भरतजीका समय जारहा है।

इधर सम्राट् अयोध्यामें सुखसे हैं तो उधर युवराज अर्ककीर्ति-कुमार अपने भाई आदिराजके साथ राज्यकी शोभा देखनेके लिए पिताजीकी अनुमतीसे गये हैं। आर्याखण्डके अनेक राज्योंमें भ्रमण करते हुए एवं वहांके राजावोंसे सन्मानको प्राप्त करते हुए आनंदसे जा रहे हैं।

कुछ देशोंके संदर्शनके बाद कर्णाटक देशके राजाने उन्हें बहुत आदरके साथ अपने यहां बुलवाया व बहुत सन्मान किया। वह अर्ककीर्तिका खास मामा है। कुंतलावती देवीके बडे भाई भानुराज है। उन्होंने अपने नगरमें अर्ककीर्ति व आदिराजका विशेष रूपसे स्वागत कराया। उस नगरको उस समय किष्किंधपुर कहते थे। परंतु कलियुगमें आनेयगोंदि कहते है। वहांपर भानुराजने अपनी दो पुत्रियोंका विवाह उन दोनों राजकुमारोंके साथ किया। भानुमतीका अर्ककीर्तिके साथ, वसंतकुमारीका आदिराजके साथ विवाह हुआ। उसके बाद वे दोनों कुमार पश्चिमदेशकी ओर गये।

इस समाचारको सुनकर कुसुमाजी राणीके भाई वीर विमलराजने सौराष्ट्र देशके गिरिनगरको लाकर उनका यथेष्ट सत्कार किया। विमलाजी नामक अपनी पुत्रीको अर्ककीर्तिको समर्पण कर अपने छोटे भाई कमलराजकी पुत्री कमलाजीको आदिराजको समर्पण किया।

इस प्रकार अनेक देशोंके राजावोंसे सन्मानको प्राप्त करते हुए काशी देशकी ओर आये। काशी नगरमें प्रवेश करते ही वहांपर एक नवीन वार्ता सुननेमें आई।

वाराणसी राज्यके अधिपति अकंपन राजा है। उसकी पुत्री सुलोचना देवीके स्वयंवरका निश्चय हुआ है। उपस्थित अनेक राजपुत्रोंमें जिस किसीको पसंद कर यह सुलोचना माला डालेगी वही उसका पति होगा, इस प्रकारकी सूचना सर्वत्र जानेसे अनेक देशके राजकुमार वहांपर आकर एकत्रित हुए हैं।

नारीके नामको सुनते ही कामुक जन हक्का बक्का होकर फल

सहित वृक्षपर जिस प्रकार पक्षि दौडते हैं उसी प्रकार आते हैं। इसलिए यहांपर भी हजारों राजकुमार आये हुए हैं।

कमलके सरोवरको जिस प्रकार भ्रमर हजारोंकी संख्यामें आते हैं उसी प्रकार कमलमुखी सुलोचनाके स्वयंवरके लिए अनेक राजकुमार आये हुए हैं।

उन सबको आदर सत्कार, स्नान भोजन, नाट्यक्रीडा आदियोंसे अकंपन राजा संतुष्ट कर रहे हैं।

स्वयंवर मंडपकी सजावट होगई है। नगरका शृंगार किया गया है। अब वह सुलोचना देवी कल या परसोंतक किसीके गलेमें माला डालेगी, इस प्रकार लोग यत्र तत्र बातचीत कर रहे हैं।

इस समाचारको सुनकर अर्ककीर्ति व आदिराज एकांतमें कुछ विचार करने लगे, क्योंकि वे भरतेशके ही तो सुपुत्र हैं। अर्ककीर्ति आदिराजकुमारसे पूछने लगा कि आदिराज! क्या अपनेको काशीके अंदर जाना चाहिए या नहीं? उत्तरमें आदिराज कहने लगा कि जाने में क्या हानि है? हमारे आधीनस्थ राजाओंके राज्यको जानेमें संकोच क्यों? और उसमें हर्ज क्या है? उसकी पुत्रीके लोभसे जैसे दूसरे लोग आये हैं उस प्रकार हम लोग नहीं आये हैं। अपन तो पिताजी से कहकर देशकी शोभा देखनेके लिए निकले हैं। यह सब लोकमें प्रसिद्ध है। यह काशी अपने लिए रास्तेमें हैं, उसे छोडकर जावें तो भी उसमें गंभीरता नहीं रहती, चाहे अपन यहांपर अधिक न ठहरकर आगे बढ सकते हैं। इसे सुनकर अर्ककीर्ति कहने लगा कि हमें देखनेके बाद वे हमें जल्दी नहीं जाने देंगे। फिर अपनेको स्वयंवर मंडपमें जरूर ले जायेंगे।

आदिराज पुनः कहने लगा कि भाई! स्वयंवर शालामें हीन विचारवाले ही जाते हैं। ज्ञानी वहांपर जाते नहीं हैं। कदाचित् जावें तो वह कुमारी किसी एक ही के गलेमें माला डालेगी। बाकीके सबको

वहांसे खाली हाथसे ही वापिस जाना पडता है। स्वयंवरके पहिले प्रत्येक व्यक्ति उक्त नारीको वरनेके लिए आशा करते हैं। परंतु जब वह माला किसी एकके गलेमें पडती है तब सब लोग अपनी लज्जाको बेच कर जाते हैं। भाई विचार करो, एक कन्याकी सब लोग अपेक्षा करें क्या यह उचित है ? जब वह एकको पसंद करेगी तब बाकीके लोग तो भांड ही ठहरते हैं न ? इसलिए अपनेको वहां स्वयंवर मंडपमें नहीं जाना चाहिये। अपन अपने मुक्कामके स्थानमें ही रहें।

तब अर्ककीर्ति कहने लगा कि यदि उन्होंने पांव पडकर आग्रह किया तो क्या करना चाहिये यदि उस हालतमें भी हम नहीं गये तो राजा अकंपनको बडा दुःख होगा। और बाकीके राजकुमारोंको भी बुरा लगेगा। इसलिए क्या करना चाहिये। तब आदिराजने कहा कि इसके लिए मैं एक उपाय कहता हूं। जब आपको वे आग्रह करनेके लिए आवें तब आप उनको कहें कि राजा अकंपन ! तुमने जिस प्रकार पत्र भेजकर स्वयंवरके लिए और लोगोंको बुलाया है वैसे हम लोगोंको नहीं बुलाया है। इसलिए हम लोग स्वयंवर मंडपमें नहीं आसकते हैं।

इसे सुनकर अर्ककीर्तिने कहा कि शाहबास भाई ! शाहबास ! मेरे हृदयमें जो था वही तुमने कहा, ठीक है ऐसा ही करेंगे।

इस प्रकार दोनोंने विचार करके आनंदके साथ काशीकी ओर आरहे हैं।

युवराज अर्ककीर्ति काशीकी ओर आरहे हैं यह सुनकर अकंपनको बडा हर्ष हुआ। उन्होंने निश्चय कि सम्राट्का पुत्र अपनी पुत्रीके विवाहके लिए आरहा है। यह मेरे भाग्यकी बात है। हजारों भूचर व खेचर राजपुत्रोंके आनेसे क्या ? जब महाचक्रधारी चक्रवर्ती के पुत्र आरहे हैं। मैं सचमुचमें भाग्यशाली हूं। मेरे स्वामीके सुपुत्र किसी कारणसे आरहे हैं, उनका आदरसत्कार योग्य रीतिसे होना चाहिये। यदि उसमें किसी भी प्रकारकी न्यूनता रहेगी तो उससे मेरी

हानि होगी। इसलिए अत्यंत भय व भक्तिसे इनके स्वागतकी व्यवस्था करनी चाहिये इस विचारसे अकंपन राजा उस व्यवस्थामें लगा।

राजमहलको खाली कराकर स्वयं राजा अकंपन दूसरे एक घरमें निवास करने लगा। पुरमें अनेक प्रकारकी शोभा की गई। सब जगह समाचार दिया गया कि कल या परसोंतक सम्राट्के सुपुत्र आरहे हैं।

स्वयं राजा अकंपन अपने पुरजन व परिजनोंके साथ और अनेक देशके राजा महाराजावोंके साथ युक्त होकर उनके स्वागतके लिए निकला है। हाथमें अनेक प्रकारकी भेट, वस्त्र, रत्न वगैरे लेकर जारहे हैं। एक दो मुक्कामके बाद आकर सबने युवराजका दर्शन किया, परम आनंदसे भेट रखकर युवराजको नमस्कार किया। अर्ककीर्ति कुमारने उन सबको उठनेके लिए कहा। व अकंपनराजासे प्रश्न किया कि राजन्! तुम्हारे साथ जो राजा लोग आये हैं उनके आनेका क्या कारण है? हम लोग जहां तहां देशकी शोभा देखकर आरहे हैं। अभीतक देखनेमें आया था कि तत्तद्देशके राजा ही हमारे स्वागतके लिए आते थे। परन्तु यहां औरही कुछ बात है। तुम्हारे साथ अन्य देशके राजा भी मिलकर आये हैं, यह आश्चर्यकी बात है। इसका कारण क्या है। क्या तुम्हारे यहां कोई पूजा, प्रतिष्ठा उत्सव चालू है या विवाह है? नहीं, नहीं, ये तो स्वयंवरके लिए मिले हुए मालुम होते हैं, क्यों कि इनकी सजावट ही इस बातको कह रही है। तो भी वास्तविक बात क्या है? कहो।

उत्तरमें राजा अकंपनने निवेदन किया कि स्वामिन्! आपने जो आखरका वचन कहा वह असत्य नहीं है। मेरी एक पुत्री है। उसके स्वयंवरके लिए ये सब एकत्रित हुए हैं। आपके पधारनेसे परम संतोष हुआ, सोनेमें सुगंध हुआ। आप लोगोंके पधारनेसे साक्षात् भरतेशके आगमनका संतोष हुआ। आप दोनोंके पादरजसे मेरा राज्य पवित्र हुआ इस प्रकार बहुत संतोषके साथ राजा अकंपनने निवेदन किया।

इसी प्रकार मेघेश (जयकुमार) आदि अनेक राजावोंने उन दोनों कुमारोंका स्वागत करनेके बाद अनेक भूचर खेचर राजावोंके साथ राजा अकंपनने उनको काशी नगरमें प्रवेश कराया।

नगरमें प्रवेश करनेके बाद अर्ककीर्तिकुमारको मालुम हुआ कि अकंपन राजाने हम लोगोंके लिए राजमहलको खाली करके दूसरे स्थानमें निवास किया है। ऐसी हालतमें क्या करना चाहिए इस विचारसे अर्ककीर्ति आदिराजकी ओर देखने लगा। आदिराजने कहा कि अपने अन्य स्थानमें ही मुकाम करें। तब अर्ककीर्तिने अकंपनसे कहा कि आदिराज क्या कहता है सुनो। परंतु अकंपनका आग्रह था कि अपनी महलमें ही पदार्पण करना चाहिये ; तब आदिराजने कहा कि तुम्हारी महलको तुमने यदि हमारे लिए खाली की तो क्या वह हमारी होगई ? कभी नहीं ! हम लोग यहां नगरकी गलबलीमें नहीं रहना चाहते हैं। इसलिये नगरके बाहर किसी उद्यानमें कोई महल हो तो ठीक होगा। हम वहींपर रहेंगे। तब अकंपनने कहा कि बहुत अच्छा, तैयार है, लीजिए। चित्रांगद नामका देव पूर्वजन्मका मेरा मित्र है। उसने स्वयंवरके प्रसंगको लक्ष्यमें रखकर दो महलोंका निर्माण किया है। उस स्थानको आप लोग देखें। परम संभ्रमके साथ दोनों राजपुत्र उस उद्यानकी ओर जाकर महलमें प्रविष्ट हुए। वहींपर उन्होंने मुकाम किया। उनके परिवार सेना आदिने भी उस बगीचेमें बाहर मुकाम किया।

राजा अकंपनने पांच दिनतक अनेक वस्तुवोंको भेंटमें भेजकर उन राजकुमारोंका हर प्रकारसे आदर सत्कार किया। तदनंतर अनेक राजावोंके साथ आकर राजा अकंपन निवेदन करने लगे कि युवराज ! मेरी एक विनंती है। आप दोनोंके पधारनेसे पहिले निश्चित किये हुए मुहूर्तको टालकर दो चार दिन व्यतीत किया। अब स्वयंवरके लिए कलका मुहूर्त बहुत अच्छा है। सो आप दोनों भाई स्वयंवर मंडपमें पधारकर उस विवाहमें शोभा लावें और हम सबको आनंदित करें।

उत्तरमें अर्ककीर्तिने कहा कि अकंपन ! हम लोग स्वयंवर मंडपमें नहीं आयेंगे, हमें आग्रह मत करो । तुम निश्चित किये हुए कार्यको करो, हमारी उसमें सम्मति है । जावो ! अकंपनने पुनश्च प्रार्थना की कि युवराज ! आप लोगोंके न आनेपर विवाह मंडपकी शोभा ही क्या है । अत्यंत वैभवके साथ आप लोगोंको हम ले जावेंगे । इस लिए आपको पधारना ही चाहिये । अनेक राजावोंके साथ जब इस प्रकार अकंपनने आग्रह किया तब अर्ककीर्तिने स्पष्ट रूपसे कहा कि अकंपन ! सुनो, जैसे तुमने स्वयंवरके लिए सबको निमंत्रणपत्र भेजा था, वैसे हमें तो नहीं भेजा था । हम तो देशमें विहार करते २ राहगीर होकर यहांपर आये हैं । स्वयंवरके लिए नहीं आये हैं । इसलिए कन्यालयमें अर्थात् स्वयंवरमंडपमें पदार्पण करना क्या यह धर्म है । इसलिए हम लोग नहीं आवेंगे । ये सब राजा खास स्वयंवरके लिए ही आये हुए हैं । उनके साथमें तुम इस कार्यको करो । हम एक चित्तसे इसमें अनुमति देते हैं । जावो तुम्हारा कार्य करो । इस प्रकार समझाकर अर्ककीर्तिने कहा ।

अकंपन कांपते हुए कहने लगा कि युवराज ! आप लोगोंको पत्र न भेजनेमें मेरा कोई खास हेतु नहीं है । सम्राट्के पुत्रोंको मैं एक किंकर राजा किस प्रकार पत्र भेजूं, इस भयसे मैंने आप लोगोंको पत्र नहीं भेजा । और कोई अहंकारादि भावनासे नहीं । इसलिए आप को अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये । इस बातको अकंपनने बहुत विनयके साथ कहा ।

अर्ककीर्ति कहने लगा कि समान वंशवालोंको बुलानेके लिए भय खानेकी क्या जरूरत है ? संपत्तिमें अधिकता हो तो क्या है ? परंतु बिना निमंत्रणके आनेवालोंको वहांपर नहीं आना चाहिये, यह राज-पुत्रोंका धर्म है । हम यदि वहांपर आयेंगे तो पिताजी नाराज होंगे, इसलिए हम दोनों नहीं आयेंगे । हमारे मित्र आजायेंगे, छप्पन्न देशके

राजालोग हैं। खेचर हैं, भूचर हैं। जावो, अपने कार्यको संपन्न करो।

सुरचंद्र, शुभचंद्र, गुणचंद्र, श्रीचंद्र, वरचंद्र, विक्रांतचंद्र, हरिचंद्र व रणचंद्र नामके अपने साथके आठ चंद्रोंको अर्ककीर्तिने स्वयंवरमें जानेके लिए कहा। उद्दंडमति व सन्मति नामक अपने दो मंत्रियोंको भी वहांपर जानेकी अनुमति दी। साथमें उनको यह भी कह दिया कि हम लोग यहांपर हैं इस विचारसे कोई संकोच वगैरेकी जरूरत नहीं, तुम लोग आनंदसे खेलकूदसे अपना कार्य करो। इस प्रकार सुरचंद्र आदि आठ चंद्र, परिवारके मुख्य सज्जन व उभय मंत्रियोंको अनुमति मिलनेके बाद वे सब मिलकर वहांसे गये।

दूसरे दिनकी बात है, नगरके बाहर स्वयंवरके लिए खासकर निर्मित स्वयंवर मंडपमें आगत सर्व राजा दुपहरको पधारें इस प्रकारकी राजघोषणा की गई। इस राजघोषणा [डिंडोरा] की ही प्रतीक्षा करते हुए सभी राजपुत्र पहिलेसे सजधजकर बैठे थे। इस घोषणाके पाते ही अपनी २ सेना परिवारके साथ एवं गाजेबाजेके साथ स्वयंवर मंडपमें प्रविष्ट हो गये। उस विशाल स्वयंवर मंडपमें सबके लिए भिन्न २ आसनकी व्यवस्था की गई थी। उनपर वे बैठ गये। राजा अकंपनने उन आगत राजाओंको तांबूल वस्त्राभूषणादिकसे पहिलेसे वहांपर सत्कार किया। क्यों कि बादमें किसी एकके गलेमें माला पडनेके बाद ये सब उठकर चले जायेंगे।

सुलोचनादेवी अपनी परिवार सखियोंके साथ सुंदर पल्लकीपर चढकर स्वयंवर मंडपकी ओर आ रही है।

वह परम सुंदरी है, स्वयंवरके लिए योग्य कन्या है, परंतु वह जिसके गलेमें माला डालेगी वह पुरुष बहुत अधिक वर्णन करने योग्य नहीं है। इसलिए सुलोचना देवीका भी यहांपर संक्षेपसे ही वर्णन करना पर्याप्त होगा। यह भरतेशवैभव है। भरतचक्रवर्ति व उनकी राणियोंका वर्णन जिस प्रकार किया जाता है उस प्रकार अन्य

लोगोंका करूं तो वह उचित नहीं होगा। तथापि उस स्वयंवरकी मुख्य देवीका वर्णन करना जरूरी है।

मदनकी मदहस्तिनी आरही है, अथवा मोहरथ ही आरहा है, सब लोग रास्ता साफ करें इस प्रकारकी घोषणा परिवारनारियां कर रही हैं। छत्र, चामर, पताका इत्यादि वैभव उसके साथ है। साथमें गायन चल रहा है, अथवा यों मालुम हो रही है कि कामदेवकी वीरश्री ही आरही है।

पलकीके पर्देसे हटकर वह खडी होगई तो वह कामदेवके म्यानसे निकले हुए तलवारके समान मालुम होरही थी। नहीं, नहीं, यह ठीक नहीं बना, मेघमंडलसे बाहर आये हुए चंद्रमाके समान मालुम होरही थी। अथवा विद्युन्मालाके समान मालुम हो रही थी। स्वयंवरमंडपमें पहुंचकर एक दफे समस्त खेचर भूचर राजावोंको उसने देखा। उस समय उसके लोचन [नेत्र] बहुत सुंदर मालुम हो रहे थे। सचमुचमें उसका सुलोचना यह नाम उस समय सार्थक हुआ।

उसकी दृष्टि पडते ही समस्त राजावोंको रोमांच हुआ जिस प्रकार कि दक्षिणदिशाके वायुसे उद्यानके वृक्ष पल्लवित होते हैं। चंद्रमाकी कांतिको जिस प्रकार चकोर दृष्टिसे देखता है उसी प्रकार इस सुंदरीके रूपके प्रति मोहित होकर वे राजा देखने लगे हैं। सुलोचनाके मुखमें, कंठमें, स्तनोंमें, बाहुओंमें, कटिप्रदेशमें उन राजावोंके लोचन प्रवेश कर रहे हैं, प्रविष्ट होनेके बाद वहांसे वे वापिस नहीं आ रहे हैं यह आश्चर्यकी बात है। बहुत ही लीनदृष्टिसे वे लोग देख रहे हैं। मिलनेका सुख उनको आगे मिलेगा, परंतु देखनेका सुख आज सबको मिला इस हर्षसे सब लोग प्रसन्न हो रहे हैं। एक स्त्रीके लिए सब लोग आसक्त हो रहे हैं, यह स्वयंवर एक भांडोंका खेल है।

चित्तमें रागभावसे सबको उस सुलोचनाने देखा, एवं सबने उसके प्रति आसक्त दृष्टिसे देखा है, यही तो भावरति है। स्वयंवर एक

परिहासास्पद विषय है। आधे मुखको खोलकर, आखोंको फाड फाड-कर भ्रांत होकर उसकी ओर सब लोग देख रहे थे। भरतचक्रवर्तिके पुत्र उस स्वयंवर मंडपमें क्यों नहीं आये, यही तो कारण है। वे विवेकी सम्राट्के सुपुत्र हैं।

सुलोचनादेवी अपने हाथमें माला लेकर दाहिने और बांये तरफ बैठे हुए राजावोंको देखती हुई जा रही है। साथमें महेंद्रिका नामकी चतुर सखी है, यह सब राजावोंका परिचय देती हुई जा रही थी।

यह नेपाल राजा है, देखो। सुलोचना आगे बढ गई, उस राजाका मुख एकदम फीका पड गया, चालमें चूके हुए नये बंदरके समान उसकी हालत हुई।

यह हम्मीर राजा है, देवि देखो! सुलोचना उसे देखकर आगे बढी। उस राजाकी आंखें भर आई जैसे कि उसका बाप ही चल बसा हो।

चीनदेशका यह राजा है, यह कहनेपर उसे भी देखकर सुलोचना आगे बढी। वह राजा सिर खुजाते हुए अपने जीवनको धिक्कार रहा था।

यह लाटदेशका राजा है। सुलोचना उसकी परवाह न कर आगे बढी। उसे बहुत बुरा मालुम हुआ। मिलनेके लिए बुलाकर किसीको धक्का दिया तो जिस प्रकार होता हो, उसे बहुत दुःख हुआ।

गौडदेशके राजाको देखकर यह गांवडेका गौडा होगा समझकर सुलोचना आगे बढी।

बंगालके राजाको देखकर भी आगे बढी। वह बहुत घबरा गया। इस प्रकार वह महेंद्रिका अनेक देशके राजावोंके परिचयको कराते हुए जा रही थी।

अंगदेश, काश्मीर, कलिंग, कांभोज, सिंहल आदि अनेक देशोंके राजावोंका परिचय कराया। परंतु वह सुलोचना आगे बढती ही गई।

पुनः महेंद्रिका कहने लगी कि देवी ! यह म्लेंच्छभूमिके राजा हैं। ये विद्याधर राजा हैं। ये सूर्यवंशी हैं, यह चंद्रवंशी हैं। इत्यादि कहने पर भी सुलोचना सुनती हुई जारही थी।

गुणचंद्र, शुभचंद्र, रणचंद्र, सुरचंद्र आदि अष्ट चंद्रोंका भी परिचय कराया गया। उनको तृणके समान समझकर आगे बढी।

अनेक तरहके पुष्पोंको छोडकर जिस प्रकार भ्रमर आकर कमल पुष्पके पास ही खडा रहता है, उसी प्रकार वह सुलोचना देवी सबको छोडकर एक राजाके पास आकर खडी हो गई। वह भी परम सुंदर था। उसके प्रति देखती हुई वह खडी है, सुलोचनाके मनकी भावनाको समझकर महेंद्रिका कहने लगी कि देवी ! अच्छा हुआ, सुनो ! इसका भी परिचय करा देती हूं।

यह हस्तिनापुरके अधिपति अप्रतिहत सोमप्रभ राजाका सुपुत्र है। सुप्रसिद्ध है, कुरुवंशभूषण है, कलाप्रवीण है, गुणोत्तम है, भरतचक्रवर्तिका प्रधान सेनापति है। परबलकालभैरव है, शत्रुवोंको मार भगाकर वीराग्रणि उपाधिसे विभूषित हुआ है। मेघमुख व कालमुख देवोंके साथ घोरयुद्ध किया हुआ यह वीर है। इसका नाम मेघेश्वर है। इसलिए ऐसे वीरको माला डालो। इस प्रकार उस जयकुमारकी प्रशंसा सुनते ही सुलोचनाने उसके गलेमें माला डाल दी। सब दासियोंने उस समय जयजयकार किया।

माला गलेमें पडते ही सब राजावोंके पेटमें शूल पैदा हुआ। युद्धके स्थानसे जैसे भाग खडे होते हों उस प्रकार चारों तरफ भागने लगे।

जयकुमार व सुलोचना हाथीपर चढकर महलकी ओर रवाना हुए। अकंपन राजाने उनका यथेष्ट सत्कार कर महलमें प्रवेश कराया। वे उधर आनंदसे थे।

इधर स्वयंवरके लिए आये हुए राजा लोग किसी सट्टेमें हारे हुएके समान, धन लुटनेके समान,- विशेष क्या ? मा बाप मर गये हों उस

प्रकार दुःख करने लगे हैं। एक दूसरेके मुखको देखकर लज्जित हो रहे हैं। झेंपकर इधर उधर जाते हैं। एक स्त्रीके लिए सबको कष्ट हुआ, इस बातका कष्ट सबके हृदयमें हो रहा है।

शुभचंद्र, आदि अष्टचंद्र भी बहुत दुःखी होकर एक जगह बैठे हुए हैं। वहांपर उद्दंडमति पहुंचकर कहने लगा कि क्यों जी! आप लोग क्षत्रिय हैं न? आप लोगोंको हीन दृष्टिसे देखकर सुलोचनाने उसे माला डाल दी। आप लोग चुपचापके सरक गए? क्या यह स्वाभिमानियोंका धर्म है? आप लोगोंको भी उसकी जरूरत नहीं, उस जयकुमारको भी न मिले, सब मिलकर युवराज अर्ककीर्तिको उस कन्याको दिला दें। तब सब लोगोंने उस ओर कान लगाया।

हाथी, घोडा, स्त्री आदियोंमें उत्तम पदार्थ हमारे स्वामियोंको मिलने चाहिये। इस सौंदर्यकी स्त्री क्या इस सेवकके लिए योग्य है? क्या यह मार्ग है? आप लोग विचार तो करो।

तब सब लोगोंने उसकी बातका समर्थन करते हुए कहा कि उद्दंडमति! शाहबास! तुम ठीक कहते हो। यह दुराग्रह नहीं है, सत्य है।

सबने उस बातको स्वीकृति दी। अष्टचंद्र भी सहमत हुए। ठीक बात है। लोकमें क्रूर हृदयवालोंसे क्या क्या अनर्थ नहीं हुआ करते हैं। उद्दंडमतीने जिस समय गंभीरहीन वाक्योंसे लोगोंको बहकाया तब सब लोग उस अनीति मार्गके लिए तैयार हुए।

सन्मति मंत्रीने कहा कि उद्दंडमति! ऐसा करना उचित नहीं है, बहुत अनर्थ होगा। उद्दंडमतीने कहा कि तुम क्या जानते हो? चुप रहो।

युवराज अर्ककीर्तिको हम उत्तम कन्यारत्नकी योजना कर रहे हैं, ऐसी अवस्थामें तुम उसमें विघ्न मत करो। इस प्रकार सब लोग जोरसे कहने लगे, तब सन्मति मौनसे खडा हुआ। उद्दण्डमतिने यह भी कहा कि उपायसे मैं युवराजको समझाकर इस कार्यमें प्रवृत्त करूंगा।

इस प्रकार अष्टचंद्र दुष्टमंत्रीके वचनको सुनकर विशिष्ट मंत्रीका तिरस्कार करने लगे तब वह सन्मति वहांसे चला गया। सूर्यदेव भी इस अन्यायको देख न सकनेके कारण अस्तंगत हुआ।

दूसरे दिन प्रातःकाल युवराजकी कानमें सब बात डालेंगे इस विचारसे सब अपने अपने मुक्काममें गये।

लोकमें बहुत ही विचित्रता है, लोग अपनी २ मतलबसे वस्तुस्थितिको भूलकर अनेक प्रकारके संक्लेश, क्षोभ आदिके वशीभूत होते हैं एवं विश्वमें अशांति उत्पन्न करते हैं। यदि उन लोगोंने आत्मतत्वका विचार किया तो परतत्वके लिए होनेवाले अनेक अंतःकलहका सदाके लिए अंत हो। इसलिए महापुरुष इस बातकी भावना करते हैं, हमें सदा आत्मतत्वकी प्राप्ति हो।

" हे परमात्मन् ! तुम परचिंतासे मुक्त हो, आकाश ही तुम्हारा शरीर है; ज्ञानके द्वारा वह भरा हुआ है, अथवा शीतप्रकाशमय तुम्हारा शरीर है, हे सत्पुरुष ! तुम्हारे लिए नमोस्तु है।

हे सिद्धात्मन् ! सुज्ञानशेखर ! पुण्यात्माओंके पति ! गुणज्ञोंके गणनीय अधिपति ! लोकगुरु मेरे लिए सन्मति प्रदान कीजिये !

इसी पुण्यमय भावनाका फल है कि महापुरुषोंके जीवनसे विश्वमें शांतिका संचार होता है।

इति स्वयंवरसंधिः।

—०—

लक्ष्मीमति विवाहसंधि।

धूर्तोंके खेलको थोडा देखूं, एवं युवराज अर्ककीर्तिके मंगलकी वार्ताको सुनकर जाऊं, इस विचारसे सूर्यदेव उदयाचलकी ओरसे आया।

प्रातःकाल उठकर मुखप्रक्षालनादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर सर्व राजा उद्दंडमतिको साथमें लेकर अर्ककीर्तिके पास पहुंचे। वहां पहुंचते ही अर्ककीर्तिने प्रश्न किया कि आप लोगोंके कार्यका क्या हुआ ? तब सब लोगोंने उद्दंडमतिसे कहा कि तुम अकेला बोलो। सब लोग मौनसे रहे।

उद्दंडमतिने विचार किया कि यदि मैं यह कहूं कि सुलोचनाने किसी एकके गलेमें माला डाल दी तो युवराजका मन उस कन्याकी ओर आकर्षित नहीं होगा। इसलिए अब किसी उपायसे इनको सब वृत्तांत कहना चाहिए। उस समय युवराजको बहकाते हुए कहा कि:—

स्वामिन्! वह कन्या स्वयंवरशालामें दाखल हुई तो किसीको भी अपने मनसे माला नहीं डाली, उसके मनमें न मालुम क्या था। यहां-पर आनेके बाद किसीके गलेमें माला जरूर डालनी ही चाहिए, इस प्रकार उसके आप्तोंने कहा। फिर भी वह चुपचापके खडी रही। मालुम होता है कि वहां एकत्रित राजाओंमें कोई पसंद नहीं आया। राजन्! उन कंचुकियोंको मेघेश्वरने लांच [रिश्वत] दिया होगा, सो उन्होंने मेघेश्वरकी खूब प्रशंसा की। तथापि सुलोचनाने उसकी ओर देखकर अपने मुखको फेर दिया। राजा अकंपनको चिंता हुई।

राजा अकंपनने विचार किया कि यहां उपस्थित राजाओंमें किसी न किसीके साथ विवाह होना ही चाहिए। नहीं तो बहुत बुरी बात होगी। इस लिए उसके गलेमें माला डाल दो इस प्रकार राजा अकं-पनने कंचुकियोंसे सुलोचनाके कानमें कहलाया। तो भी सुलोचना तैयार नहीं हुई। इतनेमें एक सखीने उसके हाथसे माला छीनकर मेघेश्वरके गलेमें डाल दी व जयजयकार करने लगी। राजा अकंपनने किसी तरह अपनी बेटीको पति बनाया। वह सुलोचना भी अपनी इच्छा न होते हुए भी परवश होकर उसके पीछे २ गई। इधर उस अन्यायको देखकर राजाओंको बहुत बुरा मालुम हुआ। प्रसन्नताके साथ उसके मनसे किसी एकके गलेमें माला डालना यह उचित है। परंतु उसकी इच्छा न होते हुए जबर्दस्ती किसीके गलेमें माला डालवाना क्या यह अन्याय नहीं है? क्या ये क्षत्रिय नहीं है। हां! मार्गसे चले तो कोई बात नहीं है। वक्रमार्गसे जावे तो कौन सहन करते हैं?। इसलिए सब लोगोंने विचार किया कि किसीको भी उस कन्याकी

आवश्यकता नहीं है। युवराजके लिए वह कन्यारत्न मिलना चाहिए। हाथी, घोडा, रथ, रत्न, कन्या आदियोंमें उत्तम पदार्थ महानरेंद्रोंके सिवाय दूसरोंको कैसे मिल सकते हैं। इसलिए वह कन्यारत्न तुह्मारे सिवाय दूसरोंको योग्य नहीं हैं। इस प्रकार इन सब राजावोंने स्वीकृत किया। अष्टचंद्रोंको भी यह बात पसंद आई। हम दोनों मंत्रियोंने सलाह की। हमारे हृदयमें जो बात जची उसे आपकी सेवामें निवेदन किया। अब आप इस संबंधमें विचार करें।

अर्ककीर्तिने उत्तरमें विचार कर कहा कि आप लोग जैसा कहते हैं वैसा ही यदि कन्याके पिताने भी कहा तो मैं इसे स्वीकार कर सकता हूं। मैं स्वयं कन्याको मांगना नहीं चाहता, मैं स्वयं मांगूं तो उसके मिलनेमें क्या बडी बात है।

तब मंत्रीने कहा कि राजन्! तुम्हे उस बातके लिए प्रयत्न करनेकी जरूरत नहीं है। हम लोग लाकर उपायसे संधान कर देंगे।

अर्ककीर्ति विचारमें पडा। इतनेमें आदिराजने कहा कि भाई! स्वयंवरके नियमानुसार कन्याने किसीके गलेमें स्वेच्छासे माला डाल दी तो उसमें विरोध करना उचित नहीं है। परन्तु जबर्दस्ती माला डलवानेसे कोई विवाह हो सकता है? जब सुलोचनाकी इच्छा न होते हुए भी उसे मजबूर किया तो वह कदाचित् दीक्षा ले लेगी। जिस दासीने माला उसके हाथसे लेकर उसके गलेमें डाली उसीको मेघेश्वर की सेवाके लिए प्रसन्नताके साथ दे सकेंगे। जब कि कन्याको उसके साथ विवाह करनेकी इच्छा नहीं है, युवराजसदृश पति उसके लिए मिल रहा है तो सब लोग हर्षके साथ इसे स्वीकृत करेंगे। आइये! भाईके लिए उस कन्याकी योजना कीजिएगा। इस प्रकार आदिराजके वचनको सुनकर सब लोग प्रसन्न हुए।

पुनः मंत्रीने कहा कि मैं उस अकंपन राजाके पास जाता हूं। अकेला जाऊं तो प्रभाव नहीं पडेगा। सेना, परिवार वैभव आदिके

साथ जाना चाहिए। तब राजा अकंपनको उत्साह पैदा होगा। इस लिए सेनाके साथ युक्त होकर जाता हूं। और यह कार्य कर लाता हूं।

इस प्रकार अर्ककीर्तिको बातोंमें फंसाकर उद्दंडमति मंत्री दो हजार गणबद्ध देवोंको अपने साथ लेकर अष्टचंद्रराजाओंके साथ रवाना हुआ।

जो मंत्री अर्ककीर्तिके सामने यह कहकर आया है कि मैं उपाय से राजा अकंपनको मानकर तुम्हारे लिए कन्याकी योजना करावूंगा, उसने नगरके बाहर खडे होकर अकंपन व मेघेश्वरको भयसूचक खलीता लिखकर भेजा। उसमें अर्ककीर्तिके नामसे लिखा गया था कि परम सुंदर वह कन्यारत्न मेरे सेवकके लिए योग्य नहीं है। उसकी प्राप्ति मुझे होनी चाहिए। उस पत्रको बांचकर सब लोग आश्चर्यचकित हुए। मेघेश्वर विचार करने लगा कि अर्ककीर्ति मेरा स्वामी है। मैं उसका सेवक हूं। ऐसी अवस्थामें मेरा अपमान करना क्या उसका धर्म है? इस प्रकारके विचारसे पत्रोत्तर भेजनेकी तैयारीमें था, इतनेमें उद्दंडमति मंत्री आया व कहने लगा कि युवराजने यह भी कहा है कि हाथी, घोडा, कन्या, आदियोंमें जो उत्तम रत्न हैं, मेरे लिए मिलने चाहिए। वह तुम्हारे लिए कैसे मिल सकते हैं। तुम्हारे घरकी स्त्रियोंकी मांगनी नहीं की, कदाचित् अभिमानसे यह कह रहा हूं ऐसा मत समझो।

मेघेश्वर दंग रह गया। पुनः उसने पूछा कि युवराजने और क्या कहा है? उद्दंडमतिने कहा कि पाणिग्रहण विधान होनेके पहिले मैं तुम्हें सूचना दे रहा हूं। वह तुम्हारी स्त्री नहीं बनी है। ऐसी अवस्था में उसे लाकर मुझे सौंपदेना तुम्हारा कर्तव्य है, अन्यथा युद्धकी तयारी करो।

अंतिम शब्दको सुनकर मेघेश्वरको दुःख हुआ। विचारमें पडा कि अपनी पत्नीको देकर मैं कैसे जी सकता हूं। अपने स्वामीके साथ युद्ध भी कैसे कर सकता हूं? इसे पकड भी नहीं सकता। छोड भी नहीं सकता। अब क्या करना चाहिये। बडा ही विकट प्रसंग है।

अपने हाथमें स्थित पत्नीको मैं दूसरोंको दूं तो मेरे लिए धिक्कार रहो। मैं क्या मलेयालो या तुलुव हूं? मैं कल मूछोंपर हाथ रखकर कैसे बात कर सक्ता हूं? राजा जबर्दस्ती अपनी पत्नीको लेजा रहा है, इससे रोते हुए मैं भाग जाऊं तो क्या मैं बनिया हूं, बामण हूं या किसान हूं? क्या बात है? मेरा सर्वस्व हरण हुआ तो हर्ज नहीं, सुलोचनाको नहीं दे सकता। मूर्ति [शरीर] का नाश होना बुरी बात नहीं है, परंतु कीर्तिका नाश होना अत्यंत बुरी बात है। इस कन्याके लिए मेरा प्राण जावे, परंतु अब कीर्तिके लिए ही मरूंगा,' इस विचारसे धैर्यके साथ सम्राट्के पुत्रका सामना करनेके लिए तैयार हुआ।

काशीके राजा अकंपन जयकुमारके साथ मिलकर अर्ककीर्तिकी ओरसे आये हुए राजावोंके साथ युद्ध करनेके लिए तैयार हुआ। युद्ध सन्नाहभेरी बजाई गई। अष्टचंद्र व अन्य राजावोंको मालुम हुआ कि जयकुमार युद्ध सन्नद्ध हुआ, वे अत्यधिक क्रोधित हुए व युद्धके लिए अपनी सेनाको लेकर चले। रणभूमिमें भयंकर युद्ध प्रारंभ हुआ। दोनों ओरसे प्रचंड वीरताके साथ युद्ध होने लगा। वह कुछ मामूली युद्ध नहीं था। अपितु रक्तकी नदी ही बहाने योग्य युद्ध था। परंतु पुण्योदयके कारण वहांपर एक नवीन घटना हुई।

पहिले जयकुमारने एक सर्पको मरते समय पंचनमस्कार मंत्र दिया था, वह धरणेंद्रदेव होकर पैदा हुआ था। सो इस प्रचंड युद्धके समय उस देवको अवधिज्ञानसे मालुम होनेके कारण वह आया।

" उस दिन मुझे उपकार किया है। इस समय मैं तुम्हारे शत्रुवोंका नाश करूंगा "। इस प्रकार उस देवने कहा। जयकुमारने कहा कि ऐसा नहीं होना चाहिए। तुम यहांपर आये, बडे संतोषकी बात है। परंतु आगे सबको आनंद हो ऐसा व्यवहार होना चाहिए। यदि सबको मारनेका हो तो तुम्हारी क्या जरूरत है? यह काम मैं भी कर सकता हूं। मैंने यही विचार किया था कि इन लोगोंको

मारकर मैं स्वयं भी मारूंगा। परंतु अवधिज्ञानसे जानकर तुम जब आये तब सबका हित होना चाहिए। मेरे स्वामीकी सेनाका नाश मैं करूं तो क्या यह उचित हो सकता हैं? इसलिए तुम अष्टचंद्र व मंत्रीको बांधकर मुझे देदो। बस! और कुछ नहीं चाहिए।

बस! यह क्या बडी बात है। मैं, अभी उनको बांधकर लाता हूं। इस प्रकार कहकर वह नागराज वहांसे गया व थोडी देरमें अष्टचंद्र व उद्दंडमती मंत्रीको नागपाशमें बांधकर आकाश मार्गसे ले आ रहा था। इतनेमें दो हजार गणबद्धदेवोंने देख लिया व वे उस नागराजको पीछा करते हुए व गर्जना करते हुए वे जिस जोशके साथ आ रहे थे उसे देखकर वह नागराज घबरा गया। जब उन लोगोंने आकर नागराजको घेर लिया तो नागराजने उन अष्टचंद्र व दुष्टमंत्रीको नीचे छोड दिया। गणबद्ध देवोंने पडते हुए उनको बचाया। उनको बंधनसे मुक्त किया।

इस प्रकार इस अवसरपर जो हल्ला हुआ उसे सुनकर अर्ककीर्ति को संदेह हुआ कि कहीं युद्ध तो नहीं हुआ है! आदिराज उसी समय दुंदुभिघोष नामक हाथीपर चढे व भाईसे कहने लगे कि मैं अभी देख कर आता हूं। एक हजार गणबद्ध देवोंको अपने भाई अर्ककीर्तिके पास छोडकर, एक हजार गणबद्धोंको अपने साथ लेकर आदिराज उस रणभूमिमें प्रविष्ट हुए। सर्व सेनाकी दृष्टि आदिराजकी ओर लगी थी, आदिराजकी तरफकी सेनाने उसे नमस्कार किया। आदिराजने प्रश्न किया कि इस नगरको घेरनेका क्या कारण है? इस प्रकार युद्ध करके अनेक जीवोंकी हत्या कर कन्या लानेके लिए तुम लोगोंको किसने कहा था?

इतनेमें सन्मति मंत्री आगे आया व कहने लगा कि स्वामिन्! ये सब झूठे हैं। सुलोचनाने सचमुचमें मेघराजके गलेमें माला डाली है। परन्तु आप लोगोंके सामने झूठ बोलकर इन्होंने फसाया। मैंने उनको उसी समय ऐसी कृतिसे रोका था। परंतु उन

लोगोने कहा कि जब युवराजके लिए हम कन्याका संधान कर रहे हैं तुम क्यों रोक रहे हो। इसलिए मैं सबके बीचमें बुरा क्यों कहलावूं; इस विचारसे चुप रहा। कलसे इनकी कृतिको मौनसे देख रहा हूं। कुमार! आप ही विचार करो, अपनी स्त्रीको कौन छोड सकते हैं। जयकुमारने युद्धकी तैयारी की अष्टचंद्र व मंत्रीको नागराजने आकर नागपाशसे बांध लिया। वह जिस समय ले जा रहा था गण-बद्ध देवोने आकर छुडा लिया। आगेकी सर्व हालत आप जानते ही हैं।

इस प्रकार कहकर सन्मति चुप रहा। आदिराज मनमें सोचने लगे कि अर्हन्! इन लोगोने बहुत बुरा काम किया। सन्मति मंत्रीको बुलाकर आदिराजने कहा कि जावो, जयकुमारको बुला लावो। तत्क्षण आकर जयकुमारने आदिराजका दर्शन किया। बडी नम्रताके साथ साष्टांग नमस्कार करते हुए जयकुमारने प्रार्थना की कि राजकुमार! मैं स्वामिद्रोही हूं। मुझ सरीखे पापीको याद क्यों किया? विजय, जयंत, अकंशक वगैरे सभी वहांपर आदिराजको नमस्कार करते हुए जमीनपर पडे हैं। जयकुमारकी आंखोंमें अश्रुधारा बह रही है। तब आदिराजने सबको उठनेके लिए कहा। तब सब उठ खडे हुए। पुनः जयकुमार कहने लगा कि स्वामिन्! जब आपकी सेनाने हम लोगोंको चारों तरफसे घेर लिया तो उसका प्रतीकार करना मेरा कर्तव्य था। सचमुचमें इसकी गणना स्वामिद्रोहमें नहीं होनी चाहिये। राजन् आप अभि-मानके संरक्षणके लिए लोकशासन करते हैं। यदि अपने सेवकके अभिमानको आपही अपने हाथसे छीननेका प्रयत्न करें तो फिर उसके संरक्षण करनेवाले कौन हैं? जयकुमार अत्यंत दुःखके साथ कहने लगा। पुनः " दूसरे सेवकका अपमान न करें इसकी पूर्ण खबरदारी स्वामी लेते हैं। यदि वही स्वामी सेवककी स्त्रीकी अभिलाषा करें तो उस हालतमें उस सेवककी क्या गति होगी। गुरु समझकर नमस्कार करनेके लिए एक स्त्री जावे व गुरु ही उसपर मोहित होवें तो उस

स्त्रीकी क्या हालत होगी ? क्या उस हालतमें धर्म रह सकता है ? राजकुमार ! विचार करो, सेवककी इज्जत पर यदि स्वामीने हाथ डाला तो क्या वह रह सकती है ? यह तो ठीक उसी तरहकी बात है कि एक मनुष्य देवालयको शरणस्थान समझकर जाता हो और देवालय ही उसपर पडता हो। यह सचमुचमें मेरे पापका उदय है। जब स्वामी ही सेवकके तेजको कम करनेका प्रयत्न कर रहे हैं उस हालतमें जीवित रहना क्षत्रियपुत्रका धर्म नहीं है। इसलिए युद्धकर प्राणत्याग करनेके लिए मैं उद्यत हुआ। राजकुमार ! मैं आज जब साक्षात् मेरी स्त्रीके अपहरण होते हुए अपने अभिमानके रक्षणके लिए मरनेको तैयार नहीं हुआ तो कल राज्याभूषण वगैरे इनामके मिलनेपर भी तुम्हारे अभिमानके लिए कैसे मर सकता हूं। इसलिए मैंने सामना करनेका निश्चय किया, अब जो कुछ भी करना हो करो, तुम समर्थ हो।

विशेष क्या ? आप लोग मेरे स्वामी भरतसम्राट्के पुत्र हैं, इस लिए मैं डर गया हूं। यदि और कोई इस प्रकार सामना करनेके लिए आते तो उनकी जीवंत चीरकर दिग्बलि देता " इस वाक्यको कहते हुए जयकुमार क्रोधसे लाल हो रहा था।

पुनश्च—तुम्हारी सेनाके साथ मैंने युद्धकी तैयारी जरूर की। परन्तु विचार करो राजकुमार ! दूसरे कोई मेरे साथ युद्ध करनेके लिए आते तो सबको रणभूतका आहार बनाता। सामने शत्रु युद्धके लिए खडे हों, उस समय उनके साथ युद्ध न करके अपने स्वामीके पास जाकर रोवें यह वीरोंका धर्म नहीं है। तुम्हारे पिताजीके द्वारा पालित व पोषित मैं सेवक हूं। राजकुमार ! आप क्यों कष्ट लेकर आये ? आपके साथियोंको भेज देते तो ठीक होता। परंतु मुझपर चढाई करनेके लिए आप स्वतःही तशरीफ ला रहे है।

तब आदिराजने मेघेशको उत्तर दिया।

जयकुमार! सुनो, हम लोगोंको आकर उन्होंने यह कहकर फंसाया कि सुलोचनाने किसीके भी गलेमें माला नहीं डाली थी। इस लिए हमने स्वीकृति दी। युद्ध करके दूसरोंके स्त्रीको लानेके लिए क्या हम कह सकते हैं? किनकी स्त्रियोंको कौन मांग सकते हैं? क्या यह सज्जनोंका धर्म है? यदि ऐसा करें तो हमें परनारीसहोदर कौन कह सकते हैं। इस प्रकारकी उत्तम उपाधिको छोडकर हम लोग जीवंत कैसे रह सकते हैं? हमारे चारित्रके अंतरंगको क्या तुम नहीं जानते?

अपनी स्त्रियोंको कौन दे सकते हैं। यदि देवें तो भी वह उच्छिष्टके समान है। उसे कौन ले सकते हैं? मंडलेश्वर उस प्रकार लेनेके लिए तैयार हुए तो क्या वह उचित हो सकता है?

यह भी जाने दो, तुम व तुम्हारे भाईयोंने जो सेवा की है वह क्या थोडी है? ऐसी अवस्थामें तुम्हारे हृदयको हम दुखावें तो क्या हम बुद्धिमान् कहलानेके अधिकारी हैं? हम सब तो हमारे पिताजीके पास आराममें खेलकूदमें लगे रहे। तुम लोगोंने जाकर पृथ्वीको वशमें कर लिया। यह क्या कम महत्वका विषय है? ऐसी अवस्थामें यदि तुम्हारा पालन हमने नहीं किया तो हमारे हृदयमें तुम्हारी सेवाओंकी स्मृति नहीं कहनी चाहिये। जयकुमार! उसे भी जाने दो। आज इस नगरमें राजा अकंपनने हम लोगोंका कितना आदर सत्कार किया! कितनी उत्कटभक्ति उसके हृदयमें हमारे प्रति है? ऐसी अवस्थामें उसकी पुत्रीके विवाहमें विघ्न उपस्थित करें तो हम लोगोंको कोई भले कह सकते हैं? हम लोग विघ्नसंतोषी हुए। विशेष क्या? यदि ऐसे अन्यायके लिए हम सहमत हुए हों तो हमें पिताजीके चरणोंका शपथ है, यह हम लोगोंसे कभी नहीं हो सकता है। परंतु इन लोगोंने हमको फंसाया, उनको क्या दंड मिलना चाहिये इसका विचार मैं नहीं कर सकता, क्योंकि मैं राजा नहीं हूं। चलो युवराजके पास चलो, वहांपर सब विचार करेंगे। अब तुम्हारी चिंताको छोडो, तुम्हें मेरा शपथ है।

5

जयकुमारने कहा कि मेरी चिंता दूर होगई। साथमें अपने भाई व मामाके साथ पुनः नमस्कार किया।

आदिराजने साक्षात् भरतेशके समान ही उस समय जयकुमारको वस्त्र, आभूषण रथरत्नादि भेंट किये।

पुनः कुछ विचार करके आदिराजने सबको वहांसे जानेके लिए कहकर सिर्फ सन्मति मंत्री, अकंपन, जयकुमार व उसके भाईयोंको अपने पास बुलाया व एकांतमें कहने लगे कि जयकुमार! सुनो किसीके जीवनका नाश करना उचित है या किसीको बचाना अच्छा है? तब उत्तरमें उन लोगोने कहा कि किसीका जीवन बिगडता हो तो उसे संरक्षण करना सज्जनोंका धर्म है। तब आदिराजने कहा कि आखर तक इस वचनको पालन करना चाहिये। तब उन लोगोंने उसे स्वीकार किया।

आदिराजने पुनः कहा कि अष्टचंद्र व मंत्रीकी इस करतूतका पिताजीने सुनी तो वे इनको देशभ्रष्ट किये विना नहीं छोडेंगे। देशभ्रष्ट करनेपर वे नियमसे दीक्षित हो जायेंगे। इसलिये यह कार्य तुम लोगोंसे क्यों होना चाहिये? मैं जानता हूं कि इन लोगोंने बहुत बुरा काम किया है। उसके लिए योग्य शासन हो सकता है, परंतु शासन करने पर वे बिगड जायेंगे। कुलपक्षको लक्ष्यमें रखकर अपनेको इस प्रकरण को भुलाना चाहिये। एक बात और है भाई अर्ककीर्तिके लिए कन्या ले आवेंगे, इस वचनको देकर वे आये हैं। अब उनकी बात रहे इसका क्या उपाय है।

काशीके राजा अकंपनने संतोषके साथ कहा कि मेरी और एक कुमारी कन्या है। उसे युवराजको समर्पण करूंगा। इससे भी वह सुंदर है। स्वयंवरसे ही उसका भी विवाह करना चाहता था, परंतु उसने न मालुम क्यों इनकार किया।

तब आदिराजने कहा कि ठीक है। वह भाईके लिए योग्य कन्या

है। आदिराजने यह भी कहा कि अष्टचंद्र व जयकुमारको इस प्रकरणसे वैमनस्य उत्पन्न हुआ, इसे दूर कर प्रेम किस प्रकार उत्पन्न कराना चाहिये ? तब काशीके राजा अकंपने कहा कि उन अष्टचंद्रोंको हम आठ कन्यावोंको और देंगे। हमारे वंशमें आठ कन्यायें और हैं। तब आदिराजने कहा कि ठीक हुआ। अब कोई बात नहीं रही। उसी समय अष्टचंद्रोंको बुलाकर जयकुमारके साथ प्रेमसमेलन कराया। उद्दंड मति व सन्मतिको भी योग्यरीतिसे संतुष्ट कर अर्ककीर्तिकी तरफ जाने के लिए वहांसे सब निकले।

हाथीसे नीचे उतरकर सबने अर्ककीर्तिको नमस्कार किया। जयकुमारको भी साथमें आये हुए देखकर अर्ककीर्ति समझ गये कि कन्या को ये लोग नहीं ला सके। कन्याको यदि ये लोग लाये होते तो जयकुमार लज्जासे यहां पर कभी नहीं आता। यह विचार करते हुए अर्ककीर्तिने प्रश्न किया कि बोलो! आप लोगोंका कार्य का क्या हुआ ? सब लोग मौनसे खडे थे, आदिराजने दुष्टोंकी दुष्टताको छिपाते हुए उत्तर दिया कि भाई! इन लोगोंके जानेके पहिले ही उस कन्याने समस्त बांधवोंकी अनुमतिसे जयकुमारके गलेमें माला डाल दी है। और उसी हर्षको सूचित करनेके लिए अनेक गाजेबाजेके शब्द हुए थे। क्यों कि कल उसने माला नहीं डाली थी। दूसरी बात ये सब एक विषयपर प्रार्थना करनेके लिये आये है। उद्दण्ड मति ओर सन्मतिकी ओर इशारा करते हुए कहा कि कहो क्या बात है।

मंत्रियोंने कहा कि स्वामिन्! राजा अकंपनको एक कन्या अत्यंत सुंदरी है, उसका विवाह आपके साथ करनेका प्रेम अकंपनने बताया है। इसके लिए आपकी सम्मति चाहिये।

यह सुनकर अर्ककीर्तिको थोडी हसी आई, और कहा कि ठीक है। जावो, आप लोग अपने आनंदको मनावें। तब उन लोगोंने कहा कि स्वामिन्! आपका विवाह ही हमारा आनंद है। सब लोगोंको जानेके

लिए आज्ञा दी गई, अपने २ स्थानपर पहुंचकर सबने विश्रांति ली।

दूसरा दिन स्नान भोजनादिमें व्यतीत हुआ। रात्रि विवाहके लिए तैयारी की गई। पाणिग्रहणके लिए योग्य मुहुर्तमें लक्ष्मीमतिको श्रृंगार करके विवाहमंडपमें उपस्थित किया।

लक्ष्मीमति परमसुंदरी है। युवती है, अत्यंत कोमलांगी है। अथवा श्रृंगाररसने ही स्त्रीरूपको धारण किया हो ऐसा मालुम होरही थी।

भाजवानी, सिंहकटी, मृगनेत्र, हसमुखी, पीनस्तन, दीर्घबाहु, इत्यादिसे वह परम सुंदर मालुम हो रही थी। शायद युवराजने इसे तपश्चर्यासे ही पाया हो। विशेष क्या वर्णन करें! देवांगनावोंने उसे एक दफे देख ली तो दृष्टिपात होनेकी संभावना थी।

उसे लक्ष्मीमति कहते थे। परंतु लक्ष्मी तो उसकी बराबरी नहीं कर सकती थी। क्योंकि लक्ष्मी तो चाहे जिसको पसंद करती है। परन्तु लक्ष्मीमति तो युवराज अर्ककीर्तिके लिए ही निश्चित कन्या थी।

स्वयंवरकी घोषणा देकर सबको एकत्रित किया जाय तो अनेक राजपुत्र अपनेको चाहेंगे। अंतमें माला किसी एकके गलेमें ही डालना होता है, यह उचित नहीं है। क्योंकि स्वयंवर हमेशा अनेकोंके हृदयमें संघर्षण पैदा करनेवाला होता है। इसलिए लक्ष्मीमतिने स्वयंवर विवाहके लिए निषेध किया। इसीसे उसके हृदयकी गंभीरताको जान सकते हैं।

स्वयंवरमें सुंदरपतिको ढूंढनेके लिए सबको अपने सुंदर शरीरको दिखाना पडता है। इस हेतुसे जब वह अत्यंत गूढरूपसे रही उसकी तपश्चर्याके फलसे अत्यंत सुंदर व सम्राट्के पुत्र अर्ककीर्ति ही उसके लिए पति मिला। यह शील पालनका फल है। सुलोचनाने स्वयंवर मंडपमें पहुंचकर अनेक राजाओंको देखकर भी एक सामान्य क्षत्रियके साथ पाणिग्रहण किया। परन्तु लक्ष्मीमतिके लिए तो षट्खंडाधिपतिका पुत्र ही पति मिला। सचमुचमें इसका भाग्य अधिक है।

विशेष क्या वर्णन करें। वसंतराज वनमें जिस प्रकार कामदेवको रतिदेवीको लाकर समर्पण करता है उसी प्रकार काशीपति अकंपनने

युवराजको संतोषके साथ लक्ष्मीमतिको समर्पण किया। मंगलाष्टक, होमविधान जलधारा इत्यादि विधिसे विवाह किया। राजा अकंपनने सर्व महोत्सवको पूर्णकर राजमहलमें प्रवेश किया। दूसरे दिन मेघराज (जयकुमार) और सुलोचनाका बहुत वैभवसे विवाह हुआ और अष्टचंद्रोंके भी विवाह हुए। आदिराजका भी इस समय किसी कन्याके साथ विवाह करानेका था। परंतु उसके लिए योग्य कन्या नहीं थी। अत एव नहीं होसका।

भरतजीने जिस प्रकार पुण्यके फलसे अनेक संपत्ति और सुखके साधनोंको पाया है उसी प्रकार उनके समस्त परिवारको भी रात्रिदिन सुख ही सुख मिलता है। इसके लिए अर्ककीर्तिका ही प्रकृत उदाहरण पर्याप्त है। अर्ककीर्ति जहां भी जाते हैं वहां उनका यथेष्ट आदर सत्कार होता है, अभ्यागमन होता है, इसमें भरतजीका भी पुण्य विशेष कारण है। कारण यशस्वी व लोकादरणीय पुत्रको पानेके लिए भी पिताको भाग्यकी आवश्यकता होती है। अत एव जिन लोगोंने पूर्वभवमें इंद्रियसुखोंकी उपेक्षाकी है। संसार शरीर भोगोंमें अत्यधिक आसक्त न हुए हैं उनको परभवमें विशिष्ट भोग वैभवकी प्राप्ति होती है।

भरतजीने प्रतिजन्ममें इसी प्रकारकी भावना की थी कि जिससे उनको व उनके परिवारको सातिशय संपत्ति, वैभव व परमादरकी प्राप्ति होती है। उनकी प्रतिसमय भावना रहती है कि:—

हे परमात्मन्! आप इंद्रियसुखोंकी अभिलाषासे परे हैं, इंद्रियोंको आप अपने सेवक समझते हैं। उन सेवकोंको साथ लेकर आप अतींद्रिय सुखको साधन करनेमें मग्न हैं। इंद्रवंदित हैं। इसलिए हे अमृतरसयोगींद्र! आप मेरे हृदयमें सदा बने रहें।

हे सिद्धात्मन्! आप लक्ष्मीनिधान हैं, सुखनिधान हैं, मोक्षकलानिधान हैं, प्रकाशनिधान और शुभ निधान हैं; एवं ज्ञाननिधान हैं। अत एव प्रार्थना है कि मुझे सन्मति प्रदान करें।

इति लक्ष्मीमति उद्वाहसंधिः।

नागरालापसंधि.

विवाह होनेके सात आठ रोज बाद आदिराजने अर्ककीर्तिके महलमें पहुंचकर अष्टचंद्र व दुष्टमंत्रियोंने जो कुछ भी कुतंत्रकी रचना की थी, सर्व वृत्तांत अपने भाईको कहा। अर्ककीर्ति एकदम क्रोधित हुआ। आदिराजकी तरफ देखते हुए कहने लगा कि दुष्टोंको इस प्रकार क्षमा कर देना उचित नहीं है। परंतु तुमने क्षमा कर दी! अब क्या हो सकता है? जानेदो। आदिराजने कहा कि भाई! क्या उन्होंने अपने सुखके लिए विचार किया था? आपके लिए उन्होंने कन्याकी तैयारी की थी। अपने ही तो वंशज है, उनका अपराध जरूर है, उसे एक दफे क्षमा करदेना आपका कर्तव्य है।

उत्तरमें अर्ककीर्तिने कहा कि कुमार! तुम्हारे विचार, कार्य आदि सभी असदृश है। तुम बहुत बुद्धिमान् व दूरदर्शी हो। इस प्रकार कहकर मुसकराते हुए आदिराजको वहांसे रवाना किया।

सुलोचना स्वयंवरके संबंधमें जो समर हुआ वह छिप नहीं सका। जिस प्रकार गरम खूनका संचार होता है उसी प्रकार यह युद्धकी वार्ता भी देशकी सर्व दिशामें एकदम फैल गई।

इस समाचारके सुनते ही अर्ककीर्ति और आदिराजके मामा भानुराज और विमलराज वहांपर आये। क्यों कि लोकमें कहावत है कि मातासे भी बढकर मामाकी प्रीति हुआ करती है। आये हुए मातुलोंका दोनों भाइयोंने बहुत विनयके साथ आदर किया है।

एक दिनकी बात है कि अर्ककीर्तिकुमार अनेक राजाओंके साथ दरबारमें विराजमान है। उस समय गायकगण उदयरागमें आत्मस्वरूपका वर्णन गायनमें कर रहे थे उसे बहुत आनंदके साथ सुनते हुए अर्ककीर्ति अपने सिंहासनपर विराजे हैं। उस समय दूरसे गाजेबाजेका शब्द सुनाई दे रहा था। सबको विचार हुआ कि यह क्या होना

चाहिये। एक दूत दौडकर बाहर जंगलमें गया और आकर कहने लगा कि स्वामिन्! आकाशमार्गमें अनेक विमान आरहे हैं। इसका बोलना बंद भी नहीं हुआ था, इतनेमें एक सेवक और आया उसने अर्ककीर्तिको विनयके साथ नमस्कार कर कहा कि स्वामिन्! सम्राट्का मित्र नागर आरहे हैं। तब युद्धके वृत्तांतको सुनकर सम्राट्ने उनको यहांपर भेजा होगा इस प्रकार सब लोग सोचने लगे। इतनेमें नागरांक अकेला उस दरबारमें प्रविष्ट हुआ। क्यों कि उसे कोई रोकनेवाले नहीं थे। चक्रवर्तिका वह मित्र है। जिस समय वह अर्ककीर्तिकुमारके पास जा रहा था उस समय वेत्रधारी लोग जोरजोरसे कह रहे थे कि स्वामिन्! नागरदेव आरहे हैं। आप अवलोकन करें।

नागरने युवराजके पास पहुंचकर उसे अनेक प्रकारके उत्तम वस्तुवोंको भेंटमें देकर साष्टांग नमस्कार किया। एवं युवराजकी जयजय कार करते हुए उठा। पुनः मंत्रीकी भेंट, दक्षिण आदि मित्रोंकी भेंटको अर्पणकर नमस्कार किया।

युवराजने भी उसे अपने पासमें बुलाकर पासमें ही एक आसन दिया। पासमें बैठे हुए आदिराज कुमारको भी विनयके साथ नमस्कार कर उस आसनपर नागर बैठ गया।

अर्ककीर्ति उपस्थित राजावोंसे कहने लगे कि आप लोग देखो कि नागरका प्रेम कितना जबर्दस्त है। हम लोग परदेशमें जावें तो भी वह अनेक कष्ट सहनकर आया है।

राजावोंने कहा कि युवराज! आपको छोडकर कौन रह सकते हैं? आपकी दरबार किसके मनको हरण नहीं करेगी। फिर नागरोत्तम क्यों नहीं आयगा? यह सब आपका ही प्रभाव है।

अर्ककीर्तिने नागरसे प्रश्न किया कि नागर! क्या पिताजी कुशल हैं? घरमें सब कुशल तो हैं? विमानमें आने योग्य गडबडी क्या है? जरा जल्दी बोलो तो सही।

उठ खडे होकर नागरने विनंति की कि स्वामिन् ! आपके पिताजी अत्यंत सुखपूर्वक हैं। सुवर्णमहलमें रहनेवाले सभी सकुशल हैं। आपके भाई सबके सब सुखपूर्वक हैं। यानमें आनेसे देरी होगी इसलिए मैं विमानमें बैठकर आया। इतनी जल्दी क्या थी? इसके उत्तरके लिए एकांतकी आवश्यकता है।

अर्ककीर्तिने कहा कि अच्छी बात, अब तुम बैठकर बोलो।

नागर बैठ गया, सब लोग समझ गये। व वहांसे सबको भेजकर अर्ककीर्तिने जयकुमार आदि कुछ प्रधान २ व्यक्तियोंको वहींपर ठहराया। और नागरसे कहा कि बोलो, अब एकांत ही है। क्यों कि ये सब अपने ही हैं, और सुनने योग्य हैं। तब नागरने अपने वृत्तांत को कहना प्रारंभ किया। उसके बोलनेके चातुर्यको कौन वर्णन कर सकते हैं।

स्वामिन् ! जबसे आप दोनों इधर आये हैं तबसे चक्रवर्ति प्रतिनित्य आप लोगोंके समाचारको बहुत उत्कंठाके साथ सुनते हैं। आप लोग कहां है, कौनसे नगरमें हैं इत्यादि समाचार हम लोगोंसे पूछते रहते हैं। सम्राट्के पासमें बहुतसे पुत्र हैं, उनसे प्रेमालाप करते हैं तथापि आप लोगोंका स्मरण हदसे ज्यादा करते हैं, उस पुत्रानुरागके मैं वर्णन नहीं कर सकता। दुनियामें देखा जाता है कि किसीको ७-८ पुत्र हों तो भी उनके ऊपर प्रेम नहीं रहता है, परंतु चक्रवर्तिको पंक्तिबद्ध हजारों पुत्रोंके होनेपर भी उनके प्रति समान प्रेम है, उसका मैं कहांतक वर्णन करूं। आप दोनोंका बार २ स्मरण किया करते हैं। हम लोग बार २ उनको समझाते हैं कि क्या अर्ककीर्ति और आदिराज बच्चे हैं। वे दोनों विवेकी व बुद्धिमान् हैं, इतनी चिंता आप क्यों करते हैं। उत्तरमें वे कहते हैं कि मैं भूलनेके लिए बहुत प्रयत्न करता हूं, परंतु मेरा मन नहीं भूलता है, कोई भूलका औषध हो तो दे दो।

हम लोग फिर कहते हैं कि राजन् ! आपके पुत्र स्वदेशमें ही हैं, आर्य खंडमें हैं, म्लेच्छखंडमें नहीं गये हैं। बहुत दूर नहीं गये है, फिर

इतनी चिंता क्यों करते हैं। तब उत्तरमें भरतजी कहते हैं कि मेरे पुत्र अयोध्यानगरके बाहर गये तो भी मेरा हृदय नहीं मानता है तो मैं वे अन्यत्र जानेपर उनको छोडकर कैसे रहसकता हूं? पुनश्च कहते हैं कि पुत्रोंसे रहित संपत्ति नहीं है, वह आपत्ति है। सत्कविता रहित पठन राखके समान है, उनको छोडकर मेरा जीवन अलंकारहीन कानके समान है। मुझे बहुतसे पुत्र हैं जो हार व पदकके समान हैं। परंतु हार व पदकके रहनेपर भी कानमें कोई अलंकार न हो तो उन हार पदकोंसे शोभा कैसे होसकती है? आदिराज और अर्ककीर्ति दोनों मेरे कर्णभूषणस्वरूप हैं।

तब हम लोगोंने कहा कि अपने उनको परदेशमें क्यों भेजा? यहीं रख लेना था। आपने निषेध किया होता तो वे आपके पास ही रहते। उत्तरमें सम्राट् कहते हैं कि तब उनको भेजते समय दुःख नहीं हुआ बादमें दुःख हुआ, इसे क्या करूं?

आप लोगोंके समाचारको रोज सुनते रहते हैं, आप लोगोंका स्थान२ पर हाथी, घोडा, कन्या आदि प्रदानकर जो सत्कार होता है उससे तो वे परम संतुष्ट होते हैं। रात्रिंदिन सम्राट्के पास एक २ संतोषके समाचार आते हैं, उन्हे सुनकर वे अत्यधिक प्रसन्न होते रहते हैं।

परंतु फूलकी मालाकी बीचमें एक कांटेके आनेके समान युद्धका समाचार सुननेमें आया। वह समाचार इस प्रकार आया कि काशीमें जो अकंपनने स्वयंवर महोत्सव कराया था उसमें देशदेशके अनेक राज उपस्थित थे। उस स्वयंवरमें साम्राट्के भी पुत्र गये। कन्याने मेघराजके गलेमें माला डालकर हाथीपर सवार होकर जब नगर प्रवेश कर चुकी तब दुःखित हुए अनेक राजा व उद्दंडमतिने इस पर एतराज किया। युवराजके होते हुए यह सुंदर कन्या दूसरोंको नहीं मिल सकती है। इस बातको तुमने भी स्वीकार किया। बादमें युद्ध हुआ। दोनों तरफसे घोर युद्ध हुआ। अष्टचंद्र भी स्वर्गांगनाओंके कुचशरण हुए। एक बात और सुनी, परंतु मैं आपके सामने उसे कहनेके लिए डरता हूं।

तब अर्ककीर्तिने कहा कि डरो मत बोलो, तुझे मेरा शपथ है। तब नागर पुनः बोला बात क्या है ? नागराजने तुम्हे नागपाशसे बांधकर मेघेशको दे दिया है। हम लोगोंको बडी चिंता हुई। सम्राट् भी इस समाचारको सुनकर दुःखी हुए। इतनेमें समाचार मिला कि युद्ध के अनंतर राजा अकंपनने एक कन्या जयकुमारको देकर दूसरी कन्या के साथ युवराजका विवाह कर दिया।

सम्राट्ने इन सब समाचारोंको सुनकर कहा कि एकदफे किसीके गलेमें कन्याने माला डाल दी तो वह कन्या परस्त्री होगई, जिसमें जयकुमार मेरे पुत्रके समान है। ऐसी अवस्थामें अर्ककीर्तिने यह ऊधम क्यों मचाया ? यह उचित नहीं किया। इसलिए अभी इसका विचार होना चाहिये। तब भरतजीने मुझे आज्ञा दी कि नागर ! अभी तुम जाकर सर्व वृत्तांतको समझकर आवो। इसलिए मैं यहांपर आया, यह कहकर नागर चुप होगया।

यह सब सुनकर अर्ककीर्तिको आश्चर्य हुआ, नाकपर उंगली रखकर अर्ककीर्ति कहने लगा कि हाय ! परमात्मन् ! पापके वशसे यह लोकमें अपकीर्ति मेरी हुई। नागरांक ! अष्टचंद्र व उद्दंडमति मंत्रीको नागपाशका बंधन हुआ था, यह सत्य है। उसी समय वह दूर भी होगया। बाकीके सर्व अपवाद मिथ्या हैं। मित्र नागरांक हम दोनों भाई स्वयंवर मंडपमें गये ही नहीं थे। परस्त्रीके प्रति हमने अभिलाषा भी नहीं की थी। बीचके राजावोंके कारणसे यह सब युद्ध हुआ। आदिराजने उसी समय बंद करा दिया। मुझे व जयकुमारको अलग २ कन्यावोंको देकर सत्कार किया यह बात बिलकुल सत्य है। इसी प्रकार अष्टचंद्र राजावोंको भी अलग २ कन्यावोंको देकर सत्कार किया, यह भी सत्य है। मित्र ! मैं क्या राजमार्गको उलंघनकर चल सकता हूं ?। यदि मैं अनीतिमार्गमें जाऊं तो क्या भाई आदिराज उसे सहन करसकता है ?। कभी नहीं। हम लोगोंको परदारसहोदर कहते हैं, फिर वह कैसे बन सकता हैं ?।

जिस समय पिताजीने दिग्विजय किया था उस समय जयकुमारने अपने भाईयोंके साथ जो सेवा बजाई थी वह क्या थोडी है ? यदि मैं उसे भूल जाऊं तो क्या मैं चक्रवर्तिका पुत्र कहला सकता हूं ? हम लोग तो पिताजीकी संपत्तिको भोगनेवाले हैं, परंतु खजानेको भरनेवाला जयकुमार है। विचार करनेपर हम सब लोगोंसे बढकर वही पिताजीके लिए पुत्र है, वह सेवक नहीं है।

दिग्विजयके प्रसंगमें जब धूर्तदेवतावोंको जयकुमारने मार भगाया तब पिताजीने आलिंगन देकर उससे कहा था कि तुम अर्ककीर्तिके समान हो, उसे मैं भूला नहीं हूं। ऐसी अवस्थामें उसके प्रति मैं यह कार्य कैसे कर सकता हूं ? पिताजीने जयकुमारको पुत्रके समान माना है, वह कभी अन्यथा नहीं होसकता है। आज हम लोग साडू बनगये हैं। यह उसीका अर्थ है। पिताजीने जो उस दिन कहा था उस वचनको अन्यथा नहीं करना चाहिये इस विचारसे काशीके राजा अकंपनने आज हम लोगोंका संबंध कर दिया। इस प्रकार अपने श्वसुरको संतुष्ट करते हुए अर्ककीर्तिने कहा।

अर्ककीर्तिके वचनको सुनकर जयकुमार, विजय, जयंत उठकर खडे हुए एवं आनंदके साथ कहने लगे कि स्वामिन् ! हम लोग आपके हृदयको जानकर अत्यंत प्रसन्न हुए हैं। हम लोगोंने क्या सेवा की है। आपके पिताजीके प्रभावसे ही दिग्विजय सफलतासे हुआ। हम लोग आपके सेवक हैं। परंतु आपने हमें साडू बनाकर जो अपने बडे हृदयका परिचय दिया है इससे हमारी आत्मा आपकी तरफ आकर्षित होगई है। उस दिन आपके पिताजीने जो हमारा आदर किया था एवं आज आपने जो हमारे प्रति प्रेम व्यक्त किया है, इसके लिए हम लोग क्या कर सकते हैं ! संदेह नहीं चाहिये, हम लोग हमारे शरीरको आपकी सेवामें समर्पण कर देते हैं।

इस प्रकार कहते हुए तीनों भाई युवराजके चरणोंमें नमस्कार कर उठे।

अकंपन राजाने भी अपने मंत्रीके द्वारा युवराजको नमस्कार कराया। वह स्वयं बैठा ही हुआ था। पहिले तो वे युवराजको नमस्कार करते थे। परंतु अब वह कन्या देकर श्वसुर बन गये हैं। इसलिए अब मंत्रीसे नमस्कार कराया है। कन्यादानका महत्व बहुत विचित्र है।

इतनेमें आदिराजने कहा कि भाई! पिताजीको बडी चिंता हुई। अब इस समाचारको सुनकर अपन यहां आरामसे बैठे रहें यह उचित नहीं है। अब आगे प्रस्थान कर देना चाहिये। सेना, हाथी, घोडा वगैरे अष्टचंद्र राजावोंके साथ पीछेसे आने दो। अपन आज आये हुए मित्रके साथ ही विमानपर चढकर जावें। अब देरी नहीं करनी चाहिए।

तब नागरांकने कहा कि इतनी गडबडी क्या है? आप लोग आगे जाकर सर्व देशोंको देखकर आवें। मैं आज जाकर स्वामीके चित्तको समाधान कर दूंगा। आप लोग जयकुमारके साथ सावकाश आवे। अभी कोई गडबडी नहीं है। भरतजीने भी ऐसी ही आज्ञा दी है।

तब दोनों भाइयोंने कहा कि ठीक है। हम लोग बादमें आयेंगे। परंतु पिताजीके चरणोंका दर्शन जबतक नहीं होगा तबतक हम लोग दूध और घी नहीं खायेंगे। तब नागरांकने कहा कि तुम लोग ऐसा मत करो, अगर सम्राटने सुन लिया तो वे नमक छोड देंगे, ऐसा नहीं होना चाहिए। आप लोग सुखके साथ सब देशोंको देखते हुए आवें, हम और भरतजी सुखके साथ रहेंगे। और लोक भी सुखके साथ अपना समय व्यतीत करें। हमारे स्वामीकी कृपासे सब जगह सुख ही सुख होगा।

राजा अकंपनने नागरांकसे कहा कि नागरोत्तम! यह सब ठीक हुआ। अब तुम आज क्यों जा रहे हो। हमारी महलमें आठ दिन विश्रांति लेकर बादमें जाना। तुम हमारे स्वामी चक्रवर्तिके मित्र हो, बार बार तुम्हारा आना नहीं बन सकेगा। इसलिए हमारे आतिथ्यको स्वीकार

कर जाना चाहिए, इस बातका समर्थन जयकुमारने भी कर दिया।

उत्तरमें नागरांकने कहा कि रहनेमें कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि हमारे युवराजका यह श्वसुर-गृह है। परंतु राजन्! जब सम्राट् चिंतामें पडे हुए हैं ऐसी अवस्थामें मैं यहांपर आरामसे रहूं क्या यह उचित होसकता है?

राजा अकंपनने कहा कि ठीक है, तब तो देरी न करो, स्नान भोजन करके कल यहांसे चले जाना। तब अर्ककीर्तिने भी कहा कि ठीक है, कल नहीं तो परसो चले जाना, उसमें क्या बात है।

नागरांकने कहा कि स्वामीको दुःखित अवस्थामें छोडकर स्नान भोजनादि काममें समय बिताना ठीक नहीं है, उस स्नान भोजनके लिए धिक्कार हो। इसलिए अब मुझे आप लोग रोकनेकी कृपा न करें।

इतनेमें आदिराजने कहा कि ठीक है, हम लोग भी रुक गये, नागरांक भी रुका तो पिताजीको अधिक चिंता होगी। इसलिए उसको अब रोकना नहीं चाहिये। जाने दो।

तब सब लोगोंने कहा कि शाहबास आदिराज हमारे स्वामीके पिताके नामको तुम अलंकृत कर रहे हो इसलिए तुमने सचमुचमें अच्छी बात कही। सब लोग इस बातको मंजूर करेंगे।

अर्ककीर्तिने कहा कि ठीक है, तुम आज ही जावो, अभी प्रातः कालका भोजन हमारी महलमें करो और शामका व्यालू राजा अकंपनकी महलमें करके प्रस्थान करो।

सब लोगोंने इसे स्वीकार किया। सब लोग वहांसे अपने २ स्थानपर चले गये। नागरांकके साथ आई हुई सेनाको सत्कार करनेके लिए अष्टचंद्रोंको नियत करके अपने आगत मित्रके साथ युवराज महलमें प्रविष्ट हुए।

जाते समय आदिराजने नागरांकसे कहा कि मित्र! तुम प्रस्थानके समय मेरे पास भी आकर जाना।

युवराजने अपनी महलमें पहुंचकर अपने मामा भानुराजको भी बुलवाया, एवं नागरांक व भानुराजके साथ मिलकर भोजन किया। भोजनके अनंतर अपने पिताका मित्र होनेसे हाथी, घोडा, रथ, रत्न आदि ७० लाख उत्तमोत्तम पदार्थोंको भेटमें नागरांकको समर्पण किया। नागरांक युवराजके सत्कारसे भरपूर तृप्त हुआ। और हाथ जोडकर कहने लगा कि युवराज! मेरी और एक इच्छा है। उसकी पूर्ति होनी चाहिए। अर्ककीर्तिने कहा कि अच्छा! कहो, क्या बात है।

नागरांकने कहा कि यदि तुम्हारे मामा भानुराजने उसे पूर्ति करनेका वचन दिया तो कहूंगा। तब हसते हुए भानुराजने कहा कि कहो, मैं किस बातके लिए इनकार कर सकता हूं। तब हर्षसे नागरांकने कहा कि और कोई बात नहीं है। तुम्हारे साथ भानुराज भी अयोध्या नगरीमें आवें एवं सम्राट्को मिलकर जावें। इतनी ही बात है।

इस बातका रहस्य भानुराजको मालुम न होनेपर भी युवराजको मालुम हुआ। उन्होंने कहा कि ठीक है, क्या बात है, मैं उनको साथमें लेकर आवूंगा।

नागरांक अर्ककीर्तिको नमस्कार कर आदिराजकी महलपर पहुंचा। वहांपर आदिराजके मामा विमलराजसे भी मिल । वहांपर आदिराजने तीस लाख उत्तमोत्तम पदार्थोंसे नागरांकका सत्कार किया।

युवराजके साथ जिस प्रकार नागरांकने विनय व्यवहार किया उसी प्रकार आदिराजके साथ भी करके काशीके राजा अकंपनकी महलमें पहुंचा वहांपर अनेक संतोषके व्यवहारके साथ शामका भोजन किया। भोजनके बाद राजा अकंपनने दस लाख उत्तमोत्तम वस्तुओंसे उसका सत्कार किया।

वहांसे जयकुमार उसे अपनी महलमें ले गया और वहांपर पच्चीस लाख रथ रत्नादि उत्तम पदार्थोंसे उसका सत्कार किया गया।

इसके अलावा छप्पन देशके राजा व अष्टचंद्र राजावोंने मिलकर एक करोड पैंसठ लाख उत्तम पदार्थोंको देकर सत्कार किया।

विशेष क्या ! तीन करोड उत्तम द्रव्योंसे उसका वहांपर सत्कार हुआ। छह खंडके अधिपतिके मित्रको तीन करोड उपहार द्रव्योंसे सत्कार हुआ। इसमें आश्चर्यकी क्या बात है।

चांदनीकी रात है, नागरांक अपने परिवारके साथ विमानपर चढकर आकाशमार्गसे रवाना हुआ। जिस समय उस शुभ्र चांदनी में अनेक विमान जा रहे थे उस समय समुद्रमें जहाज जा रहे हों ऐसा मालुम हो रहा था। आकाशमार्गसे आनेमें देरी क्या लगती है ! अनेक गाजेबाजेके साथ अयोध्यानगरमें वह नागरांक प्रविष्ट हुआ।

भरतजी चिंतामग्न होनेके कारण उस समय दरबार वगैरेमें नहीं बैठते थे। वे अपने मंत्रीमित्रोंके साथ बैठकर वार्तालाप कर रहे थे। इतनेमें बाजेका शब्द सुनाई दे रहा था !

सबने समझ लिया कि नागरांक वापिस लौटा है। और उसका आगमन हर्षको सूचित करता है।

नागरांकने भी विमानसे उतर कर सबको अपने २ स्थानमें भेजा। और स्वयं चक्रवर्ति जहां विराजे थे वहां पहुंचा।

वहांपर पहुंचते ही चक्रवर्तिके चरणोंमें नमस्कार कर कहने लगा कि सबको सदा आनंद उत्पन्न करनेवाले हे प्रथमचक्रेश ! स्वामिन् ! पहिले जो भी समाचार सुने गये हैं वे सब खोटे हैं। क्षुद्र स्वयंवरको महापुरुष लोग जा सकते हैं क्या ! आपका पुत्र भी ऐसे स्वयंवरको कैसे जा सकता है ! परंतु राजा अकंपनने ही एक कन्याको लाकर विवाह किया है।

यह भी जाने दो, कल जो इस पृथ्वीका अधिपति होनेवाला है, वह क्या सन्मार्गको छोडकर चल सकता है ? दूसरोंके गलेमें माला

डाली हुई स्त्रीकी अपेक्षा कर सकता है ? कभी नहीं। अपन सुनी हुई बातें सब हवाकी हैं। इसलिए आप भूल जाइये। पाशसे यदि युवराज को बांधा तो क्या जयकुमार बच सकता है ? अष्टचंद्र राजावोंको थोडीसी तकलीफ जरूर हुई। परंतु उसी समय दूर भी हो गई। इस प्रकार वहांके सारे वृत्तांतको यथावत् कहा।

सम्राट्ने भी कहा कि तुम बैठकर आगे क्या हुआ बोलो। तब नागरांकने तीन करोड पदार्थोंसे उसका सत्कार हुआ उसका वर्णन किया तब सम्राट्ने कहा कि वह तुम्हारे लिए जेबखर्च है।

नागरांकने पुनः कहा कि स्वामिन् ! यह सब बातें जाने दो, मोहकी विचित्रताको देखिएगा। मेरे वहांपर पहुंचनेके पहले ही युद्धके समाचारको सुनकर भानुराज विमलराज वहांपर पहुंच गए थे व अपने भानजोंके साथमें मिले हुए थे।

पिताके विचारसे पहले ही उनके मामा उनके पास पहुंचे थे ऐसी अवस्थामें पुत्रोंको माता-पिताकी अपेक्षा मामा ही अधिक प्रिय हैं।

भरतजीका हृदय भी यह सुनकर भर गया, अपने स्यालकोंके आप्तत्वको विचार करते हुए हर्षित हुए। इसके लिए उनका योग्य सत्कार करना चाहिए यह भी उन्होंने मनमें निश्चित किया। तदनंतर प्रकट रूपसे बोले कि अनुकूल ! कुटिल ! दक्षिण ! शठ ! पीठमर्दन ! व मंत्री ! आप लोग सुनो, हमारे पुत्रोंकी सहायताके लिए उनके मामा पहुंचे यह बहुत बडी विनय नहीं क्या ?

तब उत्तरमें सबने कहा कि स्वामिन् ! भानुराज विमलराजके नगरमें स्वतः काशीके राजाने पहुंचकर आमंत्रण दिया तो भी वे वहां पहुंचने वाले नहीं हैं। अपनी महत्ताको भूलकर वे अब अपने भानजोंके प्रेमसे ही वहांपर पहुंच गए हैं। सचमुचमें उनका प्रेम अत्यधिक है।

सम्राट्ने यह भी विचार किया कि हमें जिस प्रकार हमारे मामाके

प्रति प्रेम है उसी प्रकार अर्ककीर्ति और आदिराजको भी उनके मामाके प्रति प्रेम है। इसलिए उनका सत्कार होना ही चाहिये।

उन दोनोंको मैं राजाके पदसे विभूषित कर दूंगा। इससे अर्ककीर्ति व आदिराज प्रसन्न हो जांयगे।

सब लोगोंने कहा कि बिलकुल ठीक है। ऐसा ही होना चाहिये, पहिले नागरांकने भी इसी अभिप्रायसे उनको निमंत्रण दिया था।

सम्राटने नागरांकको विश्रांति लेनेके लिए कहकर महलमें प्रवेश किया।

पाठक विचार करें कि भरतजीका पुण्यातिशय कितना विशिष्ट है। थोडी देरके पहिले वे चिंतामें मग्न थे। अपने पुत्रोंके संबंधमें जो समाचार मिला था उससे एकदम बेचैनी हो रही थी। परंतु थोडे ही समयमें वे चिंतामुक्त होकर पुनः हर्षसागरमें मग्न हुए। यह सब उनके पुण्यका ही प्रभाव है। वे नित्य चिदानंद परमात्माको इस प्रकार आमंत्रण देते हैं कि—

हे परमात्मन्! तुम्हारे अंदर यह एक विशिष्ट सामर्थ्य है कि तुम बडीसे बडी चिंताको निमिषमात्रमें दूर कर देते हो। इसलिए तुम विशिष्टशक्तिशाली हो। अतएव हे चिदंबर पुरुष! सदा मेरे हृदयमें अटल होकर विराजे रहो।

हे सिद्धात्मन्! आप आकाशमें चित्रित पुरुष रूप या समान मालुम होते हैं। क्योंकि आप निराकार हैं। अतएव लोग आपके संबंधमें आश्चर्यचकित होते हैं। हे निरंजनसिद्ध! मेरे हृदयमें आप बने रहो।

इसी पुण्यमय भावनाका फल है कि भरतजी बडीसे बडी चिंतासे क्षणमात्रमें मुक्त होते हैं।

इति नागरालापसंधिः

—०—

7

जनकसंदर्शन संधि

नागरांकको अयोध्याकी तरफ भेजकर युवराजने भी अयोध्याकी ओर प्रस्थानकी शीघ्र तयारी की। उससे पहिले उन्होंने जो राजयोगका दिग्दर्शन किया वह अवर्णनीय है।

जयकुमार, विजय व जयंतको बुलाकर विवाहके समय जो मनमें कलुषता हुई उसका परिमार्जन किया। युवराजने बहुत विनयके साथ कहा कि जयकुमार! अपने पूर्वजन्मके पापोदयसे थोडी देर वैषम्य उपस्थित हुआ। परंतु वह पुण्य-तंत्रसे तत्काल दूर भी हुआ। ऐसी हालतमें आगे उसे अपनेको मनमें नहीं रखना चाहिये। अष्टचंद्र व दुष्ट मंत्रीने जो विचार किया था वह सचमुचमें भारी अपराध है। परंतु उसे आदिराजने सुधार लिया। इसलिए उस बातको भूल जाना चाहिये। कदाचित् पिताजीको मालूम हुआ तो वे नाराज होंगे। जयकुमार! विशेष क्या कहूं, हम लोग तो पिताजीको कष्ट देकर उत्पन्न हुए पुत्र हैं। परंतु तुम लोग तो बिना तकलीफ दिये ही आये हुए पुत्र हैं। इसलिए सहोदरोंमें आपसमें संक्लेश आवे तो भी उसे दूर करना चाहिये। आप लोग, हम व अष्टचंद्र वगैरे सभी राजपुत्र हैं, क्षत्रिय हैं, फिर गमारोंके समान हम लोगोंका व्यवहार क्या उचित है? समान वर्णमें उत्पन्न हम लोगोंमें इस प्रकारका क्षोभ होना योग्य नहीं है।

युवराजके मिष्ट वचनोंको सुनकर सबके हृदयमें शांति हुई। सब लोगोंने अष्टचंद्रोंके साथ युवराजके चरणोंमें नमस्कार किया व विनयसे कहा कि स्वामिन्! आदिराजने ही पहिले हम लोगोंके चित्तको शांत किया था। अब आपके सुंदर वचनोंसे रही सही वेदना एकदम चली गई।

युवराजने कोरी बातोंसे ही उनको संतुष्ट नहीं किया, अपितु मेघराजको अपने पास बुलाकर पचास लाख मोहरोंसे सन्मान किया। इसी प्रकार विजयराजको तीस लाख व जयंतराजको बीस लाख देकर अनेक उपहारोंको भी अर्पण किये।

तदनंतर आदिराजने भी मेघेशको २५ लाख, विजयराजको १५ लाख व जयंतको १० लाख अपनी ओरसे दिया व बहुत आनंदसे उनकी विदाई की।

सबके हृदयका वैषम्य दूर हुआ। अब आनंद ही आनंद है। उन लोगोंने युवराजको भक्तिसे नमस्कार किया व वहांसे चले गये। वे क्या सामान्य हैं? चक्रवर्तिके ही तो पुत्र हैं, वहांपर फिर किस बातकी कमी है?

इसी प्रकार युवराजने अनेक देशके राजावोंका उनकी योग्यतानुसार सत्कार किया व महलमें जानेपर राजा अकंपनने युवराजका सत्कार किया व युवराजने अपनी युवराज्ञीके साथ बैठकर भोजन किया। युवराजकी पत्नी लक्ष्मीमतिको एक सौ भाई हैं। उन सबके साथ राजा अकंपनने युवराजका सत्कार किया। अपने श्वसुरसे यथेष्ट सत्कार पाकर युवराजने आगेके लिए प्रस्थान किया।

युवराजके प्रस्थानसंभ्रमका क्या वर्णन करें? संक्षेपमें कहें तो अठारह लाख अक्षौहिणी सेनाकी संपत्तिसे युक्त होकर युवराज जा रहे हैं। सबसे आगे सेनाके साथ अष्टचंद्र जा रहे हैं। साथ ही मंत्रिगण भी हैं। युवराजके साथ आदिराज है। साथमें श्वसुर भी हैं। इस प्रकार बहुत वैभवसे युक्त होकर पिताके चरणोंके दर्शनमें उत्सुक होकर युवराज जा रहे हैं। दक्षिणसे उत्तर मुख होकर अनेक देशोंमें विहार करते हुए युवराज जा रहे हैं। अब अयोध्याको सिर्फ २०० कोस बाकी है। वहांपर सेनासहित युवराजने मुकाम किया है।

उस मुकाममें अयोध्यासे एक दूतने आकर वहांके सर्व वृत्तांतको कहा। एवं एकांतमें नागरांकने चक्रवर्तिसे जो समाचार निवेदन किया था वह भी कहा। उससे दोनों राजकुमारोंको बडा हर्ष हुआ। साथमें यह भी मालुम हुआ कि नागरांककी बातचीतके सिलसिलेमें युवराजके श्वसुरोंको सम्राट्ने "राजा" इस उपाधिसे सन्मानित किया है। वे

भी इसे सुनकर बडे ही प्रसन्न हुए। परंतु उन्होंनें उसे बाहर व्यक्त नहीं किया। सिर्फ इतना ही कहा कि चक्रवर्ति हमें चाहे जैसे बुलावे हम तो प्रसन्न हैं।

अब अर्ककीर्ति अयोध्यापुरके समीप पहुंच गए हैं। उसे सुनकर भरतजीको बडा आनंद हुआ। उसी समय वृषभराजको बुलाकर मंत्री मित्रोंके साथ स्वागतके लिए जानेकी आज्ञा दी। वृषभराजको यह सूचना मिलते ही बाकीके सभी भाई तैयार होकर जाने लगे। जैसे ब्राह्मण दान लेनेके लिए भागते हों, उसी प्रकार ये भी उत्साहसे जारहे हैं। अपने बडे भाईके प्रति उनका जो असीम प्रेम है वह अवर्णनीय है। वे तीस हजार सहोदर हैं। सब मिलकर भाईको देखनेके लिए बडे आनंदसे जारहे हैं। कोई हाथीपर, कोई घोडेपर और कोई पलकीपर चढकर जारहे है। इस प्रकार छत्र, चामर, ध्वज, पताका वगैरे मंगल द्रव्योंके साथ वे राजकुमार बडे भाईकी ओर जाते हैं। वृषभराजको आगे करके सब उसके पीछे विनयसे जिस समय वे जारहे थे उस उत्सवको देखते ही बनता था। वृषभराजने जाकर अनेक उत्तमोत्तम भेट युवराजके चरणोंमें रखकर नमस्कार किया इसी प्रकार सर्व भाईयोंने किया।

अर्ककीर्तिने सबको देखकर हर्ष व्यक्त करते हुए वृषभराज! आवो, तुम कुशल तो हो न? हंसराज! तुम सौख्यानुभव करते हो न? निरंजनराज! सिद्धराज! आवो तुम सुखस्थानपर हैं न? बलभद्रराज! भास्करराज! शिवराज! अंकराज! श्रीराज! ललितांगराज! लावण्यराज! तुम्हे सब क्षेम तो है न! इसके सिवाय और जो भाई हैं वे सब कुशल तो हैं? सब भाईयोंका कुशल समाचार पूछा एवं सबको अपने पास बुलाकर उन्हे एक एक रत्नहार दिया। उन भाईयोने अर्ककीर्तिसे निवेदन किया कि हमें तो सदासे कुशल है, परंतु आप दोनोंके दर्शनसे और भी कुशलताकी वृद्धि हुई! इस प्रकार कहते हुए

पुनः प्रणाम किया। साथमें आये हुए मातावोंके चरणोंमें भी नमस्कार किया। उनके विनयका क्या वर्णन करें।

अष्टचंद्रराज व मंत्रियोंने इन सब कुमारोंको नमस्कार किया। इसी प्रकार उपस्थित अन्य राजकुमार, मंत्री, मित्र, व परिवार प्रजायोंने दोनों कुमारोंके चरणोंमें भेट रखकर नमस्कार किया। आगत सब लोगोंके साथ यथायोग्य मृदु वचनसे बोलकर अर्ककीर्ति हाथीपर पुनः चढे। जयघोष नामक हाथीपर अर्ककीर्ति, दुदुंभिघोष नामक हाथीपर आदिराज व बाकीके सभी भाई एक एक हाथीपर चढकर अब नगरकी ओर जारहे हैं। करोडों प्रकारके मंगल वाद्य बज रहे हैं। अयोध्या नगरमें प्रवेशकर जिस समय राजमार्गसे होकर जारहे थे वह शोभा अपार थी। विश्वस्तोंके साथ अपनी राणियोंको पहिले महलकी ओर भेजकर स्वतः युवराज व आदिराज जिन मंदिरको दर्शन करने चले गये। वहांसे फिर हाथीपर चढकर अपने पिताके दर्शनके लिए महलको ओर गये। जाते समय उस विशाल जुलुसको नगरवासीजन बहुत उत्सुकताके साथ देख रहे हैं। स्त्रियां अपनी २ महलकी माडीपर चढकर इस शोभाको देख रही हैं। कोई माडीपर, कोई गोपुरपर, कोई दरवाजेसे, कोई मंदिर पर चढकर आकाशसे देखनेवाली खेचरियोंके समान देख रही हैं। एक कुमारको देखनेवाली आंख वहांसे हटना ही नहीं चाहती है, कदाचित् हट गई तो दूसरोंकी तरफसे हटाई नहीं जासकती है, परंतु आगे जानेपर हटाना पडा, इसलिए वे स्त्रियां दीर्घश्वास लेने लगी।

कामदेव स्वतः अनेक रूपोंको धारण कर तो नहीं आया है? जब इनका सौंदर्य इतना विशेष है तो इनके माता—पितावोंके सौंदर्यका क्या वर्णन करना। हमारे स्वामी सम्राट् कितने भाग्यशाली हैं। उन्होंने ऐसे विशिष्ट लोकातिशायी संतानको प्राप्त किया है। मानव लोकमें ऐसे कौन हैं? लोकमें जितने भी उत्तम पदार्थ हैं, उन सबको लूटकर हमारे राजा लाया है। परंतु इन सब पुत्रोंको देखने पर मालुम होता है कि

देवलोकसे सुर कुमारोंको लूटकर लाया हो। एक भी खराब मोती न हो, सभी उत्तमोत्तम मोती ही पैदा हो ऐसा भाग्य किस समुद्रको है। परंतु सम्राट् भरतके पुत्र तो एकसे एक बढकर हैं। सौंदर्यका यह समुद्र ही है। चक्रवर्तिकी राणियोंको पुत्री हो या पुत्र हो, एक एकके गर्भमें एक एक ही संतानरत्न पैदा हो सकता है। ढेरके ढेर नही। इसलिए सौंदर्यका पिंड एकत्रित होकर ही यहां आता है।

इस प्रकार वे स्त्रियां उन कुमारोंको देखकर तरह तरहसे बातचीत कर रहीं थीं। उनको वे स्त्रियां देख रही हैं। परन्तु वे कुमार आंखे उठाकर भी नहीं देखते। सीधा राजमहलकी ओर आकर वहांपर हाथीको ठहरा। अपने परिवार सेना वगैरेको भेजकर स्वयं युवराज अपने भाईयोंके साथ हाथीसे नीचे उतरे।

बहुत विनयके साथ अपने भाईयोंसहित अर्ककी पिताके दर्शन के लिए मोतीसे निर्मित महलकी ओर आरहा है। भरतजी दूरसे आते हुए अपने पुत्रोंको देखकर मनमें ही प्रसन्न हो रहे हैं। उसी तरह पिताको दूरसे देखनेपर पुत्रोंको भी एकदम आनंदसे रोमांच हुआ। वेत्रधारीगण सम्राट्के कुमारोंका स्वागत करते हुए कहने लगे कि स्वामिन्! दिवराज सदृश युवराज आ रहे हैं, जरा उनको देखें। इसी तरह सुविवेकनिधि आदिराज भी साथमें हैं।

कुंटिनीके वचन, परधन व परस्त्रीके प्रति चित्त न लगानेवाले, सत्यरूपी वज्रहारको कंठमें धारण करनेवाले कुमार आरहे हैं। इस प्रकार वज्रकंठ व सुकंठने कहा।

युवराज! आपके पिताजीका दर्शन करो। इसे देखनेका भाग्य हमें मिलने दो। इस प्रकार वेत्रधर कहते थे, इतनेमें पिताके चरणोंमें भेंट रखकर युवराजने प्रणाम किया।

उसी समय आदिराजने भी उसी तरह पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनंतर सभी भाईयोंने भी प्रणाम किया। दोनों कुमारोंको योग्य

आसन देकर बैठनेके लिए इशारा किया। परंतु बाकीके पुत्रोंने जब नमस्कार किया तो भरतजीको हसी आई। क्यों कि ये तो परदेशसे नहीं आये। फिर इन्होंने भी प्रणाम क्यों किया?। सम्राट्ने प्रकट होकर कहा कि वृषभराज! हंसराज! तुम लोग उठो, बहुत थक गए हो। तुम लोगोंने आज मुझे नमस्कार क्यों किया? उसका क्या कारण है? बोलो।

तब वृषभराजने बहुत विनयसे निवेदन किया कि पिताजी! हमारे स्वामी जब आपके चरणोंमें नमस्कार करते हैं तो हम लोग घमेंडसे खडे ही रहे? इसलिए हमने नमस्कार किया। उन पुत्रोंका विनय सचमुचमें श्लाघनीय है। भरतजीको उनका उत्तर सुनकर बडी प्रसन्नता हुई। उन सबको वहां सतरंजीपर बैठनेके लिए कहा, इतनेमें विमलराज व भानुराजने सम्राटका दर्शन किया।

चक्रवर्तिने उनको आलिंगन देकर कहा कि विमलराज! भानुराज! आप लोग आये सो बहुत अच्छा हुआ। भानुराज, विमलराजको भी बडा हर्ष हुआ। क्यों नहीं? जब षट्खंडाधिपति अपनेको राजाके नामसे संबोधित करते हैं, हर्ष क्यों न होना। पहिले कभी मिलनेका प्रसंग आया तो भरतजी, आवो भानु, आवो विमल, ऐसा कहकर बुलाते थे। अब राजाके नामसे उन्होंने बुलाया है। यह कम वैभवकी बात नहीं है। इसलिए उन दोनोंको बडा ही हर्ष हुआ। हर्षके भरमें ही उन्होंने सम्राट्से कहा कि स्वामिन्! हमारे आनेमें क्या है? परंतु आपके दर्शनसे हम लोगोंको बहुत आनंद हुआ। सुगंधित पुष्पको लगकर आनेवाले पवनमें जिस प्रकार सुगंधत्व रहता है, उसी प्रकार आपके दर्शनसे हम पवित्र हुए।

तब भरतजीने कहा कि आप लोगोंकी बात जितनी मीठी है उतनी वृत्ति मीठी नहीं है। तब उन्होंने उत्तर दिया कि सच है स्वामिन्! गरीबोंकी वृत्ति बडे लोगोंको कभी पसंद नहीं हो सकती है।

" आप लोग गरीब कैसे हैं? भरतजीने हसते हुए कहा।

' नहीं, नहीं, आपसे भी बडे है " इस प्रकार विनोदसे उन्होंने उत्तर दिया।

जानेदो विनोद! आप लोग गरीब कैसे हैं? बडे बुद्धिमान् हैं। कमसे कम हमसे तो अधिक बुद्धिमान हैं, भरतजीने कहा।

आप सत्य कहते हैं। आपसे अधिक बुद्धिमान् हम नहीं तो और कौन हो सकते हैं? उन दोनोंने कहा।

आप लोग उपायसे बचना चाहते हैं। परंतु मेरा भी उल्लंघन करनेवाले आप लोग उद्दंड हैं, भरतजीने कहा।

" कहिये महाराज! हमने क्या उद्दंडता की " दोनों राजावोंने कहा।

बोलूं? भरतजीने कहा। कहिये, कहिये, हमने ऐसी कौनसी उद्दंडता की? फिर उन्होंने कहा।

सुनो! हमारे पुत्रोंको हमसे पूछे विना ही अपने यहां लेजाकर अपनी पुत्रियोंको देकर संबंध करानेवाले आप लोग गरीब हैं? हमसे भी बढकर हैं। माता पितावोंको न पूछकर लोकमें अपनी कन्यावोंको कौन देते हैं?। आप लोगोंने मात्र वैसा व्यवहार किया।

अतएव आप लोगोंकी वृत्ति कष्टतर है, उद्दंड है, अतएव आप गरीब नहीं हैं। इस प्रकारका अभिमान षट्खंडमें कोई नहीं कर सकते हैं। परंतु मेरी परवाह न कर आप लोगोंने यह कार्य किया। शाहबास! इस प्रकार भरतजीने हसते हुए कहा।

" राजन्! जानेदो, आपको न पूछकर आपके पुत्रोंका विवाह अपनी कन्यावोंके साथ इन्होंने किया सो इन्होने उचित ही किया। क्योंकि ये मामा हैं। अर्ककीर्ति आदिकी मातावोंके सहोदरोंने अपने भानजोंको लेजाकर विवाह किया इसे आपने सहन किया। उन लोगोने यदि विवाह ही किया तो क्या आपके पुत्र यह नहीं कह सकते थे कि हम पिताजीसे पूछे विना कुछ भी नहीं कर सकते हैं " नागरने कहा।

तब भरतजीने कहा कि आपलोग अब पक्षपात करते हैं। क्योंकि आपलोग एक ही कुलके हैं। इसलिए दक्षिणांक, कुटिल, विदूषक तुम लोग बोलो तो सही किसकी गलती है ? मुझे न पूछकर इन लोगोंने विवाह किया यह इनकी गलती है या मेरी गलती हैं ?

विदूषकने झट कहा कि सोना जब काला होगा तो आपकी भी गलती हो सकती है। अब आप लोग सुनिये। उनकी तो गलती है, परंतु मैं उसे सुधार लेता हूं। आपसे न पूछकर जो उन्होंने अपनी कन्या-वोंका विवाह आपके पुत्रोंके साथ किया है, इस गलतीके लिए उन राजावोंको आगेसे जो कन्यारत्न उत्पन्न होंगे वे सब आपके पुत्रोंकेलिए ही दिये जायेंगे। इसे आप और वे मंजूर करें। और एक बात है। उन भानुराज व विमलराजकी जो कुमारी बहिनें आज मौजूद हैं उन सबका विवाह आपके साथ होना चाहिये। मेरे इस निवेदनको भी स्वीकार करें। आपलोगोंके कार्यको सुधारकर मैं खाली हाथ कैसे जा सकता हूं? उससे ब्राह्मण संतुष्ट नहीं होंगे। इसलिए इनके नगरमें जितने ब्राह्मण हैं उनको अब उत्पन्न होनेवाली सुंदर कन्यायें मुझे मिलनी चाहिये। इस प्रकार विदूषकने कहा तब अनुकूल नायकने विदूषकको शाहबासकी देते हुए कहा कि बिलकुल ठीक है। भरतजीको भी हसी आई, उप-स्थित सर्व जनताने विदूषकके विनोदपर आनंद व्यक्त किया।

भरतजीने भी विदूषकसे कहा कि तुमने ठीक सुधार लिया। तद-नंतर पुत्रोंकी ओर देखकर कहा कि आप लोग अनेक राज्योंमें भ्रमण करते २ थक गये होंगे। तब एकदम सर्व पुत्र खडे हुए। युवराजने हाथ जोडकर कहा कि पिताजी! परदेशमें हम लोग बडे आनंदके साथ विहार कर रहे थे, तब सर्व समाचार आपकी तरफ आते थे, उस बीचमें एक अप्रिय कटु समाचार भी पहुंचा मालुम होता है। लोकमें अन्यायकी तरफ चित्त लगा कर यदि आपको चिंता उत्पन्न

करूं तो क्या मैं आपका पुत्र हो सकता हूं ? पुत्र जो लीलाके लिए उत्पन्न होता है, वह शूलके लिए कारण हुआ ?

पिताजी ! मुझे सुखोंकी अपेक्षा करनेकी क्या आवश्यकता है ! आपके नामको सुनते ही सुख अपने आप चलकर आते हैं । आपके उदरमें आकर क्या मैं मार्ग छोडकर चल सकता हूं ?

भरतजीने कहा कि बेटा ! बहुतसे समाचार आये, परंतु उसी क्षण उनका निरसन भी हो गया । सूर्यको यदि मेघाच्छादन हुआ तो वह कितनी देर रह सकता है । इसी प्रकार मेरे हृदयमें चिंता अधिक समय नहीं टिक सकती है । तुम तो मार्ग छोडकर जा नहीं सकते मेवेश तो मेरा पुत्र ही हैं, दूसरा नहीं है । ऐसी अवस्थामें कोई चिंताकी बात नहीं है । तुम लोग भी भूल जाओ ।

पुत्र भी भरतजीकी बातको सुनकर प्रसन्न हुए । एवं पिताके चरणोंमें उन्होंने पुनः भक्तिसे प्रमाण किया । उस समय सम्राट्ने अनेक वस्त्र इत्यादियोंको प्रदान कर पुत्रोंका सन्मान किया । बुद्धिसागर मंत्री भी प्रसन्न हुए । इतनेमें जोरसे शंखनाद हुआ । उस शद्बको सुनते ही सब लोग वहांसे उठे । सम्राट् भी भानुराज व विमलराजको अपने साथ लेकर पुत्रोंके साथ महलकी ओर रवाना हुए । रास्तेमें भानुराज व विमलराजको राज शद्बसे संबोधन करते हुए उनको प्रसन्न कर रहे थे ।

कुसुमाजी व कुंतलावती इन दोनों राणियोंके आनंदका वर्णन ही क्या करें । क्यों कि उनके सहोदरोंको सम्राट्ने राजाके नामसे पुकारा है । अपने भाईको जो आनंद होता है उससे स्त्रियोंको परम हर्ष होता है । अपनी बहिनोंको जो आनंद होता है उससे पुरुष प्रसन्न होते हैं । उस बातका वहांपर अपूर्व संयोग था । बहिनोंनें दोनों भाईयोंका योग्य विनय किया, तब पुत्रोंने भी आकर अपनी मातावोंके चरणोंमें मस्तक रक्खा । उस समय गंगाप्रवाहके समान प्रेम व भक्तिका संचार हो रहा था । तदनंतर तीस हजार अपने पुत्रोंके साथ एवं दोनों सालोंके

साथ भरतजीने एक ही पंक्तपर बैठकर अमृतान्नका भोजन किया तदनंतर उनका योग्य रूपसे सन्मान कर उनके लिए सजे हुए महलोंमें भेजा व भरतजी सुखसे अपना समय व्यतीत कर रहे थे।

भरतजीके पुत्र अपनी नववधुओंके साथ सम्राट्की माताके दर्शनके लिए गए। एवं उनसे योग्य आशिर्वादको पाकर आनंदसे रहने लगे।

भरतजीका समय सदा आनंदसे ही जाता है। क्यों कि उनको किसीका भय नहीं है, सात्विक विचारोंसे वस्तु-स्थितीका वे परिज्ञान करते हैं। अतएव सदा आनंदमें ही मग्न रहते हैं। उनकी भावना है कि—

हे परमात्मन्! आप असहायविक्रम हो, विक्रांत अर्थात् पराक्रमियोंके स्वामी हो, तामसवृत्तिको दूर करनेवाले हो, सतत आनंदस्वरूप हो, एवं प्रभारूप हो, इसलिए हे स्वामिन्! मेरे हृदयमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! आप सुंदरोंके राजा हो, सुरूपियोंके देव हो; सुभगोंके रत्न हो, लावण्यांगोंके स्वामी हो, सौख्यसंपन्न हो; आप मुझे सन्मतिप्रदान करें।

इसी पुण्यमय भावनाका फल है कि भरतजी सर्वदा आनंद ही आनंदमें रहते हैं।

इति-जनकसंदर्शन संधिः

—०—

जननी-वियोग-संधिः।

युवराजके आनेके बाद जयकुमार भी अपने परिवारके साथ स्वदेश जानेके लिए निकले। जाते समय रास्तेमें अपनी सेनाको छोडकर स्वयं चक्रवर्तिसे मिलकर गये।

भरतजीकी महलमें आनंद ही आनंद हो रहा है। भानुराज और विमलराजका रोज नये २ मिष्टान्न भोजन, वस्त्र रत्नादिकसे सन्मान हो रहा है। सम्राट् ही जिनपर प्रसन्न होते हैं उनकी बात ही क्या

है ? भानु और विमल, भानुराज और विमलराज हुए। उनको हाथी, घोडा, रत्नादिक उपहारमें देकर उनकी विदाई की गई।

यह ऊपर ही कह चुके हैं अयोध्याकी उस महलमें प्रतिनित्य आनंदका तांता ही लगा रहता है। एकके बाद एक इस प्रकार हर्षके ऊपर हर्ष आते रहते हैं। भानुराज व विमलराजके जानेके बाद एक दो दिनमें ही एक और हर्षसमाचार आया। नगरके उद्यानमें रहनेवाले ऋषिनिवेदकने आकर निवेदन किया कि स्वामिन् ! तेलुग, कर्णाटक, हुरमुंजी, सौराष्ट्र, गुर्जरादि देशोंमें विहार करती हुई केवली अनंतवीर्य स्वामीकी गंधकुटी यहांपर आगई है। आकाशमें सुरभेरी बज रही है। सभी जयजयकार शब्द कर रहे हैं, सर्वत्र प्रकाश फैल गया है। सूर्यका बिंब ही आकाशमें खडा हो उस प्रकार वह गंधकुटी आकाशमें नगरके बाहर खडी है, आश्चर्य है।

भरतजीको यह समाचार सुनकर परमहर्ष हुआ। उस समाचार लानेवालेको परमोपकारी समझकर अनेक वस्त्र रत्नादिक प्रदान किया गया। एवं जिनदर्शनके प्रस्थानके लिए तैयारी की गई। महलमें सबको यह समाचार मालुम हुआ, हर्षसे सब लोग नाचने ही लगे। अतःपुरमें मैं आगे मैं आगे, इस प्रकार अहमहमिका वृत्ति चल रही है। माता यशस्वतीदेवी तो आनंदसे फूली न समाई। सब राणियोंने वहांपर जानेकी इच्छा प्रकट की।

परन्तु देव मनुष्योंकी असंख्यभीडमे सम्राट उनको क्यों लेजाने लगा ? इसलिए सबको कोमलवचनोंसे समझाबुझाकर शांत किया, परन्तु माता यशस्वतीने कहा कि बेटा! मेरे शिरमें तो एक भी कृष्णकेश नहीं हैं, अब बिलकुल बुड्ढी होगई हूं। ऐसी हालतमे मैं अर्हतका दर्शन करूं इसमें क्या हर्ज है ? नगरके पास जब गन्धकुटी आई है मैं दर्शनसे क्यों वंचित रहूं ? माताके हर्षातिरेकको देखकर सम्राट् संतुष्ट हुए व उन्होने गंधकुटीमे चलनेके लिए सम्मति दी।

आनंदभेरी बजाई गई। भरतजीने अपनी पूज्य माता व पुत्रोंके साथ बहुत आनंदके साथ गंधकुटीको प्रवेश किया। पुरजन परिजन पूजा सामग्री विपुलप्रमाणमें लेकर उनके साथ जारहे हैं। गंधकुटीमें वेत्रधर देव भरतजी का स्वागत कर रहे हैं।

भरतराजेंद्र ! आवो युवराज ! तुम भी आवो, और बाकीके सभी कुमारोंको भी स्वागत है। आपलोग आइये, अरहंत भगवंत अनंतवीर्यका दर्शन कीजिये।

इतनेमें जब उन वेत्रधारियोंने माता यशस्वतीको देखा तो कहने लगे कि जिन जिना ! लोकजननी जिनजननी ही आगई है। हम लोग बहुत ही भाग्यशाली हैं। हमारी आंखोंका पुण्य है कि उनका दर्शन हुआ। इस पुण्यमाताने ही अनंतवीर्य स्वामीको जन्म दिया है। वहां उपस्थित सर्व तपस्वियोंनें उस पावनांगी यशस्वती माताको आदरसे देखा।

भगवान् अनंतवीर्य स्वामीका अब तीन लोकसे या लोकके किसी भी प्राणीसे संबंध नहीं है। परंतु ये लोग बहुत भक्तिसे व संबंधका विचार करते हुए उनकी सेवामें जाते हैं। बाकीके लोग यह माता है, भाई है, बेटा है, इत्यादि रूपसे संबंध लगाकर विचार करते हैं। परंतु अनंतवीर्य स्वामीका अब कोई संबंध नहीं है। कर्मकी गति विचित्र हैं, उसे कौन उलंघन कर सकता है ?

माताको आगे, पुत्रोंको साथ लेकर चक्रवर्तिने वीतरागके चरणोंमें भेंट रखकर ' घाति कर्मोध्दूत जय जय ' यह कहते हुए साष्टांग नमस्कार किया। कमलके ऊपर सिद्धासनपर विराजमान, सूर्यको भी तिरस्कृत करनेवाले स्वामीकी वंदना करते हुए माताका आनंदसे रोमांच हुआ। क्यों नहीं ?

महलसे निकलते हुए ही यह विचार था कि जिनपूजा करें। इसलिए स्नान वगैरेसे शुचिर्भूत होकर सामग्रीसहित आये हुए थे, करोडों बाजोंके शब्द दशों दिशावोंमें गूंज रहे थे। पूजा समारंभ

बहुत ही वैभवसे चल रहा था। सम्राट् स्वयं व उनके पुत्र सामग्रियोंको भर भर कर दे रहे थे। माता पूजा कर रही है। उनके विशालगुणोंका वर्णन क्या करें। सम्राट्की जननी पूजा कर रही थी, और सम्राट् स्वयं परिचारकके कार्य कर रहे हैं। उस पूजाके वैभवका वर्णन क्या होसकता है। अष्टविध द्रव्योंसे जब उन्होने पूजा की तो वहांपर मेरुके समान सामग्री एकत्रित हुई। जल, गंध, अक्षत, पुष्प, चरु, दीप धूप, फल, इन अष्टद्रव्योंसे राजमाताने जिस समय पूजन किया देव गण जयजयकार कर रहे थे। तदनंतर अर्घ्य शांतिधारा देकर रत्नपुष्पों की वृष्टिकर पुष्पांजलि की गई। देवोंने पुष्पवृष्टि की, जयजयघोष हुआ।

पूजाकी समाप्ति होनेपर गाजेबाजेके शब्द बंद हुये। भरतजीने माताको आगे रखकर अपने पुत्रोंके साथ भगवंतकी तीन प्रदक्षिणा दी। तदनंतर मुनियोंको नमोस्तु कर सम्राट् योग्य स्थानमें ठहरे। माता यशस्वती देव गुरुवोंकी वंदना कर अर्जिकावोंके समूहके पास चली गई। वहांपर अर्जिकावोंके चरणोंमें उन्होंने जब नमोस्तु किया तो उन पूज्य संयमिनियोंने कहा कि देवी, आवो, तुम भी तो अर्जिका ही हो न ? तुममें किस बातकी कमी है ? इस प्रकार कहकर यशस्वतीके कोमल अंगोंपर गणिनीनायिकाने हाथ फेरा। इतनेमें उसके हृदयमें एक नवीन विचारका संचार हुआ। माता यशस्वतीनें विचार किया कि देखो ये कितनी भाग्यशालिनी हैं। इनके समान मोक्षसाधन न कर मैं महलमें रहूं यह क्या उचित है ? मोक्षसाधन करना प्रत्येक आत्माका कर्तव्य होना चाहिए। आज मेरा भाग्य है कि योग्य समयमें मैं यहांपर आगई हूं। इस गंधकुटीके दर्शनका कुछ न कुछ फल अवश्य होना चाहिए। अब मुझे अपने आत्मकार्यको साध्य कर लेना चाहिए। इस प्रकार स्वगत होकर विचार करने लगी।

मुनियोंके पास बैठे हुए अपने पुत्रके पास पहुंचकर माता यशस्वतीने अपने मनकी बात कह दी। तब भरतजीने कहा कि जिनसिद्ध !

माताजी आप ऐसी बात नहीं कहियेगा। मैं आपके पैर पडता हूं। इस प्रकार कहते हुए भरतजीने मातुश्रीको नमस्कार किया। पुनः " आप चाहे तो राजमहलके जिन मंदिरमें रहकर आत्मकल्याण कर लेवें। परन्तु भरतको छोडकर दूर नहीं जाना चाहिये " इस प्रकार कहते हुए माताके चरणोंको पकड लिया।

बेटा! मेरी बात सुनो, इस प्रकार कहती हुई माताने भरतको उठाया और कहने लगी कि तुम ऐसा क्यों कर रहे हो। यह शरीर कैसा भी नष्ट होनेवाला है। उसे तपके कार्यमें लगाऊंगी, इसके लिए तुम इतना अधीर क्यों होते हो। बेटा! मैने आंखभर तुम्हारे वैभवका देख लिया। मैं रात दिन अखंडित उत्साह वे आनंदमें रही, अब जब बाल सब सफेद हुए तो अब तपश्चर्याके लिए जाना ही चाहिय। तुम वीरपुत्र हो! इसे स्वीकार करो।

बेटा! स्त्रीजन्म बहुत ही कष्टतर है। तुम सरीखे पुण्यपुत्रोंको पाकर फिर भी उसी जन्ममें मैं आवूं क्या? बेटा! इस भव का नाश मुझे करना है। खुशीसे भेजो। इस प्रकार वह जगन्माता अपने पुत्रसे कहने लगी।

भरतने पुनः निवेदन किया, कि माता! महलके जिनमंदिरमें भी बहुतसी अर्जिकायें हैं। उनके साथ रहकर आप तपश्चर्या करें। अनेक देशोंमें भ्रमण करनेकी क्या आवश्यकता है?

बेटा! आजतक तुम्हारे कहनेके अनुसार महलमें ही रहकर तप किया। अब अंतिम समयमें जिनसभामें इस देहका त्याग करना चाहिये इसलिए तुम स्वीकार करो। विशेष क्या? बेटा! यह शरीर नश्वर है। आत्मा अमर है। इसलिए स्त्रीजन्मके रूपको बदलकर आगे तुम जिस मुक्तिको जाते हो वहीपर मैं भी आती हूं। इसलिए मुझे अब जल्दी भेजो। इस प्रकार माताने साहसके साथ कहा।

इतनेमें वहां उपस्थित मुनिराजोंने भी कहा कि भव्य! अब बुढापेमें

तुम्हारी महलमें माता कितने दिन रहेंगी, दीक्षा लेने दो, तुम सम्मति दो। भरतजी मुनियोंकी बात सुनकर मौनसे रहे। और भी तपोनिधि महर्षियोंने कहा कि न्यायसे आत्मकार्य करनेके लिए वह जब कहती है तो अंतराय करना क्या तुम्हारे लिए उचित है? माता कौन है? तुम कौन हो? आत्म कल्याणके लिए मार्गको देखना प्रत्येकका कर्तव्य है। इसलिए अब रोको मत, चुप रहो। भरत! विचार करो, क्या वैराग्य ऐसी कोई सस्ती चीज है कि जब सोचे तब मिले। चाहे जब मिलनेकी वह चीज नहीं है। इसलिए ऐसे समयको टालना नहीं चाहिये।

भरतजी आगे कुछ भी बोल नहीं सके। मौनसे माताकी ओर देखते रहे।

मुनियोंने भी भरतके मनकी बात समझकर माता यशस्वतीको भगवंतके पास लेगये। राजन्! तुम्हारी सम्मति है न? इस प्रकार प्रश्न आनेपर मौनसे ही सम्मतिका इशारा किया। इतनेमें मुनिराजोंने भगवंतसे कहकर यशस्वतीको दीक्षा दिलाई। गुरुओंसे क्या नहीं हो सकता है। वे मोक्ष भी दिला सकते हैं।

जिस समय माता यशस्वतीकी दीक्षाविधि हो रही थी उस समय देवदुंदुभि बज रही थी, देवगायिकायें देवगान कर रही थी। देवांगवस्त्रसे निर्मित परदेके अंदर दीक्षाविधि हो रही है। उससमय भगवंतने उपदेश दिया कि अपने शरीर आदि लेकर सर्व पदार्थ पर हैं। केवल आत्मा अपना है। मनसे अन्य चिंतावोंको दूर करो। और अपने आत्माको देखो। श्वेत पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ, और रूपातीत इन चार ध्यानोंका अभ्यास क्रमसे करके पिंडस्थमें चित्तको लगा कर लीन होना यही मुक्ति है। विशेष क्या? भव्या! परिशुद्ध आत्मा ही केवल अपना है। कर्म शरीर आदि सर्व परपदार्थ हैं, फिर चौदह और दस परिग्रह आत्माके कैसे हो सकते हैं। तुम्हे सदा एकभुक्ति रहे और यथाशक्ति कभी कभी उपवास भी करना। निराकुलतासे संयमको पालन करना।

इस प्रकार अनंतवीर्य स्वामीके उपदेशको सुनकर यशस्वतीने इच्छामि कहकर स्वीकार किया। विशेष क्या? भगवंतने अनेक गूढ तत्वोंको सूत्र रूपमें उपदेश देकर यह भी फरमाया कि तुम्हारे स्त्रीलिंगका विच्छेद होगा। और आगे देवगतिमें जन्म होगा। वहांसे आकर मुक्ति होगी।

माता यशस्वतीके देहमें मल मूत्र नहीं है। इसलिए कमंडलुकी आवश्यकता ही क्या है। इसलिए जोवसंरक्षणके लिए पिंछि और आत्मसार पुस्तकको मुनिराजोंने भगवंतकी आज्ञासे दिलाये।

इतनेमें देवांगवस्त्रका वह परदा हट गया, अब सफेद वस्त्रको धारण करती हुई और पदरसे मस्तकको ढको हुई वह शांतिरसकी अधिदेवता बाहर आई। आश्चर्यकी बात है, अब वह यशस्वती नवीन दीक्षित संयमिनीके समान मालुम नहीं होती है। उसके शरीरमें एक नवीन कांति ही आगई है।

समवसरणमें किसीको भी शोकोद्रेक नहीं हो सकता है। इसलिए भरतेश्वरको भी सहन हुआ। नहीं तो माता जब दीक्षा लेवें तब वह दुःखसे मूर्छित हुए विना नहीं रहसकते थे।

उस समय देव, मनुष्य, नागेंद्र आदियोंनें उक्त आर्यिका यशस्वतीके चरणोंमें भक्तीसे प्रणाम किया। भरतेश्वरने भी अपने पुत्रोंके साथ नमोस्तु करते हुए कहा कि माता! तुम्हारी इच्छा अब तो तृप्त हुई। परंतु यशस्वती अब भरतेश्वरको अन्य समझ रही है। उसको पुत्रके रूपमें अब वह नहीं देख रही है। उस स्वस्तिकसे उठकर भगवंतके चरणोंमें देवीने मस्तक रक्खा। भगवंतने भी "सिद्धत्वमिहि" यह कह कर आशिर्वाद दिया। देवोंने पुष्पवृष्टि की। विशुद्ध तपोधनोंने जय जयकार किया। माता यशस्वती आर्जिकावोंके समूहकी ओर चली गई अर्जिकावोंने भी "कंती यशस्वती! इधर आवो! बहुत अच्छा हुआ।" कहकर अपने पास बुला लिया।

पुत्रमोह अब किधर गया? पुत्रवधुवोंके प्रति जो स्नेह था वह

तुम्हारी महलमें माता कितने दिन रहेगी, दीक्षा लेने दो, तुम सम्मति दो। भरतजी मुनियोंकी बात सुनकर मौनसे रहे। और भी तपोनिधि महर्षियोंने कहा कि न्यायसे आत्मकार्य करनेके लिए वह जब कहती है तो अंतराय करना क्या तुम्हारे लिए उचित है? माता कौन है? तुम कौन हो? आत्म कल्याणके लिए मार्गको देखना प्रत्येकका कर्तव्य है। इसलिए अब रोको मत, चुप रहो। भरत! विचार करो, क्या वैराग्य ऐसी कोई सस्ती चीज है कि जब सोचे तब मिले। चाहे जब मिलनेकी वह चीज नहीं है। इसलिए ऐसे समयको टालना नही चाहिये।

भरतजी आगे कुछ भी बोल नहीं सके। मौनसे माताकी ओर देखते रहे।

मुनियोंने भी भरतके मनकी बात समझकर माता यशस्वतीको भगवंतके पास लेगये। राजन्! तुम्हारी सम्मति है न? इस प्रकार प्रश्न आनेपर मौनसे ही सम्मतिका इशारा किया। इतनेमें मुनिराजोंने भगवंतसे कहकर यशस्वतीको दीक्षा दिलाई। गुरुवोंसे क्या नहीं हो सकता है। वे मोक्ष भी दिला सकते हैं।

जिस समय माता यशस्वतीकी दीक्षाविधि हो रही थी उस समय देवदुंदुभि बज रही थी, देवगायिकायें देवगान कर रही थी। देवांगवस्त्रसे निर्मित परदेके अंदर दीक्षाविधि हो रही है। उससमय भगवंतने उपदेश दिया कि अपने शरीर आदि लेकर सर्व पदार्थ पर हैं। केवल आत्मा अपना है। मनसे अन्य चिंतावोंको दूर करो। और अपने आत्माको देखो। श्वेत पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ, और रूपातीत इन चार ध्यानोंका अभ्यास क्रमसे करके पिंडस्थमें चित्तको लगा कर लीन होना यही मुक्ति है। विशेष क्या? भव्या! परिशुद्ध आत्मा ही केवल अपना है। कर्म शरीर आदि सर्व परपदार्थ हैं, फिर चौदह और दस परिग्रह आत्माके कैसे हो सकते हैं। तुम्हे सदा एकभुक्ति रहे और यथाशक्ति कभी कभी उपवास भी करना। निराकुलतासे संयमको पालन करना।

इस प्रकार अनंतवीर्य स्वामीके उपदेशको सुनकर यशस्वतीने इच्छामि कहकर स्वीकार किया। विशेष क्या? भगवंतने अनेक गूढ तत्वोंको सूत्र रूपमें उपदेश देकर यह भी फरमाया कि तुम्हारे स्त्रीलिंगका विच्छेद होगा। और आगे देवगतिमें जन्म होगा। वहांसे आकर मुक्ति होगी।

माता यशस्वतीके देहमें मल मूत्र नहीं है। इसलिए कमंडलुकी आवश्यकता ही क्या है। इसलिए जीवसंरक्षणके लिए पिंछि और आत्मसार पुस्तकको मुनिराजोंने भगवंतकी आज्ञासे दिलाये।

इतनेमें देवांगवस्त्रका वह परदा हट गया, अब सफेद वस्त्रको धारण करती हुई और पदरसे मस्तकको ढकी हुई वह शांतिरसकी अधिदेवता बाहर आई। आश्चर्यकी बात है, अब वह यशस्वती नवीन दीक्षित संयमिनीके समान मालुम नहीं होती है। उसके शरीरमें एक नवीन कांति ही आगई है।

समवसरणमें किसीको भी शोकोद्रेक नहीं हो सकता है। इसलिए भरतेश्वरको भी सहन हुआ। नहीं तो माता जब दीक्षा लेवें तब वह दुःखसे मूर्छित हुए विना नहीं रहसकते थे।

उस समय देव, मनुष्य, नागेंद्र आदियोंनें उक्त आर्यिका यशस्वतीके चरणोंमें भक्तीसे प्रणाम किया। भरतेश्वरने भी अपने पुत्रोंके साथ नमोस्तु करते हुए कहा कि माता! तुम्हारी इच्छा अब तो तृप्त हुई। परंतु यशस्वती अब भरतेश्वरको अन्य समझ रही है। उसको पुत्रके रूपमें अब वह नहीं देख रही है। उस स्वस्तिकसे उठकर भगवंतके चरणोंमें देवीने मस्तक रक्खा। भगवंतने भी "सिद्धत्वमिहि" यह कह कर आशिर्वाद दिया। देवोंने पुष्पवृष्टि की। विशुद्ध तपोधनोंने जय जयकार किया। माता यशस्वती आर्जिकावोंके समूहकी ओर चली गई आर्जिकावोंने भी "कंती यशस्वती! इधर आवो! बहुत अच्छा हुआ।" कहकर अपने पास बुला लिया।

पुत्रमोह अब किधर गया? पुत्रवधुवोंके प्रति जो स्नेह था वह

किधर गया ? अतुलसंपत्तिका आनंद अब किधर गया। महात्माओंकी वृत्ति लोकमें अजब है। माता यशस्वती धन्य है ! मोक्षगामी पुत्रोंको प्राप्त किया, उन्हींमेंसे एक पुत्र उसे दीक्षागुरु हुआ। लोकमें इस प्रकारका भाग्य कौन प्राप्त कर सकता है। षट्खंडाधिपति पुत्रको पाया। उसके समस्त वैभवको तृणके समान समझकर दीक्षा ली, अब कैवल्यकी प्राप्ति क्यों नहीं हो सकती है ? इत्यादि प्रकारसे वहांपर लोग आपसमें बातचीत कर रहे थे।

यशस्वतीके केश व त्यक्तवस्त्रको देवांगनावोंने समुद्रमें पहुंचाये। भरतेश्वर पुनः भगवंतकी वंदना कर अपने पुत्रोंके साथ अपने नगरकी ओर चले गये। गंधकुटीका भी दूसरी तरफ विहार हुआ।

भरतेश्वर जब महलमें पहुंचे तब राणियोंको सासूके दीक्षा लेनेका समाचार मालुम हुआ तो उनको बहुत दुःख हुआ। वे अनेक प्रकारसे विलाप करने लगी।

" यह गंधकुटी न मालुम कहांसे आई ? हमारी सासूबाईको ही लेकर गई ? उसीके लिए यह आई थी क्या ? "

हा ! हमारी विधि क्या है ? क्या समय है ! हमारी मातुलानीको लेगयी ? अब हमारी महल सूनी हुई।

हमसे उसका कितना प्रेम था ! बुलाते समय कितने प्रेमसे बुलाती थी ! उसमे भेदभाव तो दिखता ही नहीं था ! ऐसी परिस्थितिमें उनका भी विचार हमें छोडकर जानेका हुआ ! आश्चर्य है !

हम लोगोने यदि पर्वोपवास किया तो हमारे लिए सार्वभौमके प्रति नाराज होती थी। देवी ! अब हम लोगोंको पूछनेवाले कौन हैं ? आपने तो इस महलको जंगल बना दिया।

देवी ! हम यहां आकर आपके प्रेमसे अपने माता पितावोंको भूल गई। हर तरहसे हम लोगोंको आपने सौख्यसंपत्ति देकर प्रसूत माताके समान व्यवहार किया। फिर अपनी संतानोंको छोडनेकी इच्छा कैसी हुई ?

जगन्माता ! सम्राट्से जब आप अनुरागसे बोलती थी और सम्राट् जब आपसे बोलते थे, उसे सुनकर हम लोग आनंदसे फूली न समाती थी। ऐसी अवस्थामें हम लोगोंको दुःख देना क्या आपको उचित है ?

इस प्रकार विलाप करती हुई पतिदेवके चरणों में आकर पडी। और प्रार्थना करने लगी कि देव ! आपने भी उनको रोका नहीं ! बडा ही अनर्थ किया।

सम्राट्—रोकनेसे क्या होता है ?

वे सब—आप मंजूरी न देते तो क्या वे जबर्दस्ती दीक्षा देते ?

सम्राट्—वे मंजूर करा नहीं सकते हैं ?

वे सब—आपका चित्त बहुत कठिन हो गया है, हा ! आपने कैसे स्वीकार किया समझमें नहीं आता।

भरतजी राणियोंकी गडबडीको देखते खडे ही रहे। इतनेमें सबकी धांधलीको बंद कराकर पट्टरानी स्वतः बीचमें आई और पूछने लगी कि स्वामिन् आप वहांपर थे, आपने यदि नहीं कहा तो मातुश्रीजी फिर भी गई ? उत्तरमें भरतजीने कहा कि देवी ! मैंने पैरों पकडकर प्रार्थना की। उसे स्वीकार नहीं किया। वहां उपस्थित मुनिराजोंने मुझे दबाया, मैं उस समय क्या कर सकता था। तुम ही बोलो ! उन तपस्वियोंने कहा कि भरत ! क्या तपश्चर्याके कार्यमें भी विघ्न करते हो ? इस बातसे डरकर मैं चुप रह गया। पुनः कहने लगे कि अपर वयमें तप करना ही चाहिये। माताने भी मेरे प्रति कृपा नहीं की। वह चली ही गई।

जाने दो, बुढापा है। उनका वे आत्मकल्याण कर लेवें। अपनेको भी अपने समयमें आत्महितको देख लेना चाहिए। अब दुःख करनेसे क्या फायदा ? इस प्रकार उन सबको भरतेश्वरने समझाया। राणियोंको फिर भी समाधान नहीं हुआ। उनका कोई बहुमूल्य आभरण ही खोगया हो, उस प्रकार उनको दुःख हो रहा था। बडे शोकके वेगसे

निम्नमुखी होकर सब बैठी थीं। इतनेमें अनंतसेना देवी राणीने आगे बढकर भरतेश्वरके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रार्थना की कि नाथ! सासूके समान मैं भी आत्मकल्याणके लिए जाती हूं। मुझे भेजो। दुपहरके घूपके समान यौवन चला गया। कोई २ बाल भी सफेद हुए हैं। अब भोगका अनुभोग करना उचित नहीं है, अब योगके लिए मुझे अनुमति दो।

भरतेश्वरने सुनकर कहा कि ठीक है, अब भोगका समय नहीं है, संयमका समय है, दूर जानेकी जरूरत नहीं। यहांपर महलके जिन मंदिरमें रहकर आत्मकल्याण कर लेना। तब अनंतसेना देवीने कहा कि मुझे मातुलानीके साथ रहकर तप करनेकी इच्छा है। भरतेश्वरने साफ इनकार किया कि इसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता। तब वह फिर भी आग्रह करने लगी। भरतेश्वरने अन्य राणियोंको आंखोंका इशारा किया। तब सब राणियोंने मिलकर कहा कि हम लोग भी तपश्चर्याके लिए जाती हैं। तब कहीं अनंतसेना देवी मंदिरमें तप करने लिए राजी हुई। उस अनंतसेना देवीके वयकी अन्य कई राणियोने भी कहा कि हम लोगोंको भी भोगसे तृप्ति हुई है। इसलिए हम भी मंदिरमें रहकर आत्मकल्याण कर लेंगी। तब सम्राट्ने उसे स्वीकार किया।

मुनिराजोंके हाथसे उन सबको एकभुक्ति, ब्रह्मचर्यव्रतको दिलाकर अर्जिकाओंके पास उनको रहनेकी अनुमति दी। तदनंतर वे अपने नियम संयममें दृढ रहीं।

वे संयमिनी अब प्रतिनित्य एकभुक्ति करती है। जिनको पुत्र हैं वे तो अपने पुत्रोंकी महलमें जाकर एक बार भोजन करती है, और मंदिर जाती हैं। परंतु अनंतसेनादेवी मात्र अपने सौतोंके घर जाकर भोजन करती है। क्योंकि उसे पुत्र नहीं है। पर हां! वह बांझ नहीं है। मरीचिकुमार नामक सबसे बडे पुत्रको इसीने जन्म दिया

है। परंतु भगवान् आदिनाथके साथ दीक्षा लेकर वह मुनि होगया था, फिर पागल भी होगया।

भरतजीने अपनी चिंतातुर हृदयको किसी तरह समझा बुझाकर तीन दिनमें शांत किया। एक दिन महलकी छतपर बैठे हुए थे। इतनेमें दूरसे आकाशमें पुष्पका बाण, तारा या पक्षीके समान भरतेश्वरकी ओर आते हुए देखनेमें आया। भरतेश्वर विचार कर ही रहे थे- इतनेमें वह पासमें आया तो मालुम हुआ कि वह एक कबूतर है। जब बिलकुल पास ही वह आया तो उन्होंने देखा कि उसके गलेमें एक पत्र बंधा हुआ है। भरतेश्वरने उसे खोलकर बांचा तो उसमें निम्न पंक्तियां थीं।

पौदनपुर महल.

मिती....................

श्री प्रिय पुत्र भरतको, पौदनपुरसे माता सुनंदादेवीका सतिलक आशिर्वाद। अगरंच पत्र लिखनेका कारण यह है कि हमारे नगरके पास बाहुबलि केवलीकी गंधकुटी आगई है। इसलिए इस पत्रको देखते ही [तार समझकर] यहांपर तुम चले आवो, बहुत जरूरी काम है। सो फौरन चले आना। कल या परसो कहोगे तो मेरा मिलना कठिन है। विशेष क्या लिखूं, इति स्वाहा।

सुनंदादेवी

भरतेश्वरने पत्र बांचते ही उस पत्रको नमस्कार किया। और समझ गये कि यह दीक्षा लेनेकी तैयारी है। उस कबूतरको समाधान कर स्वतः विमानमार्गसे तत्क्षण पौदनपुरके लिए रवाना हुए।

पौदनपुरमें पहुंचकर पुत्रोंके स्वागतको स्वीकार करते हुए माता सुनंदा देवीकी महलमें पहुंचे। वहांपर माताके चरणोंमें नमस्कार कर आशिर्वाद लिया। पासमें बैठे हुए पुत्रको देखकर माता सुनंदादेवीको

भी हर्ष हुआ। मातासे बहुत विनयके साथ प्रश्न किया कि माता! तुम्हारा अभिप्राय क्या है? आपकी बडी बहिनके समान हम सबको छोडकर जानेका है क्या? ऐसा न कीजिये। मैंने आपको क्या कष्ट दिया? जरा कहिये तो सही।

माता सुनंदादेवीने कहा कि बेटा! ऐसा क्यों विचार करते हो। बुढापा है न? अब तपश्चर्या करनी ही चाहिये। इसे स्वीकार करो।

भरतेश्वर समझ गये कि अब यह नहीं रहेगी, दीक्षाके लिए जायगी, तथापि उन्होंने प्रकट होकर कहा कि माता! यदि बाहुबलीके पुत्रोंने मंजूरी दी तो आप जा सकती हैं।

माता सुनंदादेवी भरतजीकी ठोडीको हिलाकर कहने लगी बेटा! उनके लिए तो मैं आजतक रही, अब क्या है? बहानाबाजी मत करो, उनके लिए तुम हो न? फिर मेरी क्या जरूरत है। मुझे भेजो।

बेटा! नगरके पास गंधकुटी आई है, मैं बहुत ही बूढी हूं। इसलिए तुम्हें पूछे विना जानेमें डरती थी। अब तुम मुझे दीक्षाके लिए भेज दो। बेटा! जीजीको तुमने दीक्षा दिलाई। मुझे विघ्न क्यों करते हो? मुझे भी जीजीके साथ ही मोक्ष मंदिरमें आकर तुमसे मिलना है। इसलिए मुझे रोको मत, जाने दो।

भरतेश्वरने विवश होकर स्वीकृति दी। माता सुनंदाने हर्षसे पुत्रको आलिंगन दिया व उसी समय गंधकुटीकी ओर जानेके लिए भरतेश्वर माता सुनंदाके साथ निकले।

भरतेश्वर व सुनंदादेवी बाहुबलि स्वामीकी गंधकुटीमें पहुंचे। वहांपर श्रीबाहुबलि स्वामीके चरणोंमें वदनाकर उस माताकी पूजामें जिस प्रकार परिचारकका कार्य किया था उसी प्रकार आज इस माताकी पूजामें भी परिचारकका कार्य किया। उस दिन अनंतवीर्य स्वामीकी गंधकुटीमें माता यशस्वतीके साथ मुनियोंकी वंदना जिस प्रकार की थी उसी प्रकार आज बाहुबलिस्वामीकी गंधकुटीमें भी मुनियोंकी वंदना की।

और उसी प्रकार माता सुनंदाका दीक्षा समारंभ बहुत वैभवसे हुआ। विशेष क्या वर्णन करें। जिनपूजा, गुरुवंदना आदि क्रियाके साथ अनेक मंगल वाद्योंके मंगल निनादमें दीक्षा समरंभ आनंदके साथ हुआ। बडी बहिनके समान छोटी बहिन भी संयमकांतिसे उज्ज्वल होकर अर्जिकाओंके समूहमें विराजमान रही। पुत्र ही जब गुरु होकर जब माताको मोक्ष मार्गमें लगाते हैं उससे बढकर महत्वकी बात और क्या हो सकती है। माता यशस्वतीकी दीक्षा पुत्र—अनंतवीर्य केवलीसे व माता सुनंदाकी दीक्षा पुत्र—बाहुबलीसे हुई। यह आश्चर्य है।

देवगण व सम्राट्ने अर्जिका सुनंदाके चरणोंमें नमोस्तु किया। सुनंदा अर्जिकाने आशिर्वाद दिया। तदनंतर सम्राट् भगवान् व मुनि-गणोंकी वंदना कर थोडासा व्याकुल चित्त होकर वहांसे लौटे।

गंधकुटीका विहार उसी समय अन्य दिशाकी ओर हुआ। इधर भरतेश्वर पौदनापुर महलमें पहुंचे। इतनेमें अर्ककीर्तिकुमार व आदिराज भी वहां पहुंच गये थे। पौदनपुर महलमें बाहुबलीके तीनों पुत्र माता सुनंदाके जानेसे बडी चिंतामें मग्न हैं। उनको भरतेश्वरने अनेक प्रकारसे सांत्वना देनेका प्रयत्न किया। और हर तरहसे उनके दुःखको दूर करनेका उद्योग किया।

सम्राट्ने कहा—बेटा! आज पर्यंत छोटी मा, हम और तुम्हारे प्रेमसे यहां रही। अब भी तुम लोगोंको तृप्ति नहीं हुई? अब उनको अपना आत्मकल्याण कर लेने दो। महाबलराज! व्यर्थ ही दुःख मत करो। बुढापा है। उनका शरीर शिथिल होगया है। ऐसी हालतमें संयमको ग्रहण करनेसे देवगण भी उनका स्वागत करते हैं। ऐसे विभवको देखकर हमें संतुष्ट होना चाहिए। दुःख करना कदापि उचित नहीं है। बेटा! सोच लो।

महाबल कुमारने उत्तरमें कहा कि पिताजी! हम लोगोंको तो दुःख किस बातका है? आपका एक अनुभव मात्र चाहिये। हम लोगों

को तो उसी दिन रास्तेमें छोडकर हमारे माता पिता चले गये थे। हम छोटे बच्चे हैं, ऐसा समझकर हमारे पिता उस दिन रुके क्या? हमारी मातायें उस दिन जाते समय हमसे कहकर गई क्या? हमें धूलमें डालकर वे चले गये। केवल चक्रवर्तिने ही हमारा संरक्षण किया, इसे मैं अच्छीतरह जानता हूं। दादी (सुनंदादेवी) उसी दिन जानेके लिए उद्यत हुई थीं। परंतु आपके आग्रहसे, भगवंतके अनुग्रहसे व हम लोगोंके दैवसे अभीतक रहीं। लोकमें सबको माता व पिताके नामसे दो संरक्षक होते हैं। परंतु हमें कोई नहीं है, हमें तो मा और बाप दोनों आप ही हैं।

जब छोटेपनेमें ही हमने आपका आश्रय पाया है, फिर आज क्य होता है? आप अकेले रहें तो पर्याप्त हैं। हम बहुत भाग्यशाली हैं।

इतनेमें अर्ककीर्तिकुमारने कहा कि भाई! दुःख मत करो। उस दिन पिताजी तुम लोगोंका संरक्षण करेंगे, यह समझकर ही काका व काकी वगैरे चले गये। इसमें उनका क्या दोष है? पुरुनाथके वंशमें कोई एक रहे तो पर्याप्त है। वह अपने समस्त वंशज परिवारका संरक्षण करता है। यह इस कुलका संप्रदाय है। इसलिए वे निश्चित होकर चले गए। इसमें दुःखकी क्या बात है?

भाई! वे क्या संरक्षण करते हैं। उनका नाम लेनेसे समस्त विश्व ही अपना वश हो जाता है, इतना चमत्कार उनके मंगलनाममें है। युवराज! तुम इसे नहीं जानते? :ख मत करो।

भेदरहित होकर जब अर्ककीर्तिकुमार बोल रहा था। चक्रवर्ति बहुत आनंदित होकर सुन रहे थे। इतनेमें रत्नबल राजकुमार [महाबलका छोटा भाई] सम्राट्के सामने हाथ जोडकर खडा हुआ। और कहने लगा।

पिताजी! भाईने जो कहा वह ठीक ही कहा! वह सामान्य बात नहीं है। उसका अर्थ मैं कहता हूं, सुननेकी कृपा करें।

हमारे माता-पितावोंने मोहको जीत लिया ! परंतु हम तो मोहमें ही रहे। ऐसी हालतमें हमारा और उनका मिलकर रहना कैसे बन सकता था। इस लए उनका हमारे साथ कोई संबंध नहीं है, यह कहा गया है बिलकुल सत्य है।

वे हमारे माता पिता योगी बन गये। अब उन्हें हम मा बाप कैसे कह सकते हैं ? इसलिए भोगमें स्थित आप ही को मा बाप कहा है, यह भी बिलकुल सत्य है।

भरतेश्वर रत्नबलराजकी बातको सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए। एवं उन्होने दोनों हाथोंसे दोनों पुत्रोंको प्रेमसे बुलाकर आलिंगन दिया। वहां उपस्थित आप्त मित्र भी प्रसन्न हुए।

सुबल राजको भी बुलाकर सम्राट्‌ने कहा कि बेटा ! तुम्हारे भाईयोंने जो कहा वह ठीक है न ? तब उसने उत्तरमें कहा कि पिताजी ! आपके पुत्रोंकी बात हमेशा ठीक ही रहती है। योग्य माता-पितावोंके गर्भसे आनेवाले सुपुत्रोंकी बात भी योग्य ही रहती है। इतना मैं जानता हूं। इससे आगे आप ही जाने।

भरतेश्वरने प्रसन्न होकर उसे भी आलिंगन दिया, और कहने लगे कि बेटा ! आदिराज व युवराजको देखा ? उनमें कोई भेद ही नहीं है। सहोदरोंमें भेदभाव तो सत्कुलप्रसूतोंमें नहीं होता है। नीच लोगोंमें होता है, इत्यादि कहकर उन्हें प्रसन्न किया।

भरतेश्वर मनमें सोचने लगे कि इन पुत्रोंके विवेकको देखकर मेरा मन प्रसन्न हुआ। मातावोंके वियोगका संताप भी दूर हो गया। इनको संतुष्ट करनेके लिए और इनके दुःखको दूर करनेके लिए मैं आया था। परंतु इन्होंने ही मुझे संतुष्ट किया आश्चर्यकी बात है।

तदनंतर तीन दिन वहां रहकर एक एकके महलमें एक एकदिन सम्राट्‌ने भोजन किया। और तीन दिन बहुत आनंदके साथ व्यतीत किया। और कहा कि बेटा ! धूप व हवासे भी तुम लोगोंको तकलीफ

10

नहीं होने दूंगा, चिंता मत करो। यह कहकर वहांसे विदा हुए। प्रणयचंद्र मंत्री व सेनापतिका भी योग्य सत्कार कर एवं पुत्रकी सेनाको संतुष्ट कर अपने अयोध्यापुरकी ओर रवाना हुए। भरतेश्वरके व्यवहारसे सभी संतुष्ट हुए। बहुत दूरतक तो लोग उनके पीछा न छोडकर आ रहे थे। उन सबको जानेके लिए कहकर अपने पुत्र व गणबद्धोंके साथ एवं अनेक गाजेबाजेके शब्दसे आकाश प्रदेश गुंजायमान होते हुए विमानारूढ हुए। वायुमार्गसे वायुवेगसे चलकर अपने महलकी ओर आये व वहांपर आनंदसे अपना समय व्यतीत करने लगे।

पाठक आश्चर्य करेंगे कि भरतेश्वर कभी संतोषमें और कभी चिंतामें मग्न होते हैं। परंतु उनका पुण्य इतना प्रबल है कि दुःख-हर्षजन्य विकार अधिक देर तक नहीं ठहरता है संसारमें यही सुख है। यह मनुष्य हर्षके आनेपर आनंदसे फूल जाता है, और दुःखके आनेपर कायर बन जाता है। यह दोनों ही विकार है। इन हर्ष विषादोंसे उसे कष्ट होता है। परंतु जो मनुष्य इन दोनों अवस्थावोंकी वस्तुस्थितिको अनुभव कर परवश नहीं होता है वह धन्य है, सुखी है। भरतेश्वर सदा इस प्रकारकी भावना करते हैं।

" हे परमात्मन् ! तुम चिंतातिक्रांत हो। संतोष हो या चिंता हो, यह दोनों विकारजन्य हैं और अनित्य हैं, इस भावनाको जागृत कर मेरे हृदयमें सदा बने रहो। "

हे सिद्धात्मन् ! मायाको दूर कर नाट्य करते हुए लोकको आत्मरसायन पिलानेवाले आप निरायास होकर मुझे सन्मति प्रदान करें। यही आपसे विनय है।

इसी सुविशुद्ध भावनाका फल है कि भरतेश्वर हर्षविषादजन्य विकारको क्षणमात्रमें जीतलेते हैं।

इति जननी-वियोग-संधि

—०—

अथ ब्राह्मणनाम संधि।

माता यशस्वति व सुनंदा देवीके दीक्षा लेनेके बाद कई दिनों की बात है। भरतेश्वर एक दिन दरबारमें अध्यात्मरसमें मग्न होकर विराजे हुए हैं। वहांपर द्विज, क्षत्रिय, वैश्य, व शूद्र इस प्रकार चारों वर्णकी प्रजायें भरतेश्वरके चारों ओर थीं, जैसे कि भ्रमर कमलके चारों ओर रहते हों। उस समय सम्राट्ने आत्महितके मार्गका प्रदर्शन किया।

इधर उधरकी कुछ बातें करनेके बाद वहां उपस्थित सज्जनोंका पुण्य हीने मानो बुलवाया, उस प्रकार भरतेश्वरने आत्मतत्वका प्रतिपादन किया। बहुत ही सुंदर पद्धतिसे आत्मतत्वको प्रतिपादन करते हुए भरतेश्वरसे मंत्रीने प्रार्थना की कि स्वामिन्! सब लोग जान सके इस प्रकार आत्मकलाका वर्णन कीजिये। दिव्यवाक्पतिके आप सुपुत्र हो। इसलिए हमें आत्मद्रव्यके स्वरूपका प्रतिपादन कीजिए। इस प्रकार भक्तिसे प्रार्थना करनेपर आसन्नभव्योंके देवने इस प्रकार कथन किया।

हे बुद्धिसागर! सुनो, सर्व कलावोंसे क्या प्रयोजन? आत्म कलाको अच्छी तरह साधन करनेपर लोकमें वह सर्वसिद्धिको प्राप्त कराता है। जो सज्जन परमात्माका ध्यान करते हैं वे इस लोकमें स्वर्गादिक सुखोंको भोगकर क्रमशः कर्मोंको ध्वंस करते हैं एवं मुक्तिश्रीको पाते हैं।

दूर नहीं है, वह परमात्मा सबके शरीररूपी मकानमें विद्यमान है। उसे पाकर मुक्ति प्राप्त करनेके मार्गको न जानकर लोग संसारमें भ्रमण कर रहे हैं। मंत्री! जिस देहको उसने धारण किया है उस देहमें वह सर्वांगमें भरा हुआ है। वह सुज्ञान, सद्दर्शन, सुख व शक्तिस्वरूपसे युक्त है। स्वतः निराकार होनेपर भी साकार शरीरमें प्रविष्ट है। उसका क्या वर्णन करें।

वह आत्मा ब्राह्मण नहीं है, क्षत्रिय नहीं है, वैश्य नहीं है, शूद्र भी नहीं है। ब्राह्मणादिक संज्ञासे आत्माको इस शरीरकी अपेक्षासे संकेत करते हैं। वह आत्मा योगी नहीं है, गृहस्थ भी नहीं है। योगी, जोगी, श्रमण, सन्यासी इत्यादि सभी संज्ञायें कर्मोंकी अपेक्षासे हैं।

वह आत्मा स्त्री नहीं है, स्त्रीकी अपेक्षा करनेवाला भी नहीं है। पुरुष व नपुंसक भी नहीं है। मीमांसक, सांख्य, नैयायिक, आर्हत इत्यादि स्वरूपमें भी वह नहीं है। यह सब मायाचारके खेल हैं।

वह शुद्ध है, बुद्ध है, नित्य है, सत्य है, शुद्ध भावसे सहज गोचर है। सिद्ध है, जिन है, शंकर है, निरंजन–सिद्ध है, अन्य कोई नहीं है।

वह ज्योतिस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, वीतराग है, निरामय है, जन्मजरामृत्युसे रहित है, कर्मसंघातमें रहनेपर भी निर्मल है।

यह आत्मा वचन व मनको गोचर नहीं है। शरीरसे मिश्रित न होकर इस शरीरमें वह रहता है। स्वसंवेदनानुभवसे यह गम्य है। उसकी महिमा विचित्र है।

विवेकीजन स्वतःके ज्ञानसे स्वतःको जो जानते हैं, उसे स्वसंवेदन कहते हैं। मंत्री! जब यह मोक्षके लिए समीप पहुंच जाता है तब अपने आप वह स्वसंवेदन ज्ञान प्राप्त होता है।

इस परमात्माको स्वयं अनुभव कर सकते हैं। परंतु दूसरोंको बोलकर बता नहीं सकते हैं। सुननेवालोंको तो सब बातें आश्चर्यकारक हैं। परंतु ध्यान व अनुभव करनेवालोंको बिलकुल सत्य मालुम होती हैं।

आत्मामें विकार उत्पन्न करनेवाले इंद्रियोंको बांधकर, श्वासके वेगको मंदकर, मनको दाब कर, चारों तरफ देखनेवाली आंखोंको मीचकर, सुज्ञान नेत्रसे देखनेपर यह आत्मा प्रत्यक्ष होता है।

मंत्री! वह जिस समय दिखता है, उस समय मालुम होता है कि शरीररूपी घडेमें दूध भरा हुआ है, या शरीररूपी घरमें भरे हुए शीतल प्रकाशके समान मालूम होता है।

दूध व प्रकाश तो इंद्रियगम्य हैं। परन्तु यह आत्मा इंद्रियगम्य नहीं है। इसलिए वह उपमा ठीक नहीं है। आकाशरूपी दूध व प्रकाशके समान है, यह विचित्र है।

जो वचनके लिए अगोचर है, वह ऐसा है, वैसा है, इत्यादि रूपसे कैसे कहा जा सकता है। इसलिए मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता हूं। लोकमें जो अप्रतिम है ऐसे चिद्रूपको किस पदार्थके साथ रखकर कैसे बराबरी कर बता सकते हैं? शक्य नहीं।

स्वानुभवगम्य पदार्थको अपने आप ही जानना व देखना उचित है। सामने रखे हुए पदार्थके साथ उपमित कर ऐसा है, वैसा है, कहना सब उपचार है।

वह आत्मा एक ही दिनमें नहीं दिख सकता है, क्रमसे ही दिखता है। एक दफे अनेक चंद्र व सूर्योंके प्रकाशके समान उज्वल होकर दिखता है, फिर एक दफे [चचलता आनेपर] वह प्रकाश मंद होता है। स्थिरता आनेपर फिर उज्वल होता है।

एकदफे सर्वांगमें वह दिखता है। फिर हृदय, मुख व गर्भमें प्रकाशित होता है। इस प्रकार एकदफे प्रकाश दूसरी दफे मंदप्रकाश इत्यादि रूपसे दिखता है। क्रम-क्रमसे ही वह साध्य होता है।

मंत्री! इस शरीरमें एकदफे यह परमात्मा पुरुषाकारके रूपमें दिखता है। फिर आकाररहित होकर शरीरमें सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश भरा हुआ दिखता है। उस समय यह आत्मा निराकुल रहता है।

ध्यानके समय जो प्रकाश दिखता है वही सुज्ञान है, दर्शन है, रत्न-त्रय है। उस समय कर्म झरने लगता है। तब आत्मसुखकी वृद्धि होती है।

आंखोंकी छोटीसी पुतलियोंसे देखना क्या है? उस समय यह आत्मा सर्वांगसे ही देखने लगता है। हृदय व अल्प मनसे जानना क्या? सर्वांगसे जानने लगता है।

नासिका, जिव्हा, आदि अल्पेंद्रियोंका क्या सुख है? उस समय उसके सर्वांगसे आनंद उमड पडता है। शरीरभर वह सुखका अनुभव करता है। मंत्री! वह वैभव और किसे प्राप्त हो सकता है?

उस समय बोल चाल नहीं है। श्वासोच्छ्वास नहीं है, शरीर नहीं है। कोई कल्मष नहीं है, इधर उधर कंप नहीं है। आत्मा पुरुषरूप उज्ज्वल प्रकाशमय दिखता है। शरीरके थोडासा हिलनेपर आत्मा भी थोडा हिल जाता है। जिस प्रकार कि जहाजके हिलनेपर उसमें बैठे हुए मनुष्य भी थोडासा हिल जाते हैं।

मंत्री! अभ्यासके समय थोडीसी चंचलता जरूर रहती है, परंतु अच्छी तरह अभ्यास होनेके बाद सभ्योंके समान गंभीर व निश्चल हो जाता है। उस समय यह आत्मा पुरुषाकार समुज्वल कांतिसे युक्त होकर दीखता है। और उस समय कोई क्षोभ नहीं रहता है।

उस समय उसका क्या वर्णन करें। प्रकाशकी वह पुतली है। प्रभाकी वह मूर्ति है, चित्कलाकी वह प्रतिमा है, कांतिका वह पुरुष है, चमकका वह बिंब है। प्रकाशका चित्र है। इस प्रकार वह आत्मा अंदरसे दिखता है।

विशेष क्या? जुगनुने ही पुरुषरूपको धारण किया तो नहीं; अथवा क्या हाथको न लगनेवाले दर्पणने ही पुरुषरूपको धारण किया है? पहिले कभी अन्यत्र उस रूपको नहीं देखा था, आश्चर्य है।

चमकनेवाली बिजलीकी मूर्ति यह कहांसे आई? अथवा अत्यंत निर्मल यह स्फटिककी मूर्ति कहांसे आई? इस प्रकार आश्चर्यके साथ वह ध्यानी उस आत्माको देखता है।

जिस प्रकार स्वच्छ दर्पणमें बाह्य पदार्थ प्रतिबिंबित होते हैं, उसी प्रकार अनेक प्रकारके संसार संबंधी मोहक्षोभसे रहित उस निर्मल आत्मामें आत्मा जब ठहरता है, तब उसे अखिल प्रपंच ही देखनेमें आते हैं।

उस समय उसे स्वयं आश्चर्य होता है कि यह आत्मा इस अल्प देहमें आया कैसे? इसमें तो जगत्भर पसरने योग्य प्रकाश है। फिर इसे शरीररूपी जरासे स्थानमें किसने भरा? सर्व आकाश प्रदेशमें व्याप्त होने

योग्य निर्भलता व ज्ञान इसमें है। फिर इस जरासे स्थानमें वह क्यों रुका ? आश्चर्य है!

मंत्री! उस समय झर झर होकर कर्म झरने लगता है। और चित्कला धग धग होकर प्रज्वलित होती है। एवं अगणित सुख जुम जुम कर वढता जाता है। यह ध्यानिके लिए अनुभवगम्य है। दूसरों को दीख नहीं सकता है।

गर्मीके कडक धूपके पडते जाने पर जिस प्रकार चारों ओर व्याप्त बरफ पिघल जाता है, उसी प्रकार निर्मल आत्माके प्रकाशमें कामाण, तैजस शरीर पिघलते जाते हैं।

उस समय आत्माको देखनेवाला भी वही है, देखे जानेवाला भी वही है, देखनेवाली दृष्टि भी वही है। इसे सुनकर आश्चर्य होगा कि ध्यानके फलसे आगे प्राप्त होनेवाली मुक्ति भी वही है। इस प्रकार वह स्वस्वरूपी है। तीन शरीरके अंदर रहनेपर उस आत्माको ससारी कहते हैं। ध्यानके द्वारा उन तीन शरीरोंका जब नाश किया जाता है तब वह अपने आप लोकाग्र–स्थानमें जा विराजमान होता है। उसे ही मुक्ति कहते हैं।

यह आत्मा स्वयं अपने आपको देखने लग जावे तो शरीरका नाश होता है। दूसरे कोई हजार उपायोंसे उसे नाश करनेके लिए प्रयत्न करे तो भी वह अशक्य है। अपनेसे भिन्न कर्मोंको नाश कर स्वयं यह आत्मा मुक्तिसाम्राज्यको पाता है। उसे वहां उठा लेजानेवाले, यहां रोकनेवाले और कौन हैं ? कोई नहीं है।

मंत्री! लोकमें मुक्ति प्रदान करनेवाले गुरु और देव कहलाते हैं। गुरु और देव तो केवल मुक्तिके मार्गको बतला सकते हैं। कर्मनाश तो स्वयं ही इस आत्माको करना पडता है। गारुडी विद्याका गुरु क्या रण–रंगमें आ सकता है ? कभी नहीं। शत्रुओंको जीतनेके लिए तो स्वयं ही को प्रयत्न करना पडता है।

यदि युद्धस्थानमें स्वयं वीरतासे काम लिया और वह वीर विजयी हुआ तो क्या पहिले जिसने अभ्यास कराया था वह खिन्न होगा ? क्या वह यह सोचेगा कि मेरी अपेक्षा किये विना ही यह वीर सफल होता है। कभी नहीं। उसके लिए तो हर्ष होना चाहिए। इसी प्रकार भेदभक्ति की पूर्णता होनेपर स्वयं स्वयंको देखकर मुक्तिको प्राप्त करना वही वास्तविक उत्कृष्ट जिन-भक्ति है। स्वयं आत्मानुभव करनेमें समर्थ होनेपर देवगुरु उसकी सफलतामें खिन्न नहीं हो सकते हैं।

भगवंतको अपने चित्तसे अलग रखकर भक्ति करना देखना वह भेद-भक्ति है। वह स्वर्गके लिए कारण है। परंतु अपने ही शरीरमें उस भगवंतका दर्शन करें, मुक्ति प्रदान करानेवाली वही सुयुक्ति है। और वास्तविक भक्ति है।

चेतनरहित शिला, कांसा वगैरहमें जिन समझकर प्रेम व भक्ति करना वह पुण्य-भक्ति है। आत्मा चैतन्यरूप है, देव है, यह समझकर उपासना करना यह नूतन-भक्ति मुक्तिके लिए कारण है।

ज्ञानकी अपूर्णता जबतक रहती है तबतक यह अरहंत बाहर रहता है। जब यह आत्मा अच्छी तरह जानने लगता है तबसे अरिहंतका दर्शन अपने शरीरके अंदर ही होने लगता है। इसमें छिपानेकी बात क्या है ? अपने आत्माको ही देव समझकर जो वंदना कर श्रद्धान करता है वही सम्यग्दृष्टि है।

सचिव ! आजतक अनंत जिनसिद्ध अपनी आत्मभावनासे कर्मोंको नाशकर मोक्ष सिधार गये हैं। उन्होंने अपनी कृतिसे जगत्को ही यह शिक्षा दी है कि लोक सब उनके समान ही स्वतः कर्म नाश कर उनके पीछे मुक्ति आवें। इस बातको भव्यगण स्वीकार करते हैं। अभव्य इसे गप्पेबाजी समझकर विवाद करते हैं। आत्मानुभव विवेकियोंको ही हो सकता है। अविवेकियोंको वह क्यों कर हो सकता है ?

अभव्य कहते हैं कि हमे आत्मा अकेलेसे क्या करना है। हमे अनेक पदर्थोंके अनुभवकी जरूरत है। अनेक पदार्थोंमें जो सुख है उसे अनुभव करना जरूरी है। ऐसी अवस्थामें अध्यात्मतत्त्वको हम स्वीकार नहीं कर सकते हैं। इत्यादि कहते हुए मधु मक्खियोंके काटने के समान एकमेकसे विवाद करते रहते हैं।

मंत्री! वे अभव्य ध्यानको स्वीकार नहीं करते हैं। ध्यान करना ही नहीं चाहते हैं। यदि कदाचित् स्वीकार किया तो उसमें अनेक प्रकारकी पराधीनता बताकर उसे छोड देते हैं। श्रीनिरंजनसिद्धमें स्थिर होनेके लिए कहें तो कुछ न कुछ बहानाबाजी करके टाल देते हैं।

ध्यान करने के लिए घोर तपश्चर्याकी जरूरत है। अनेक शास्त्रोंके ज्ञानकी जरूरत है। इत्यादि कह कर ध्यानका अपलाप करते हैं। स्वयं तप भी करें, अनेक शास्त्रोंका पठन भी करें तो भी ध्यानसे वे विरहित रहते हैं। स्वयं तो वे आत्माको देखना नहीं जानते हैं, और दूसरे जो आत्मानुभवी हैं उनको देखकर संतुष्ट भी नहीं होते हैं। केवल दूसरों को कष्ट देना वे जानते हैं। उनके साथ ध्यानी जन कभी न करें।

मंत्री! विशेष क्या कहें? यह आत्मध्यान गृहस्थको हो सकता है। मुनिको हो सकता है। बडे शास्त्रीको हो सकता है। छोटे शास्त्रीको भी हो सकता है। गृहिणीको भी हो सकता है। केवल आसन्न भव्य होनेकी जरूरत है, इसे विश्वास करो।

परम शुक्ल ध्यान योगीके सिवाय गृहस्थोंको नहीं हो सकता है। हां! उत्कृष्ट धर्म्य-ध्यान तो सबको हो सकता है। इसमे कोई संदेह ही नहीं है। धर्म्यध्यान भी दो प्रकारका है। एक व्यवहार धर्म्यध्यान, दूसरा निश्चय धर्म्य-ध्यान। आज्ञाविचय, विपाकविचय, अपायविचय और संस्थानविचय इस प्रकार चार भेदोंसे विभक्त धर्म्यध्यानके स्वरूपको

समझकर चिंतवन करना यह व्यवहार धर्म्यध्यान है। स्वतः आत्माको सुज्ञानि समझकर चिंतवन करना यह निश्चय धर्म्यध्यान है।

संसारमे जो बुद्धिमान् हैं उनको उचित है कि वे आत्माको आत्मा से देखकर अपने अंतरंगको जाने और कर्मचक्रका नाश करें। वे परमध्यानी इस भवभ्रमणसे मुक्त होकर मुक्ति स्थानमें स्वयं सिद्ध परमात्मा होकर विराजते हैं।

भोगमें रहकर धर्मयोगका अवलंबन करना चाहिए। बाद भोगांतमें योगी होकर शुक्लध्यानसे अष्टकर्मोंको नाशकर मुक्ति प्राप्त करना चाहिए। ज्ञानियोंको कर्मनाश करनेमें विलंब नहीं लगता है। श्रेण्यारोहण करनेके लिए अंतर्मुहूर्त शेष रहे तब भी वे दीक्षा लेते हैं।

समुद्रमें स्नान करनेके लिए जानेको इच्छा रखनेवाले दो मनुष्योंमें, एक तो अपने घरपर ही कपडे वगैरेह उतार कर स्नान के लिए घरसे पूरी तैयारी कर जाता है। दूसरा समुद्रके तटपर जाकर वहीं कपडा खोलकर स्नान करता है। स्नान करनेकी दोनोंकीं क्रियामें कोई अंतर नहीं है। दोनों स्नान करते हैं; परंतु तैयारीमें अंतर है। इसी प्रकार मोक्षार्थी पुरुषोंमें कोई आज दीक्षा लेकर जाते हैं व अनेक कालतक तपश्चर्या ध्यानका अभ्यासकर मुक्तिको पाते हैं। परंतु कोई २ घरमें ही रहकर मोहके अंशको क्रमसे कम करते हुए ध्यानका अभ्यास करते हैं। बादमें एकदम दीक्षा लेते हैं व थोडीसी तपश्चर्या व कुछ ही समयके ध्यानसे मुक्तिको प्राप्त करते हैं। मुक्ति पानेकी क्रिया तो दोनोंकी एक है। परंतु तैयारीमें ही अंतर है।

संसारमें कोई कठिनकर्मी रहते हैं। कोई मृदुकर्मी रहते हैं। उनमें कठिनकर्मी अर्थात् जिनका कर्म तीव्र हैं, बाह्यसंग अर्थात् बाह्य परिग्रहको छोडकर आत्मदर्शन करते हैं। परंतु मृदुकर्मी अर्थात् जिनका मंदकर्म है, वे तो बाह्य परिग्रहको रहनेपर भी भेदविज्ञानसे आत्माको देखते हैं। फिर परिग्रहको छोडकर परमशुक्लके बलसे मुक्तिको पाते हैं।

कोई बहुत कष्टके साथ निधिको पाते हैं तो कोई सातिशय पुण्यके बलसे निरायास ही निधिको प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार कोई विशेष प्रयत्न कर आत्मनिधिको पाते हैं और कोई सुलभमें ही आत्मनिधिको पाते हैं। इस प्रकार उन मोक्षार्थी पात्रोंमें भी द्विविधता है।

मंत्री! विशेष क्या कहूं? यह परमब्रह्म है। परमागमका सार है, दिव्यतीर्थ है। इसलिए अंका होकर चिद्रूप परमात्मामें मग्न होजावो। अनंत सुखका अनुभव करो।

देहमें स्थित शुद्धात्माको जो देखता है उसके हाथमें कैवल्य है। वह संयमी साहसी है, वीर है, कर्मोंको जडसे काटे विना वह नहीं रह सकता है। इसे विश्वास करो। परमात्माका आप लोग दर्शन करें। ध्यानरूपी अग्निसे काल और कर्मको भस्म करें। और तीन देहको मारको दूर करें और मुक्तिको प्राप्त करें।

मंत्री! इसका श्रद्धान करना यही शुद्ध सम्यक्त्व है। उसे जानना वही सम्यग्ज्ञान है, और उसीमें अपने मनको निश्चल कर ठहराना वही सम्यक्चारित्र है। यही रत्नत्रय है, जो कि मोक्षमार्ग है। अर्थात् आत्म-तत्वको देखना, जानना व उसमें लीन होना यही मोक्षका निश्चित मार्ग है।

भरतेश्वरके मुखसे निकले हुए इस आत्म-तत्वके विवेचनको सुन कर वहां उपस्थित सर्व सज्जन प्रसन्न हुए। मंत्री मित्रोंने हर्षोद्गार निकालते हुए कहा स्वामिन्! धन्य हैं, आज हम लोग कृतकृत्य हुए। सिद्धांतश्रवणके हर्ष से उसी समय उठकर उन लोगोंने बहुत भक्तिसे प्रणाम किया।

शूद्र, क्षत्रिय व वैश्योंने जब नमस्कार किया तो विप्रसमूह आनंद क उद्रेकसे अनेक मंगल-सामग्रियोंको हाथमें लेकर भरतेश्वरके पास गया। उनकी आंखोसे आनंदबाष्प उमड रहा है। शरीरमें रोमांच होगया है। शरीर हर्षसे कंपित हो रहा है। मुखमे नवीन कांति दिख रही है। हंसते हंसते आनंदसे फूलकर वे सम्राट्के पास पहुंचे। व प्रार्थना करने

लगे कि स्वामिन् ! आपकी कृपासे मनका अंधकार दूर हुआ । सुज्ञान सूर्यका उदय हुआ । इसलिए आप चिरकालतक सुखसे जीते रहें । जयवंत रहें । आपकी जयजयकार हो । यह कहते हुए भरतेश्वरको उन विप्रोंने तिलक लगाया ।

बाकीके लोगोंके हर्षकी अपेक्षा आत्मतत्वको सुनकर इन विप्रोंको अधिक हर्ष हुआ है । भरतेश्वर भी हर्षसे सोचने लगे कि ये विशिष्ट जातिके हैं, तभी तो इनको हर्ष विशेष हुआ है ।

सम्राट् पुनः सोचने लगे कि ये विप्र विशिष्ट जातिके हैं, इसलिए आत्मकलाकी वार्ताको सुनकर प्रसन्न हुए हैं । चंद्रमाकी कलाको देखकर चकोर पक्षीको जिस प्रकार आनंद होता है, कौवेको क्यों कर हो सकता है ? उस दिन आदिब्रम्हा परमपिताने इस वर्णको बाकीके वर्णोंके लिए गुरुके नामसे कहा है । आज वह बात प्रत्यक्ष हुई । सचमुचमें इनका परिणाम देहपिंड परिशुद्ध है । तदनंतर विनोदके लिए उनसे सम्राट्ने पूछा कि विप्रो ! चिद्रूपका अनुभव किस प्रकार है ? कहो तो सही । तब उत्तरमें उन लोगोंने कहा कि आदिनाथ स्वामीके अग्र पुत्रकी बोल, चाल व विशाल-विचारके समान वह आत्मानुभव है । स्वामिन् ! आदिचक्रेश्वर भरत ही उस आत्मकलाको जानते हैं, हम तो उसे पढ सुन कर जानते हैं, वह ध्यान क्या चीज है, हमें मालुम नहीं हैं । आगे हमें प्राप्त हो जाय यही हमारी भावना है।

भरतेश्वरने सोचा कि परमात्मयोगका अनुभव इनको मौजूद है। तथापि अपने मुखसे उसे कहना नहीं चाहते । आधा भरा हुआ घडा उथल पुथल होता है, भरा हुआ घडा स्तब्ध रहता है, यह लोककी रीत है।

भरतेश्वरने उनको संबोधन कर कहा कि आप लोग आसन्न भव्य हैं । आप लोगोंके आत्मविलासको देखकर मैं बहुत ही प्रसन्न होगया हूं । इसलिए हे भूसुरगण ! आप लोगोंका मैं आज एक नवीन नामाभिधान करूंगा । ब्रह्म शब्दका अर्थ आत्मा है, आत्माको अनुभव

करनेवाला ब्राह्मण है इस प्रकार शब्दकी सिद्धि है। ब्रह्माणं आत्मानं वेत्ति अनुभवति इति ब्राह्मणः। इस प्रकार आप लोगों का आजसे ब्राह्मणके नामसे संबोधन होगा।

लोकमें सभी नामोंको धारण कर सकते हैं। परंतु आत्मानुभवके नामको धारण करना कोई सामान्य बात नहीं है। इसलिए आप लोगों को यह नामाभिधान किया गया है।

ब्राह्मणगण! आप लोगोंको एक शुभनाम और प्रदान करता हूं। लोकके सभी सज्जन जन कहलाते हैं। उनमें आप लोगोको महाजन कहेंगे। आपलोगोंका दूसरा नाम महाजन रहेगा।

पिताजीने आपलोगोंको द्विज, विप्र, भूसुर, बुध आदि अनेक नामोंको दिया है। मैं आज आपलोगोंके गुणसे प्रसन्न होकर ब्राह्मण व महाजनके नामसे कहूंगा, यही आपलोगोंका आदर है। आपलोग दानके लिए पात्र हैं; दीक्षा के लिए योग्य हैं इस प्रकार पिताजीने कहा था। परंतु ज्ञान व ध्यानके लिए भी योग्य हैं इस प्रकार मैं करार देता हूं।

भरतेश्वरके इस प्रकारके गुण—पक्षपातको देखकर वहां उपस्थित सर्व मंत्री मित्रोंको हर्ष हुआ। और कहने लगे कि स्वामिन्! ये उत्तम पुरुष हैं। इनको आपने जो उत्तम नाम दिया है वह बहुत ही उत्तम हुआ।

नाम मात्र प्रदानकर कोरा भेजने के लिए क्या वह ग्रामीण राजा है? नहीं! नहीं! उसी समय उन ब्राह्मणों को सुवर्ण वस्त्र आभरण ग्राम, हाथी, घोडा, गाय आदि यथेष्ट दानमें देकर सत्कार किया।

आहारदान, अभयदान, शास्त्रदान और औषधदान, यह तपस्वियोंको देने योग्य चार दान हैं। परंतु सुवर्णको आदि लेकर दस व चौदह प्रकारके पदार्थोंका दान इन ब्राह्मणोंको देना चाहिये।

इस प्रकार सत्कार करनेके बाद भरतजीने हर्षसे न फूले समाते हुए आत्मानुभावियोंके प्रति आदर व्यक्त करनेके लिए उनको आलिंगन दिया।

उस प्रकार साक्षात् सम्राट्के आलिंगन देने पर उनको इतना हर्ष हुआ कि वे सोचने लगे हमारा जन्म सचमुचमें सार्थक है। वे इतने फूल

गये कि उनके हाथकी दर्भमुद्रा अब कसने लगी। उन ब्राह्मणोंने हर्षसे कहा कि स्वामिन् ! आज आपसे हम कृतकृत्य हुए। आपने हमारी आज सृष्टि की। उस दिन आदि भगवंतने जो सृष्टिकी है वह तीन वर्णके नामसे ही रहे। हम लोग आपकी ही सृष्टि कहलाना चाहते हैं। हम तो आपके ही सृष्टि हैं। तब सम्राट्ने कहा कि नहीं ! ऐसा नही होना चाहिए। सृष्टि तो आदि प्रभुकी ही रहे। केवल नामाभिधान मेरा रहेगा। तब उन ब्राह्मणोंनें हर्षसे कहा कि हम इस विषयमें आदिप्रभुके चरणोंमें निवेदन करेंगें।

प्रेमपूर्ण वाक्यसे सम्राट्ने सबको अपने स्थानके लिए विदाई कर स्वंय राजमहलकी ओर चले गये व वहांपर क्षेमसे अपना समय व्यतीत कर रहे हैं।

पाठक ! भरतेश्वरके आत्मकला नैपुण्य, तद्विषयक हर्ष व गुणैक पक्षपातित्वको देखकर आश्चर्य करते होंगे। लोकमें सर्व कलावोंके परिज्ञानसे आत्मकलाका परिज्ञान होना अत्यंत कठिन है जिसने अनेक भवोंसें आत्मानुभवका अभ्यास किया है वही उसमें प्रवीण होता है। इसके अलावा जो गुणवान् हैं उन्हींको गुणवानोंको देखनेपर हर्ष होता है। विवेकशील व्यक्ति ही वास्तविक गुणोंका अनुभव करता है। भरतेश्वर इसीलिए रात्रिदिन यह भावना करते हैं कि—

हे परमात्मन् ! सामने उपस्थित गुणको व तुम्हारे गुणको परीक्षा करते हुए सामने के गुणको एकदम भूलकर, वह यह के संकल्प विकल्पोंसे रहित होकर रहनेकी अवस्थामें मेरे हृदयमें सदा बने रहो, यही प्रार्थना है।

हे सिद्धात्मन् ! आप नित्य ही अपने आपके ध्यानमें मग्न होकर लोकके सत्या-सत्य समस्त पदार्थोंको साक्षात्कार करते हैं। अत एव अत्यंत सुखी हैं। मुझे भी सन्मति प्रदान कीजिये।

यही कारण है कि वे सदा गुणोंके अखंड-पिंडके रूपमें अनुभवमें आते हैं।

इति ब्राह्मणननाम संधिः

अथ षोडश—स्वप्न संधिः ।

जिस दिन द्विजोंका ब्राह्मण नामाभिधान किया गया उसी दिन रात्रिके अंतिम प्रहरमें सम्राट्ने सोलह स्वप्नोंको देखा। तदनंतर सूर्योदय हुआ।

नित्य क्रियासे निवृत्त होकर विनयसे विप्रजनोंको बुलवाया। व उनके आनेपर रात्रीके समय देखे हुए स्वप्नोंके संबंधमें कहा व उनके फलको भगवान् आदि प्रभुसे पूछेंगे, इस विचारसें सम्राट् कैलास पर्वत की ओर रवाना हुए। उस समय उन विप्रोंने भी कहा कि भगवंतके दर्शन कर हमें बहुत दिन होगये हैं। हम भी आपके साथ कैलास पर्वतको आयेंगे। भरतेश्वरने उसे सम्मति दी। तब वे सम्राट्के साथ भगवंतके दर्शनके लिए निकले। जिस प्रकार देवेंद्र सुरोंके साथ मिलकर समवसरणमें जाता है, उसी प्रकार यह नरेंद्र भूसुरोंके साथ मिलकर समवसरणमें जा रहा है।

आकाश मार्गसे शीघ्र जाकर जिनसभा रूपी कमल—सरोवरमें भ्रमरोंके समान उन विप्रोंके साथ समवसरणमें प्रवेश किया। व उनके साथ आदिप्रभुका दर्शन किया। भक्तिसे आनंदाश्रुका पात होने लगा। शरीरमें कंप हो रहा है। सर्वांगमें रोमांच हो रहा है। उस समय उन द्विजोंके साथ आदि प्रभुके चरणोंमें पुष्पमालाको समर्पण किया, साथमें निर्मल वाक्पुष्पमालाको समर्पण करते हुए भगवंतकी स्तुति की।

जय जय! सर्वज्ञ! शांत! सर्वेश! चिन्मय! चिदानंद! तीर्थेश! भयहर! स्वामिन्! हम आपके शरणागत हैं। हमारी आप रक्षा करें। इस प्रकार स्तुति करते हुए। उन महाजनोंके समूहके साथ भगवंतके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम किया।

विशेष क्या वर्णन करें! बहुत वैभवके साथ जिनेंद्र भगवंतकी पूजा की। उस समय सम्राट्की उत्कट भक्तिको देखकर वहां उपस्थित सर्व नरसुर जय जयकार करने लगे। सम्राट्को भी परम संतोष हुआ।

तदनंतर मुनियोंकी वंदना कर योग्य स्थानमें बैठ गये व भगवंतसे प्रार्थना करने लगे कि स्वामिन् ! आपकी सृष्टिके जो द्विज हैं उनको मैंने ब्राम्हण नामाभिधान किया है । उसे आप मंजूर करें ।

भगवंतने दिव्यवाणीसे फरमाया कि भव्य ! आज हम क्या मंजूर करें ! हमको तो उसी दिन मालुम था । इनको आगे जाकर ब्राम्हण नामाभिधान तुमसे होगा । इसलिए उनको वह नाम रहे । इसमें क्या हर्ज है । आत्मानुभव होनेसे आत्मानुभवियोंको ब्राह्मण यह नाम पडता है। वह आत्माका ही शुभ नाम है । इस प्रकार परमात्माने निरूपण किया ।

तब ब्राह्मणोंने भगवंतसे प्रार्थना की कि स्वामिन् ! यद्यपि हमारी सृष्टि तो आपसे उसी दिन होगई है, परंतु आपके अग्रपुत्रने हमे आज सुंदर नाम दिया है । अत एव हम लोग उसकी गुणग्राहकताको देख कर प्रसन्न हो गये है । हम चक्रवर्तिकी सृष्टि कहलाना चाहते हैं । सम्राट्ने बीचमें ही कहा कि नहीं ! नहीं ! ऐसा नहीं होगा । सम्राट्ने जब नहीं कहा तो प्रभुने फरमाया कि नहीं क्यों ? इसे मंजूर करो । क्योंकि उन द्विजोंको तुमपर असीम प्रेम है । इसलिए उनकी बातको माननी ही चाहिए । यद्यपि आज यह बात विनोदके रूपमें है, कालांतरमें लोकमें वही प्रसिद्ध हो जाती है । अंतिम कालतक भी कोई इसे भूल नहीं सकते हैं । अखेर कमसे कम जैनियोंमें इस बातकी प्रसिद्धि रहती है कि ये ब्राह्मण चक्रवर्तिके द्वारा सृष्ट हैं । इसीसे दुनियामें एक झगडा ही पैदा होता है ।

आजके ये जो ब्राह्मण हैं उनको तो यह विनोदके रूपमें है । परंतु आगे जो इनके वंशज होंगे उनको जब यह सत्य मालुम होगा तो वे आपसमें मारपीट किये विना नहीं छोडेंगे । सबसे पहिलेके वर्णको यदि सबके बाद उत्पन्न हुआ कहेंगे तो उनको असंतोष क्यों नहीं होगा ? ।

शूद्र, क्षत्रिय व वैश्योंकी उत्पत्तिके बाद ब्राम्हणोंकी मुद्राका उदय

हुआ ऐसा यदि कहें रौद्र क्यों नही उत्पन्न होगा ? । उस समय फिर ये विप्रजन जिनधर्मको शूद्रीय धर्मके नामसे कहेंगे ।

परिणाम यह होगा कि ये ब्राम्हण जिनधर्मका परित्याग और यज्ञ यागादिकका प्रचार करेंगे । इतना ही नहीं उन यज्ञ यागादिकके निमित्तसे हिंसाका भी प्रचार होने लगता है । तब जैनधर्मीय लोग उनकी निंदा करने लगते हैं ।

लोकमें हिंसाके प्रचारको रोकनेके लिए उन ब्राम्हणोंके लिए नियत चौदह प्रकारके दानो में दस दान नहीं देना चाहिये । केवल चार दान ही पर्याप्त हैं । इस प्रकार जैनियोंके कहनेपर ब्राह्मण एकदम चिढ आते हैं । चिढकर " हस्तिना ताड्यमानोपि न गच्छेज्जैनमंदिरम् " वाली भाषा बोलने व प्रचार करने लगते हैं ।

इस प्रकार ब्राह्मणोंकी जैन व जैनोंकी ब्राह्मण निंदा करते हुए एकमेकके प्रति कष्ट पहुंचानेके लिए तत्पर होते हैं । इस प्रकार लोकमें अनेक प्रकारसे अशांति होती है । आखेरको जिन धर्मका ह्रास होता है, परंतु इन ब्राह्मणोंके धर्मका नाश नहीं होता है ।

भरतेश्वरको आगे होनेवाले इस दुरुपयोगको सुनकर थोडासा दुःख जरूर हुआ । वे कहने लगे कि स्वामिन् ! इनकी सृष्टि तो आपसे ही हुई है । फिर इतना भी वे नहीं सोचेंगे ? उत्तरमें भगवान्ने कहा कि भरत ! आगे सबको इतना विवेक कहांसे आता है । अब तो दिन पर दिन बुद्धि, बल, विवेक, विचार शक्तिमें ह्रास ही होता जाता है, वृद्धि नहीं हो सकती है ।

भरतेश्वरने पुनः कहा कि स्वामिन् ! नाटक शाला, दसरा–उत्सव मंडप आदियोंके उद्घाटन करने पर मुझे लोग मनु कहें यह उचित है । केवल एक वर्णका नामाभिधान करनेसे मुझे ब्रह्मा क्यों कहते हैं यह समझ में नहीं आता । स्वामिन् ! आपके रहते हुए यदि मैं कोई नवीन वर्णकी सृष्टि करूं तो मुझ सरीखे उद्दंड और कौन हो सकते

हैं। फिर वे लोग ऐसा क्यों सोचते हैं, समझमें नहीं आता। तब भगवंतने कहा कि वे न्यायकी सीमाको नहीं जानते हैं।

पुनः सम्राट्‌ने कहा कि स्वामिन्! यदि द्विजोंकी उत्पत्ति अंतमें हुई तो आप हम जिस वंशमें उत्पन्न है, उस क्षत्रिय वंशमें उत्पन्न लोगोंको षोडश संस्कारोंका विधान किसने कराया? इतना भी वे नहीं विचार करते हैं? हाय! बडे मूर्ख हैं! जातकर्म, नामकर्म, यज्ञोपवीत संस्कार आदि यदि इन ब्राह्मणोंनें नहीं कराया हो तो वे जातिक्षत्रिय व वैश्य कैसे बन गये? इसका भी वे विचार नहीं करते हैं? उसी समय स्वयं एक एक के घरमें पहुंचकर इन संस्कारोंको होम विधान पूर्वक कराते थे। जब यह गुण पहिलेसे उनमें विद्यमान है तो फिर मैं क्यों उनका निर्माण करूं? वे तो पहिले से मौजूद थे। केवल मेरे नामाभिधान करनेसे लोकमें यह अनर्थ! आश्चर्य है।

अपनी अंगुलीको दर्भवेष्टन कर, होम करनेके बाद दक्षिणा लेनेवाले ये ब्राम्हण क्या तलवार लेकर क्षत्रिय हो सकते हैं? व्यापार करके वैश्य हो सकते हैं? उनके गुणका अभाव नहीं होसकता है। क्षत्रिय वैश्य तो दाता है, पात्र नहीं है। परंतु ये ब्राह्मण तो दाता भी हैं, पात्र भी हैं। इतना भी विचार उन लोगो में नहीं रहता है? आश्चर्य है।

भगवन्! विशेष क्या? मुझे व मेरे छोटे भाईयोंका पवित्र यज्ञोपवीत संस्कारको किसने कराया? ब्राह्मणोने हैं न? फिर ये अपनेको अत्यंज (आखेरको उत्पन्न) क्यों समझते हैं?। बडे दुःखकी बात है।

भगवन्! रहने दीजिये, उनका जो भवितव्य है होगा, अब कृपया रात्रिके अंतिम प्रहरमें देखे गये मेरे सोलह स्वप्नोंका फल बतला दीजिये। इस प्रकार हाथ जोडकर सम्राट्‌ने प्रार्थना की। तब आदि प्रभुने उन स्वप्नोंका फल बतलाया।

पहिला स्वप्न—एक एक शेरके साथ अनेक शेर मिलकर जा रहे हैं। और पंक्तिबद्ध होकर उसके पीछेसे इसी प्रकार तेईस शेर जा

रहे हैं। यह जो तुमने सबसे पहिला स्वप्न देखा है उसका फल यह है कि हमें आदि लेकर तेईस तीर्थंकर होंगे। तबतक धर्मका उद्योत यथेष्ट रूपसे होगा। मिथ्यामतोंका उदय प्राणियोंके हृदयमें होनेपर भी उसकी वृद्धि नहीं हो सकती है। जिनधर्मका ही धावल्य होगा। लोगोंमें मतभेदका उद्रेक नहीं होगा।

दूसरा स्वप्न—दूसरे स्वप्नमें भगवन्! मैने देखा कि अंतमें एक शेर जारहा था, उसके साथ बाकीके मृग मिलकर नहीं जाते थे, उससे रुसकर दूर भाग रहे थे भगवंतने फरमाया है कि इसके फलसे अंतिम तीर्थंकर महावीरके समयमें मिथ्यामतोंका तीव्र प्रचार होने लगता है। मतभेदकी वृद्धि होती है।

तीसरा स्वप्न—स्वामिन्! एक बडे भारी तालाबको देखा जिसमें बीचमें पानी बिलकुल नहीं है। सूख गया है। परंतु कोने कोनेमें पानी मौजूद है।

भव्य! कलिकालमें जैन धर्मका उज्वल रूप मध्य प्रदेशमें नहीं रहेगा। किनारेमें जाकर रहेगा। इसकी यह सूचना है। इस प्रकार। भगवंतने कहा।

चौथा स्वप्न—स्वामिन्! हाथीपर बंदर चढकर जा रहा था इस प्रकारके कष्ट तर वृत्तिसे युक्त व्यवहारको देखा। इसका क्या फल?

भव्य! आदरणीय क्षत्रिय लोग कुलभ्रष्ट होकर अंतमें राज्यशासनका कार्य नीचोंके हाथ जाता है। क्षत्रिय लोग अपने अधिकारके मदमें इतना मस्त होते हैं कि उनको कोई विवेक नहीं रहता है। आखरको वे कर्तव्यच्युत होते हैं। दुष्टनिग्रह व शिष्ट परिपालनका पावन कार्य उनसे नहीं हो पाता है।

पांचवा स्वप्न—स्वामिन्! गाय कोमल घासोंको छोडकर सूखे पत्तोंको खा रही थी। यह क्या बात है?

भव्य ! स्त्री पुरुष कलिकालमें जातीय शिष्टवृत्तिको छोडकर विपरीत-वृत्तिको चाहने लगते हैं। लोगोंमें स्वच्छंदवृत्ति बढती है, जातीय मर्यादामें रहना वे पसंद नहीं करते। उनको उल्टी ही उल्टी बातें सूझने लगती हैं।

छटा स्वप्न—स्वामिन् ! पत्तोंसे विरहित वृक्षोंको मैंने देखा। इसका क्या फल होना चाहिये ?

कलिकालमें लोग लोकलज्जाका भी परित्याग करेंगे। उनको अपने शरीरकी शोभाकी भी चिंता न रहेगी। अपने आपको भी वे भूल जायेंगे। चारों तरफ यही हालत देखनेमें आयगी।

सातवां स्वप्न—स्वामिन् ! इस पृथ्वीपर जहां देखता हूं वहां सूखे पत्ते ही पडे हुए हैं। इसका क्या फल है।

भव्य ! आगेके लोगोंको उपभोग, परिभोगके लिए रसहीन पदार्थ ही मिलेंगे। भोगोपभोगके लिए भी सरस पदार्थोंको पानेकी उनको नसीहत नहीं है। प्रकृतिमें भी उसी प्रकारका परिवर्तन होता है।

आठवां स्वप्न—एक पागल अनेक वस्त्राभरणोंसे सज धजकर आ रहा था, भगवन् ! इसका क्या फल है ?

भव्य ! इसके फलसे लोग कलिकालमें सुंदर सुंदर नामोंको छोड-कर इधर उधरके फालतू नामोंको पसंद करेंगे। अर्थात् कलिकालमें लोग आदिनाथ, चंद्रप्रभ, भरत, नेमिनाथ, जीवंधर, शांतिनाथ आदि त्रिषष्ठिशलाका पुरुषोंके नामको पसंद न कर अपने बच्चोंको प्यारसे कोई मंकीचंद, डांकीचंद, धोंडीबा, दगडोबा, टामी, इत्यादि गंभीरहीन नामोंको रक्खेंगे। लोगोंकी प्रवृत्ति ही इसी प्रकार होगी।

नौवां स्वप्न—सोनेकी थालीमें एक कुत्ता खा रहा है। आश्चर्य है। इसका क्या फल होना चाहिए ? भरतेश्वरने विनयसे पूछा।

कलिकालमें डांभिक, ढोंगी लोगोंकी ही अधिकतर प्रतिष्ठा होती है। सज्जन लोगोंका आदर जैसा चाहिए वैसा नहीं हो पाता है।

लोग भी ढोंगको अधिक पसंद करते हैं। सत्यवक्ता, स्पष्ट-वक्ता की निंदा करनेका प्रयत्न करेंगे।

दसवां स्वप्न—स्वामिन्! उल्लू कौआ वगैरे मिलकर एक शुभ्र हंसपक्षीको तंग कर रहे थे। उसे अनेक प्रकारसे कष्ट दे रहे थे। इसका क्या फल होगा?

भव्य! आगे कलियुगमें राग रोषादिक कषायोंसे युक्त जन हंस-योगी वीतराग तपस्वीको निंदा करते हैं। उनके मार्गमें अनेक प्रकारके कष्ट उपस्थित करते हैं। तरह तरहसे उनकी अवहेलना करते हैं।

ग्यारवां स्वप्न—स्वामिन्! हाथीकी अंबारीको घोडा लेकर जा रहा था, यह क्या बात है?।

भव्य! कलिकालके अंतमें श्रेष्ठ जनोंके द्वारा धारण करने योग्य जैनधर्मको अधर्म ही धारण करेंगे।

बारहवां स्वप्न—एक छोटासा बैल अपनी झुंडको छोडकर घूमते हुए भाग रहा था। इसका क्या फल होना चाहिये।

भव्य! कलिकालमें छोटी ऊमरमें ही दीक्षित होते हैं। अधिक वयमें दीक्षित बहुत कम मिलेंगे और संघमें रहनेकी भावना कम होगी।

तेरहवां स्वप्न—दो बैल एक साथ किसी जंगलमें चरते हुए देखा, इसका क्या फल है।

कलिकालमें तपस्वीजन एक दो संख्यामें गिरिगुफावो में देखनेमें आयेंगे। अर्थात् इनकी संख्या अधिक नहीं रहेगी।

चौदहवां स्वप्न—स्वामिन्! अत्यंत उज्वल प्रकाशसे युक्त रत्नराशीपर धूल जमकर वह मलिन होगई है। इसका क्या फल है?

भव्य! कलिकालमें तपस्वियोंको रस, बल, बुद्धि आदिक ऋद्धियोंका उदय नहीं होगा।

पंद्रहवां स्वप्न—धवल प्रकाशके चंद्रमाको परिवेषने घेर लिया था, इसे मैने देखा। इसका क्या फल होना चाहिये।

भव्य ! उस समय मुनियोंको अवधिज्ञान व मनःपर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होगी।

सोलहवां स्वप्न—प्रभो ! अंतिम स्वप्नमें मैंने देखा कि सूर्यको एकदम बादलने व्याप लिया था। वह एकदम उस बादलमें छिप गया था। इसका क्या फल है ? कृपा कर कहियेगा।

भव्य ! कलिकालमें यहांपर किसीको भी केवलज्ञानकी प्राप्ति नहीं होगी। कैवल्य भी न होगा। साथमें भगवंतने यह भी फरमाया कि वह कलि नामक पंचम काल २१ हजार वर्षका रहेगा। उसके समाप्त होनेके बाद पुनः २१ हजार वर्षका दुसरा काल आयगा। उसमें तो धर्म कर्मका नाम भी सुननेको नहीं मिलेगा। तदनंतर प्रलय होगा। प्रलयके बाद पुनः धर्मकर्मकी उत्पत्ति वृद्धि होगी। पुनः वृद्धि, हानि इस प्रकारकी परंपरामें यह संसारचक्र चलता ही रहेगा।

स्वप्नोंके फलको सुनकर भरतजी कहने लगे कि प्रभो ! ये दुःस्वप्न तो जरूर हैं। परंतु मेरे लिए नहीं। आगेके लोगोंके लिए। इन स्वप्नोंके देखनेसे मुझे आपके चरणोंका दर्शन मिला, इसलिए मेरे लिए तो वे सुस्वप्न ही हैं। इसलिए हे अस्वप्नपतिवंद्य भगवन् ! आपकी जयजयकार हो !

प्रभो ! आपके चरणोंमें एक निवेदन और है। मैं इस कैलास पर्वतपर जिनमंदिरोंका निर्माण कराना चाहता हूं। उसके लिए आज्ञा मिलनी चाहिए।

तदनंतर भरतेश्वर भगवंतकी स्तुतिकर ब्राह्मणोंके साथ भगवंतके चरणोंमें नमस्कार कर वहांसे निकले, साथमें वहां उपस्थित तपस्वियोंकी भी वंदना की। समवसरणसे हर्षपूर्वक कैलास पर्वतपर आये। और जिनमंदिर निर्माणके लिए योग्य स्थान देखकर वहांपर जिनमंदिर निर्माणके लिए भद्रमुखको कहा गया। इधर उधर नहीं, सुंदर, पंक्तिबद्ध

होकर ७२ जिनमंदिरोंका निर्माण करो ! फिर मैं प्रतिष्ठाकार्यको स्वयं संपन्न करूंगा, यह कहकर भद्रमुखकी नियुक्ति उस काममें की।

उसी समय तेजोराशिनामक अध्यात्मयोगी उस मार्गसे आ रहे थे वे आहारके लिए भूप्रदेशमें गये थे। आते हुए कैलासपर्वतपर सम्राटका और उनका मिलाप हुआ। तेजोराशिमुनि सामान्य नहीं हैं। नामके समान ही प्रतिभासंपन्न हैं। भगवंतके गणधर हैं। मनःपर्यय ज्ञानधारी हैं। अणिमादि सिद्धियोंके द्वारा युक्त हैं।

विप्रसमूहके साथ सम्राट्ने उन महात्मा योगीके चरणोंमें नमोस्तु किया। उस कारणयोगीने भी आशिर्वाद किया।

योगीने कहा कि राजन् ! तुम यहांपर नूतन जिनमंदिरोंका निर्माण करा रहे हो यह सुंदर बात है। तुम्हारे लिए एक और परहितका कार्य कहूंगा। उसे भी तुम करो।

गुरुवार ! आज्ञा दीजिये, जरूर करूंगा। इस प्रकार विनयसे भरतेश्वरने कहा।

भरत ! तुम्हारी राणियोंको भगवंतके दर्शनकी बडी ही उत्कट इच्छा है। परंतु लोगोंकी भीड अगणित रूपसे होनेसे उनको अनुकूलता ही नहीं मिलती है। इसलिए उन लोगोंने भगवंतके दर्शन होनेतक एक एक व्रतको मनमें लेरक्खा है। जब कभी भी हो अरहंतके दर्शन होनेके बाद हम अमुक रसका ग्रहण करेंगी। तबतक नहीं लेंगी, यदि दर्शन नहीं हुआ तो आजन्म इन रसोंका त्याग रहेगा। इस प्रकार उन राणियोंने एक २ रसका त्याग कर रक्खा है। भरत ! यह तुमको भी मालुम नहीं, दूसरोंको भी मालुम नहीं है, केवल वे स्वानुवेद्यसे गूढ व्रतको धारण कर रही हैं। आजतक उन व्रतोंका पालन करती हुई आई हैं। अब उन व्रतोंकी सिद्धी होनी चाहिये। सुनो ! इन मंदिरोंकी प्रतिष्ठा तुम करावोगे ! निर्वाण कल्याणके रोज समवसरणमें स्थित सर्व सज्जन अन्य भूमिपर जायेंगे केवल कुछ वृद्ध संयमी भगवंतके पास

रहेंगे। उस समय लाकर तुम्हारी राणियोंको भगवंत का दर्शन करावो। यह अच्छा मौका है। समझे ? इतना कहकर वे योगिराज आगे चले गये।

भरतेश्वरको अपनी राणियोंकी मनकी बातको समझकर एवं उनके उच्च विचारको समझकर मनमे बडी प्रसन्नता हुई और निश्चय किया कि इस प्रतिष्ठाके समय मेरी बहिनोंके साथ सभी राणियोंको भगवंतका दर्शन करावूंगा। उसी समय भरतेश्वरने अपनी पुत्रियोंको तथा बहिनोंको पत्र लिख कर सब समाचार दिया। और बहुत आनंदके साथ ब्राह्मणोंके हाथ भेज दिया।

भरतेश्वरकी वृत्तिको देखकर वे विप्रजन भी बहुत प्रसन्न हुए। और उसी आनंदके भरमें प्रशंसा करने लगे कि स्वामिन् ! आप आपकी बहिनों, आपकी पुत्रियों, पुत्रों व राणियोंके जीवनको पवित्र करनेके लिए ही उत्पन्न हुए हैं। इतना ही क्यों, लोकमें समस्त जीवोंके उद्धारके लिए ही आपका जन्म हुआ है। आपको भोगोमें आसक्ति नहीं है। धर्मयोगमें आसक्ति है। इसलिए आपको संसारी कैसे कह सकते हैं ? आपको गृहतपो भागी कहना उचित होगा। अर्थात् आप घर पर रहनेपर भी तपस्वी हैं। परमात्मन् ! हे जिन सिद्ध ! भरतराजेंद्र लोकमें क्या गृहस्थ है ! ! नहीं नहीं ! वह मोक्षमार्गस्थ हैं। इस प्रकार सुंदर दाढी, कुंडल व मस्तकको हिलाते हुए उन विप्रोने भरतेश्वरकी प्रशंसा की।

बहुत आनंदके साथ बातचीत करते हुए वे सब मिलकर अयोध्या नगरमें आये। नगर प्रवेश करनेके बाद उन विप्रोंको अपने २ स्थानमें भेजकर भरतेश्वर महलकी ओर गये व वहां सुखसे रहने लगे। इतने में चक्रवर्तिने जो दुःस्वप्नोंको देखा वह समाचार सर्वत्र व्याप्त हो गया। समस्त देशके राजा सम्राट्से मिलनेके लिए आने लगे।

आश्चर्य है। एक गरीब अगर प्राणांतिक बीमारीसे भी पडे तो भी लोग उसकी कुछ भी परवाह नहीं कर उपेक्षा करते हैं। परंतु श्रीमंतने यदि एक स्वप्नको भी देखा तो लोक आकर उपचार करता

हैं। यह लोककी रीत है। इसलिए कहनेकी परिपाटी है कि गरीबकी बीमारी घरभर, और श्रीमंतकी बीमारी गांवभर (लोकभर)। सो भरतेश्वरको स्वप्न पडते ही बडे २ राजा महाराजा उनसे मिलने आये हैं।

मागध, वरतनु, हिमवंत देव आदि लेकर प्रमुख व्यंतर आये। एवं खेचर राजा भी आये। और रोज कोई न कोई देशके राजा आ रहे हैं। और भरतजीके चरणोंमें अनेक वस्त्र रत्नादिक भेट रखकर उनका कुशल वृत्त पूछा जाता है। इस प्रकार वहांपर प्रतिदिन एक उत्सव ही चालू है। प्रत्येक देशके राजा आता है और भेंट समर्पण करता है व भरतेश्वरके प्रति शुभकामना प्रकट करता है। कोई कहते हैं कि हम लोग जो ब्राह्मणोंको दान देते हैं, बहुत वैभवसे जिनपूजा करते है, योगियोंकी भक्तिसे उपासना करते हैं, इन सबका फल सम्राट्को रहे अनेक राजा गण स्वप्न दोषके परिहारार्थ कहीं शांतिक, आराधना, होम हवनादिक करा रहे हैं। इस प्रकार अनेक तरहसे राजा सम्राट्के प्रति उपचार कर रहे हैं। परंतु सम्राट हां, ना, कुछ भी न कहकर सबके व्यवहारको उदासीन भावसे देखते जा रहे हैं। कारण वे इसे भी एक स्वप्न ही समझ रहे हैं।

भरतेश्वर सोचते हैं कि मैं बिलकुल कुशल हूं। आत्माको कोई अस्वस्थता ही नहीं है। आत्मयोग ही उसके लिए हर तरहसे संरक्षण करनेवाला मंत्र है। केवल ये राजा विनय करते हैं, उसका इन्कार नहीं करना चाहिए। इस भावसे मैं साक्षिरूपमें उसे स्वीकार करता हूं। सबके द्वारा किये गये आदरको ग्रहणकर उनको उससे भी दुगुना सत्कार कर भरतेश्वरने आदरके साथ भेजा। सब लोग अपने २ स्थानोंमें गये।

एक दिनकी बात है। बुद्धिसागर मंत्री अपने सहोदर भाईको लेकर भरतेश्वरके पास आये। और उन्होने एक माहुलुंगके फलको भेंटमें रखकर नमस्कार किया व सम्राट्से कहा कि प्रभो! आपसे एक प्रार्थना है।

स्वामिन् ! देवलोक, नागलोक व नरलोकमें आप सरीखे कोई राजा नहीं है। यह सब दुनियाको मालुम है। और केवल दो घटिकाके तपमें कर्मोंको आप जलायेंगे यह भी भगवंतनें कहा था, लोग इसे जानते हैं।

आप राजावोंमें राजा हैं, योगियोंमें योगी हैं, स्त्रियोंके लिए डबल कामदेव है, सूईके नोक जितना भी दोष आपमें नहीं है। इसलिए आप प्रौढ राजा हैं।

मै प्रशंसा कर रहा हूं, मुझे स्तुतिपाठक न समझें। परंतु आपको देखकर प्रसन्न न होनेवाले लोकमें कौन हैं? विशेष क्या कहूं! स्वामिन्! आपने ही तीन लोकके मस्तकको अपने गुणोंसे आकृष्ट कर डुलाया। सुचित्रेकी राजाकी दरबार पहिले जन्ममें जिन्होने बहुत पुण्यका संपादन किया है उन्हीको प्राप्त हो सकती है। यह बात बिलकुल सत्य है। किंबहुना, आपकी सेवासे मैने प्रत्यक्ष स्वर्गसुखका ही अनुभव किया। आपको स्मरण करने मात्रसे, देखने मात्रसे सबको ज्ञानका उदय होता है। फिर आपको मंत्रीकी क्या आवश्यकता है, केवल उपचारके लिए मुझे मुख्य मंत्री बनाकर आजतक चलाया। स्वामिन्! आजतक एक परमाणुमात्र भी मेरी इज्जत शानको कम न कर लोकमें वाह वाहवा हो उस रूपसे मुझे चलाया। मैं तृप्त हो गया हूं! नाथ! आज एक विचारको लेकर आया हूं उसे सुननेकी कृपा करें।

नाथ! मै चिरकालसे इस संसारचक्रमें परिभ्रमण कर रहा हूं, अब मेरी उमर काफी हो चुकी है, मर्यादातीत बुढापा आगई है। अब मेरा देह बहुत समयतक नहीं रह सकता है। कैसा भी यह देह नाशशील है। इसलिए अंतिम समयमें उसका उपयोग तपमें कर बादमें मुक्तिसाधन करूंगा। इसलिए मुझे आज्ञा दीजिये।

यह कहकर बुद्धिसागर भरतेश्वरके चरणोंमे साष्टांग लेटे। भरतेश्वर का हृदय धग धग करने लगा। उनको मंत्रीका वियोग असह्य हुआ। उन्होंनें मंत्रीसे कहा कि बुद्धिसागर! उठो, मैं क्या कहता हूं सुनो।

तब बुद्धिसागरने कहा कि आप दीक्षाके लिए जानेकी अनुमती प्रदान करें तो मैं उठता हूं। तब भरतेश्वर कहा कि लेटे हुए मनुष्य को जानेके लिए कैसे कहा जा सकता है। उठे विना वह जा कैसे सकता है ? तब बुद्धिसागर उठ खडे हुए।

भरतेश्वरने कहा मंत्री ! अंतिम समयमें तपश्चर्या करना यह उचित ही है। परंतु कुछ समय के बाद जावो। अभी नहीं जाना।

तब बुद्धिसागरने कहा कि स्वामिन् ! बोल, चाल व इंद्रियोंमें शक्ति रहने तक ही मैं कर्मोंको नाश करना चाहता हूं। इसलिए अभी जानेकी अनुमति मिलनी चाहिए।

भरतेश्वरने पुनः कहा कि मंत्री ! विशेष नहीं तो कैलासमें निर्मित जिनमंदिरोंकी प्रतिष्ठा होनेतक तुम ठहरो। पूजा समारंभको देखनेके बाद दीक्षित हो जावो। मैं फिर तुमको नहीं रोकूंगा।

बुद्धिसागर मंत्रीने कहा कि स्वामिन् ! व्यर्थ ही मेरी आशा क्यों करते हैं, क्षमा कीजिये। मुझे जाना है, भेज दीजिये। यह कहकर भरतेश्वरके चरणोंमे पुनः अपना मस्तक रक्खा। भरतेश्वर समझ गये। कि अब यह गये विना न रहेगा।

मंत्री ! तुम्हारे तंत्रको मैं समझ गया। अब उठो। आज पर्यंत तुम मुझे नमस्कार करते थे। अब तुम्हारे चरणोंमे मुझसे नमस्कार कराना चाहते हो। मैं समझ गया। अच्छा तुम्हारी जैसी मर्जी है वैसा ही होने दो इस प्रकार कहकर भरतेश्वरने उसे उठाकर दुःखके साथ आलिंगन दिया व उसे जानेकी अनुमति दी। तब बुद्धिसागरने अपने पट्ट-मुद्रिकाको हाथसे निकालकर सम्राट्को सोंपते हुए कहा कि मेरे सहोदरको दयार्द्र दृष्टिसे संरक्षण कीजिये। मुद्रिकाको जब उन्होंने निकाल दिया उस समय ऐसा मालुम हो रहा था कि शायद बुद्धिसागर रागांकुरको ही निकालकर दे रहा हो।

सम्राट्की आंखोंसे आंसू उमडने लगा। बुद्धिसागर मंत्रीके मित्र सहोदर वगैरे चिंतामग्न होगये। परंतु बुद्धिसागरके हृदयमें यथार्थ वैराग्य होनेसे उन्होंने किसीकी तरफ नहीं देखा। फिर एक वार हाथ जोडकर उस सभासे बुद्धिसागर चुपचापके दीक्षाकें लिए निकल गया।

भरतेश्वर अपने मनको धीरज बांधकर बुद्धिसागरके भाईको समझाने लगे कि विप्रवर! तुम दुःख मत करो। तुम्हारे भाईको अब बुढापेमें आत्मसिद्धि कर लेने दो। व्यर्थ चिंता करनेसे क्या प्रयोजन है? जब तुम्हारे भाई योगके लिए चला गया तो अब हमारे लिए बुद्धिसागर तुम ही हो। यह कहकर अनुरागके साथ सम्राट्ने उस पट्टमुद्रिकाको उसे धारण कराया। साथमें अनेक प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे उसका सत्कार किया। एवं कहा गया कि अब समस्त पृथ्वीका भार तुमपर ही है। इत्यादि कहकर बहुत संतोषके साथ उसे वहांसे भेजा।

अनेक प्रकारके मंगल द्रव्य, हाथी, घोडा, ध्वजपताका व मंगल वाद्योंके साथ मित्रगण नवीन मंत्रीको जिनमंदिरमें ले गये। वहांपर दर्शन पूजन होनेके बाद पुनः सम्राट्के पास आकर उनके चरणोंमें भक्तिसे अनेक भेंट रखकर नमस्कार किया। इसी प्रकार युवराजके चरणोंमें भी भेट रखकर नमस्कार किया। सर्व सभासदोंने जयजयकार किया। बुद्धिसागर मंत्री तदनंतर महाजनोंके साथ मिलकर अपने घरकी ओर चला गया।

सब लोगोंके जानेके बाद सम्राट् अपनी महलमें सुखसे अपना समय व्यतीत कर रहें हैं।

पाठक! भरतेश्वरके जीवनके वैचित्र्यको देखते होंगे! कभी चिंता व कभी आनंद, इस प्रकार विविध प्रसंग उनके जीवनमें देखनेमें आते हैं। उन्होने ब्राह्मणोंका निर्माण किया तो उससे भविष्यमें होनेवाली दुर्दशाको सुनकर वे कुछ खिन्न हुये थे। तदनंतर सोलह स्वप्नोंके फलको

सुनकर थोडा दुःख हुआ। परंतु उसमें भी उन्होने अपने हृदयको शांत कर लिया। भगवंतके दर्शन मिलनेके बाद दुःस्वप्न भी सुस्वप्न हो जाते हैं। भरतेश्वरको दुःस्वप्न दर्शन हुआ, सो लोकके समस्त-राजा अनेक शांतिक आराधना, होम हवनादिक करते हैं। भरतेश्वर उनको भी उदासीन भावसे ही देखते हैं। उनकी धारणा है कि यह दुनिया ही स्वप्नमय है। मैने सोते हुए सोलह स्वप्न देखें, परंतु जागता हुआ मनुष्य रोज मर्रा हजारो स्वप्नोंको देखता है, उन सबको सत्य समझता है, इसलिए संसारमें परिभ्रमण करता है। यदि उनको स्वप्न ही समझें तो दीर्घसंसारी कभी नहीं बन सकता है।

इसलिए भरतेश्वर सदा इस प्रकारकी भावना करते हैं कि:—

हे परमात्मन्! प्रतिनित्य समय समयपर प्राप्त होनेवाले सुख दुःख, मित्र शत्रु, धन व दारिद्य यह सब स्वप्न ही हैं, इस भावनाको जागृत कर मेरे हृदयमें सदा बने रहो। हे चिदंबर-पुरुष! तुम इसी भावनासे सुखासीन हुए हो।

हे सिद्धात्मन्! आप स्वच्छ चांदनीकी मूर्तिके समान उज्वल हो। सच्चिदानंद हो! भव्योंके आराध्य देव हो। इस-लिए मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इसी भावनाका फल है कि भरतेश्वरको ऐसे समयमें कोई भी दुःख या सुखसे जन्य क्षोभ उत्पन्न नहीं होता है।

इति षोडश-स्वप्न-संधिः



जिननास-निर्मित-संधिः ।

कैलास पर्वतपर सम्राट्की आज्ञानुसार ७२ जिनमंदिरोंका निर्माण हुआ। भद्रमुखने अपने कार्यकी पूर्तिकर सम्राट्की सेवामें प्रार्थना की कि स्वामिन् ! आपकी इच्छानुसार तमाम काम हो चुका है। भरतजी को भी बडी प्रसन्नता हुई। मंगलकार्य सुखरूपसे पूर्ण हुआ, यह सुनकर किसे हर्ष नहीं होगा ? ।

भरतेश्वरने भद्रमुखको हर्षपूर्वक बुलाकर उसे अनेक प्रकारके रत्न वस्त्राभूषणोंसे सत्कार किया। उपस्थित राजा भी प्रसन्न हुए। इसी प्रकार युवराजने भी अनेक उत्तम पदार्थ उसे उपहारमें दिये। इसी प्रकार युवराजके सभी सहोदर व उपस्थित सभी राजावोंने उस सुरशिल्पीका सत्कार किया। अर्हतके मंदिरकी पूर्तिके समाचारको सुनकर जो दान नहीं देता है वह जिनभक्त जैन कैसे हो सकता है ?। जिनके हृदयमें ऐसे अवसरोंमें हर्ष नहीं होता है वह जैन कैसे कहला सकता है ? उस सुरशिल्पिको पहिले ही संपत्तिकी कोई कमी नहीं है, फिर भी इन्होंने अपनी जिनभक्तिके द्योतनसे जो उपचार किया उससे भी वह प्रसन्न होकर चला गया।

अब भरतेश्वर पंचकल्याणिक पूजाकी तैयारीमें लग गये। योग्य मुहूर्तको देखकर पूजा प्रारंभ करानेका निश्चय किया गया। और अपने मंत्री मित्रोंके साथ युवराजको भेजा और यह कहा कि आप लोग जाकर सर्व विधि विधानको प्रारंभ करावें। मैं मुखवस्त्रको जिस दिन उद्घाटन कराना हो, उस दिन आता हूं।

इस प्रकार पूजा प्रारंभ होनेके बाद भरतेश्वर महलमें इस बातकी प्रतीक्षामें थे कि कन्यायें व बहिनें अभी तक क्यों नहीं आ रही हैं ! इतनेमें बहुत वैभवके साथ भरतेश्वरकी पुत्रियां अपने २ पतिके साथ वहांपर आकर दाखल हुई।

कनकावली, रत्नावली, मुक्तावली, मनुदेवी, आदि सभी कन्यायें आई व पिताके चरणोंमें नतमस्तक हुई। माताओंके साथ युक्त होकर जब वे पुत्रियां भरतेश्वरके चरणोंमें नमस्कार करने लगी, तब उन्होने अनेक रूपोंको धारण पुत्रियोंको आलिंगन दिया। अपनी गोदपर बैठाकर उनके कुशल वृत्तको पूछ रहे थे व कह रहे थे कि बेटी ! तुम लोग आगई सो बहुत अच्छा हुआ। इतनेमें उन पुत्रियोंकी दासियां आकर उनके पतिगृहके गंभीरपूर्ण व्यवहारका वर्णन करने लगी। इसे सुनकर भरतेश्वरको और भी हर्ष हुआ। उन्होंनें अपनी पत्नियोंको बुलाकर कहा कि सुनो ! देवियो ! सुनो, अपनी बेटियोंके सन्मार्गपूर्ण व्यवहारको सुनो ! तब उन राणियोने कहा कि आप ही सुनकर प्रसन्न हो जाईयेगा। हम लोग क्या सुनें ?

बेटी ! तुम पहुत थक गई हो ! जावो विश्रांति लो। इस प्रकार कहकर उन पुत्रियोंको राणियोंके साथ महलके अंदर भेजा।

इतनेमें भाईके दीर्घराज्यको देखकर संतुष्ट होती हुई दो बहिनें महांपर आई। उन्होने हर्ष पूर्वक आकर भाईको तिलक लगाया। भरतेश्वरने भी सहोदरियोंको देखकर हर्ष व्यक्त करते हुए आओ ! सिंधुदेवी ! गंगादेवी ! आवो ! बैठो ! इस प्रकार कहकर योग्य मंगलासन दिलाया। दोनों बहिनें बैठ गईं।

बहिन् ! तुम लोगोंका देश बहुत दूर है ! तुम लोग आई, यह बहुत अच्छा हुआ। उत्तरमें उन दोनों देवियोने कहा कि भाई ! कहांका दूर है, तुम्हारा दर्शन मिला, यह सार है, दूर कहांका आया ?।

इतनेमें राणियोंको दोनों देवियोंके आनेका समाचार मालुम हुआ। उन्होंने अंदरसे बुला भेजा। भरतजीने अंदर जानेके लिए दोनों बहिनोंको कहा। दोनों देवियां महलमें गईं। पट्टरानीको आगे कर सभी राणियां उनके स्वागतके लिए आईं। सामने उनको देखनेपर विनोदसे कुछ कहने लगी।

वे राणियां कहने लगी कि किस देशकी स्त्रियां हमारी महलमें घुसकर क्यों आ रही हैं ? तब उत्तरमें उन दोनों देवियां कहने लगी कि जिस महलमें हमारा जन्म हुआ है उसमें घुसकर रहनेवाली ये स्त्रियां कौन हैं ? कहो तो सही ! पट्टराणी और उन दोनों देवियोंने परस्पर प्रेमसे आलिंगन देकर वहां बैठ गईं। बाकीको स्त्रियोंके साथ इसी खुशीसे बातचीत करती हुई वहां कुशलप्रश्नादिक कर रही हैं। उनको आज एक नवीन त्यौहार ही है।

जब स्त्रियां इधर आनंद विनोदमें थीं इधर भरतेश्वरके पास कनकराज, कांतराज, शांतराज आदि जंवाई [जामातृ] आये; इसी प्रकार गंगादेव सिंधुदेव भी भरतजीके पास आये। उन सबने भरतेश्वरके चरणोंमें अनेक प्रकारके रत्न वस्त्रादिक भेटमें रखकर नमस्कार किया।

गंगादेव और सिंधुदेवको योग्य आसन दिलाकर जंवाईयोंको सतरंजीपर बैठनेके लिए कहा। सब लोग आनंदसे बैठ गये।

उनकी इच्छानुसार कुछ दिन भरतेश्वरने उनका सत्कार किया। तदनंतर उन सबको साथमें लेकर भरतेश्वर कैलास पर्वतकी ओर जानेके लिये निकले। जाते समय न मालुम कितना मोह ? उन्होंने पौदनपुरसे बाहुबलिके पुत्र व बहुवोंको भी बुलाया था। उनको लेकर वे बहुत आनंदके साथ कैलास पर्वतकी ओर चले गये। साथमें अपने सहोदरोंके पुत्र व उनकी बहु, वगैरे सर्व परिवारको लेकर गये। समस्त कुटुंब परिवारको लेकर अनेक करोड वाद्योंके शब्दके साथ मुख वस्त्र उद्घाटन करनेके शुभ दिवसपर वहां पहुंचे।

वहांपर सर्व विधानको पहिलेसे युवराजने कराया था। भरतेश्वरने जाकर मुखवस्त्रका उद्घाटन कराया। सर्व लोकोंने उस समय जय जयकार किया। क्रमसे ७२ जिन–मंदिरोंमें स्थित सुंदर अर्हत्प्रतिमावोंकी भरतेश्वरने भेंट रखकर अपने पुत्र मित्रोंके साथ वंदना की। इसी प्रकार राणियोंने, बहिनोंने, पुत्रियोंने उन माणिक्य व सुवर्णकी प्रतिमावोंकी मणिरत्नादिक भेंटकर वंदना की। नवरत्नोंसे निर्मित जिनमंदिर

हैं। सुवर्णसे निर्मित जिनप्रतिमायें हैं। इस प्रकार अत्यंत सुंदरतासे सिंहासनमें विराजमान अर्हत्प्रतिमायें शोभित हो रही हैं। वहांका वर्णन क्या करें ?

पूजाविधान होनेके बाद नित्यनैमित्तिक पूजनके लिये योग्य शासन लिखकर व्यवस्था की गई। भरतेश्वर तेजोराशि मुनिराजने जिस समयकी सूचना दी थी उसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

ऋषिवाक्यमें कोई अंतर हो सकता है ?। उस समय भगवंतके समवसरणसे देव, नर नारी, तपस्वीजन वगैरे सर्व समुदाय गंगा नदीके तीरकी ओर जाने लगा है। भगवंतके निर्वाण कल्याणको देखनेकी उत्कट भावनासे निमिषमात्रमें उस पर्वतसे सर्वजन अन्य भूमिपर चले गये।

अब भगवंतके पास कोई नहीं है। कुछ वृद्ध तपस्वीजन मात्र मौजूद हैं। बाकीके सभी चले गये हैं। इसी अवसरको योग्य समझकर भरतजी अपनी बहिनोंको, पुत्रियोंको व राणियोंको व इतर जंवाई आदि परिवारको लेकर समवसरणमें घुस गये। द्वारपाल अनुमति देकर कुछ दूर सरक गये। भरतेश्वर समझ गये कि यह स्त्रियोंके उग्र व्रतका प्रताप है।

नवविध परकोटा, मानस्तंभ, खातिका, वेदिका, विविध वन इनके संबंधमें पहिले उन स्त्रियोंने शास्त्रोंमें श्रवण किया था। अब आंखोंसे देखकर उनके हर्षका पारावार नहीं रहा। बहुत आनंदके साथ उन्हें देखती हुई बढ रही हैं।

समवसरणमें भरे हुए असंख्य जन गंगातटकी ओर चले गये थे। इसलिए समवसरण खाली हो गया था। अब भरतेश्वरके अगणित परिवारके साथ पहुंचनेसे वह समवसरण फिर भर गया। भरतेश्वरका परिवार क्या थोडा है ? उनके परिवारमें देवोंको तिरस्कार करनेवाले सुंदर पुरुष हैं। देवांगनावोंको भी नीचा दिखानेवाली स्त्रियां उनकी

राणियां व पुत्रियां हैं। इन सबसे जब वह समवसरण पुनश्च भर गया तो उसमें एक नवीन शोभा आई।

स्वर्गके देव देवांगनावोंके साथ मिलकर देवेंद्र समवसरणमें प्रवेश कर रहा हो उस प्रकार भरतेश्वर अपने सुंदर परिवारके साथ उस समवसरणमें प्रवेश कर रहे हैं।

दामाद, पुत्र, व गंगादेव, सिंधुदेव इनको बाहर ही खडाकर कह दिया कि आप लोग बादमें दर्शन करो। पहिले स्त्रियोंको दर्शन कराना चाहिये। इस विचारसे सब नारियोंको साथ लेकर सुविवेकी भरतेश्वर भगवंतके पास चले गये।

भगवंतके दर्शन होते ही हर्षसे सबने जयजयकार किया व उनके चरणोंमें उत्तम भेंटको अर्पण कर भरतेश्वरने साष्टांग नमोस्तु किया। दिव्यवाणीश! वृषभेश! परमात्मन्! आप सदा जयवंत रहें, इस प्रकार प्रार्थना की।

उसी समय उन देवियोंने भी भगवंतके चरणोंमें नमस्कार किया। उस समय भूमिपर पडी हुई वे देवियां नवीन लतावोंके समान मालुम होती थी। एकदम उठकर सब हाथ जोडकर भगवंतकी शोभा देखने लगी।

आनंदवाष्प उमड रहा है। शरीरमें सारा रोमांच होगया है। उनके हर्षातिरेकका क्या वर्णन करना, समझमें नहीं आता।

कमलको स्पर्श न कर चार अंगुल ऊपर निराधार खडे हुए भगवंतको ये स्त्रियां झुक झुक कर देख रही हैं। आश्चर्यके साथ देखती है। प्रदक्षिणा देकर स्त्रियां समझगई कि चारों तरफ एकसा मुख है भव्वव्व! यह क्या आश्चर्य है? क्या इसे ही चतुर्मुखब्रह्मा कहते हैं।

दीर्घकेशकी सुंदरता, सूर्यचंद्रमाके समूहको भी तिरस्कृत करनेवाली शरीरकांतिको देखकर वे स्त्रियां आनंद मना रही हैं। भगवंतके भद्र आकारको एक दफे देखती है तो पद्म आसन मुद्राको एक दफे देखती है, इस प्रकार भगवंतके प्रति सद्भक्तिसे देखकर वे स्त्रियां आनंद समुद्रमें ही डुबकी लगा रही हैं।

देवगण जिस समय वहांसे चले गये थे उस समय उन्होंने अपनी विद्या देवतावोंको प्रेरित किया था कि भगवंतके ऊपर चामर बराबर डुलते रहें। उन विद्या देवतावोंके विद्याबलसे ही वहांपर कोई न रहनेपर भी चामर तो डुल ही रहे थे। इसी प्रकार पुष्पवृष्टि हो रही थी। धवल छत्र विराज रहा था। भामंडलकी कांतिने सब दिशाको व्याप लिया था। इन सब बातोंको देखकर उन देवियोंको बडा ही हर्ष हो रहा है।

इन देवियोंने पहिले कभी समवसरणको नहीं देखा था, अर्हत्प्रतिमावोंका ही दर्शन उनको मिला था। अब यहांपर साक्षात् भगवंतका व समवसरणका दर्शन होनेसे उनको अपार आनंद हो रहा है। विशेष क्या ? नरलोकके एक मनुष्यको सुरलोकमें ले जाकर छोडे तो उसकी जैसी हालत होगी, उसी प्रकार इन स्त्रियोंकी हालत हो रही है।

भगवंतको उनके प्रति कोई ममकार नहीं है। परंतु वे मात्र मोही होनेसे कहते हैं। कि ये हमारे मामा हैं। हमारे दादा हैं हमारे पिता हैं, इत्यादि प्रकारसे अपना २ संबंध लगाकर विचार करते हैं, जिस प्रकार कि बच्चे चंद्रमाको देखकर अनेक प्रकारको कल्पनायें करते हैं।

गंगादेवी व सिंधुदेवीको भी आज परम संतोष हुआ है। वे मन मनमें सोचने लगी कि सम्राट्ने हमें अपनी बहिन् बनाई, आज वह सार्थक हुआ। आज पिताश्रीके चरणोंका दर्शन मिला। हम लोग धन्य हुईं।

भगवंतके पास २० हजार केवली थे। उन सबकी वंदना उन स्त्रियोने की। इसी बीचमें कच्छ केवली महाकच्छ केवलीका दर्शन विशेष भक्तिके साथ पट्टरानीने किया। इसे देखकर नमिराज विनमिराज की पुत्रियोने भी उन दोनों केवलियोंकी विशिष्ट भक्तिसे वंदना की। क्यों कि उनके वे दादा थे।

भुजबलि योगी व अनंतवीर्य योगीको भी बहुत देरतक वे स्त्रियां ढूंडने लगी थी। परंतु वे उस कैलास पर्वतपर नहीं थे, अन्य भूमिपर विहार कर रहे थे। इसी प्रकार रति अर्जिकाबाई, ब्राम्ही, इच्छा

महादेवी, सुंदरी अर्जिकाको भी देखनेकी इच्छा थी। परंतु ये तपस्विनी भी उक्त समवसरणमें नहीं थीं। अन्यत्र विहार कर गई थीं। बाकीके सर्व तपोनिधियोंकी वंदना कर भगवंतके पास आई व प्रार्थना करने लगी कि भगवन्! आपके चरणोंके दर्शनतक हम लोगोंका एक गूढव्रत था, उसकी पूर्ति आज हुई।

विस्तारके साथ पूजा करें तो कहीं देवसमूह न आ जाय इस भयसे समस्त स्त्रियोंसे संक्षेपसे ही भरतेश्वरने पूजा कराई।

तदनंतर भगवंतसे भरतेश्वरने प्रश्न किया कि स्वामिन्! हमारी स्त्रियोंमें कितनी अभव्य हैं? और कितनी भव्य हैं। कहियेगा। उत्तरमें भगवंतने फरमाया कि भव्य! तुम्हारी स्त्रियोंमें कोई भी अभव्य नहीं है, सभी देवियां भव्य ही हैं। वे क्रमशः अव्यय सिद्धिको प्राप्त करेंगी। चिद्द्रव्यका उन्हें परिचय है। यह जन्म उनका स्त्रीजन्म है। आगे उनको अब स्त्रीजन्म नहीं है। आगे पुरुषलिंगको पाकर वे सभी मुक्ति प्राप्त करेंगी। तुम्हारी पुत्रियां, बहुएं, पुत्र व जंवाई सभी तुम्हारे साथ संबंधित होनेसे पुण्यशाली हैं। भव्य हैं, अभव्य नहीं हैं।

भरतेश्वरको इसे सुनकर आनंद हुआ। स्त्रियोंको भी परम हर्ष हुआ। अब इस स्थानमें अधिक समय ठहरना उचित नहीं समझकर उन स्त्रियोंको रवाना किया। और बाहर खडे हुए गंगादेव, सिंधुदेव, दामाद, पुत्र वगैरेको बुलवाया। सबने भगवंतका दर्शन किया, स्तुति की, भक्ति की, और अपनेको कृतकृत्य माना।

भरतेश्वरने उनको कहा कि पुनः कभी आकर आनंदसे पूजा करो। आज सब स्त्रियोंको लेकर अयोध्यानगरकी ओर जावो। उन सबने भगवंतके चरणोंमें नमस्कार कर वहांसे आगे प्रस्थान किया। और सर्व स्त्रियोंके साथ विमानारूढ होकर अयोध्याकी ओर चले गये। भरतेश्वर अभी समवसरणमें ही हैं।

समवसरणसे गंगातटपर गया हुआ भव्य महागण वापिस आया। 'कल्याण महोत्सव बहुत अच्छा हुआ'। यह प्रत्येकके मुखसे शब्द निकल रहा है। भरतेश्वरने पूछा कि कौनसा कल्याण हुआ? उत्तरमें देवगणोंने कहा कि गंगाके तटपर तीन देहको दूरकर भगवान् अनंतवीर्य केवली मुक्ति-पधार गये। उनका निर्वाण कल्याण!

समवसरणमें दुःख पैदा नहीं हो सकता है, इसलिए भरतेश्वरने सहन किया। नहीं तो छोटे भाईका सदाके लिए अभाव हो गया, वह सिद्धशिलाकी ओर चला गया, यह यदि अन्य भूमिपर सुनते तो भरतेश्वर एकदम मूर्छित हो जाते। भरतेश्वरने पुनः धैर्यके साथ प्रश्न किया उनकी गंधकुटीमें स्थित यशस्वती माता कहां चली गई? तब योगियोंने उत्तर दिया कि वह बाहुबलि केवलीकी गंधकुटीमें चली गई।

भरतेश्वरने भगवंतसे प्रश्न किया कि प्रभो! अनंतवीर्य योगी इतना शीघ्र क्यों मुक्ति चले गये? भगवंतने उत्तर दिया कि भव्य! इस कालमें वही अल्पायुषी है, जाने दो।

भगवंतके चरणोंमें नमस्कार कर भरतेश्वर मंत्री मित्रोंके साथ समवसरणसे बाहर निकले। इतनेमें समनेसे पराक्रमी जयकुमार आया। व कहने लगा कि स्वामिन्! एक प्रार्थना है। भरतेश्वरने कहा कि कहो क्या बात है?

जयकुमारने कहा कि स्वामिन्! देवगणोंने मुझपर घोर उपसर्ग किया। मैंने प्रतिज्ञा की कि यदि यह उपसर्ग दूर हुआ तो मैं दीक्षा ले लूंगा। सो उपसर्ग दूर हुआ। अब दीक्षाके लिए अनुमति दीजिये। यह कहकर भरतेश्वरके चरणोंमें उसने मस्तक रक्खा। भरतेश्वरने कहा कि उठो, जब व्रत ही तुमने किया तो अब तुम्हें कौन रोक सकता है। विजय, जयंत तुम्हारे दो भाई हैं। उनको तुम्हारे पदपर नियुक्त करूंगा।

जयकुमारने कहा कि स्वामिन्! उन्होंने स्वीकार नहीं किया तो?

भरतेश्वरने कहा कि यदि उन्होंने स्वीकार नहीं किया तो फिर जिनको भी नियुक्त करोगे वही मेरा सेनापति होगा। जावो, मैं इसे स्वीकार करता हूं। जयकुमारने पुनः नम्रतासे कहा कि स्वामिन्! बडा तो नहीं है, ५–६ वर्षका पुत्र है। उसकी आप रक्षा करें।

भरतेश्वरने कहा कि मेघेश! चिंता मत करो। छोटा हुआ तो क्या हुआ? वह बडा नहीं होगा? जावो, तुमसे भी अधिक चिंतासे मैं उसका संरक्षण करूंगा।

जयकुमारको संतोष हुआ। मैं भगवंतका दर्शन कर एक दफे नगरको जाऊंगा। पुनः इसी देवगिरिपर आकर मुनि दीक्षासे दीक्षित हो जाऊंगा यह कहकर जयकुमार उधर गया व चक्रवर्ति इधर रवाना हुए।

अयोध्या नगरमें पहुंचकर मंत्री मित्रोंको अपने २ स्थानपर भेजा। महलमें राणियोंमें एक नवीन आनंद ही आनंद मच रहा है। जहां देखो वहां समवसरणकी ही चर्चा। एकांतमें जिनेंद्रके दर्शनका अवसर, जिनेंद्रका दिव्य आकार, विशिष्ट शांति, कमलको स्पर्श न करते हुए स्थित भगवंतकी विशेषता, आदि बातोंको स्मरण करती हुई वे देवियां आनंदित हो रही हैं। गंगादेवी और सिंधुदेवीको भी पूछा कि बहिन्! पिताजीको आप लोगोंने देखा! उत्तरमें उन बहिनोंने कहा कि भाई! तुम्हारी कृपासे आज हम लोगोंने मुक्तिका ही दर्शन किया। और क्या होना चाहिए? हम लोगोंका पुण्य प्रबल है। आपने बहिन् बनानेके कारण हमारा भाग्य उदय हुआ।

भरतेश्वरने कहा कि बहिन! एक गर्भसे कष्ट सहन कर आनेकी क्या जरूरत है? केवल स्नेहसे बहिन् कहनेसे पर्याप्त नहीं है क्या! उसके बाद अलग महल देकर उनको तीन महीने पर्यंत वहींपर सुखसे रक्खा, पुनः और भी रहनेके लिए कह रहे थे। परंतु गंगादेव और सिंधुदेव कहने लगे कि हम जायेंगे, फिर भरतेश्वरने उनका रत्न, वस्त्रादिकसे यथेष्ट सत्कार किया। उनकी आंखोंकी तृप्ति हो उस प्रकार

उत्तमोत्तम रत्नोंसे उनका आदर किया। साथमें बहिनोंको भी बस ! बस ! कहने तक रत्नादिक देकर उनकी विदाई की। वे अपने नगरकी ओर चले गये। इसी प्रकार पुत्रियोंको भी यथेष्ट सत्कार कर उनको रवाना किया। पौदनपुरके पुत्र व बहुओंको भी अनेक उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणोंसे सत्कार किया। उनकी भी विदाई की गई। बाकीके सहोदरोंके पुत्रोंको, बहुवोंको योग्य बुद्धिवादके साथ उत्तम उपहार देकर रवाना किया। दूरके सभीको रवाना कर स्वतः राणियोंको, पुत्रोंको व बहुवोंको सुख पहुंचाते हुए अपना समय व्यतीत कर रहे थे।

आगेके प्रकरणमें पुत्रोंके दीक्षापूर्वक एकदम मोक्षबीज अंकुरित होगा। पाठक गण उसकी प्रतीक्षा करें। यहां यह अध्याय पूर्ण होता है।

प्रजायें आनंदमय जीवनको व्यतीत कर रही हैं। परिवार सुखी है, राजागण आनंदित हो रहे हैं। परंतु भरतेश्वर अपने भोग व योग दोनोंमें मग्न हैं। यहांपर योगविजय नामक तीसरा कल्याण समाप्त होता है।

संसारमें भोगका त्याग करनेके लिए महर्षियोंने आदेश दिया है। परंतु भरतेश्वर उस विशाल भोगमें मग्न हैं। अगणित सुखका अनुभव करते हैं। फिर भी योगविजयी कहलाते हैं, इसका क्या कारण है ? इसका एक मात्र कारण यही है कि योग हो या भोग, परंतु किसी भी अवस्थामें भरतेश्वर अपनेको भूल ते नहीं हैं। विवेकका परित्याग नहीं करते हैं। उनकी सतत भावना रहती है। कि—

" हे परमात्मन् ! योग हो या भोग उन दोनोंमें यदि तुह्मारा संयोग हो तो मुक्ति हो सकती है। अन्यथा नहीं। हे गुरुनाथ ! आप महाभोगी हो, मेरे हृदयमें सदा बने रहो।

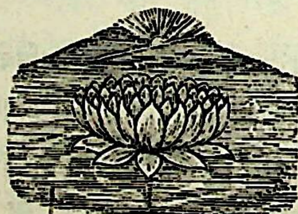
हे सिद्धात्मन् ! आप भक्तोंके नाथ हैं, भव्योंके स्वामी हैं, विरक्तोंके अधिपति हैं, वीरोंके अधिनायक हैं, शक्तोंके नेता हैं, शांतोंके प्रभु हैं। आप मुझे सन्मति प्रदान करें। ”

इसी भावनाका फल है कि वे महाभोगी होते हुए भी योगविजयी कहलाते हैं। अर्थात् भोगी होनेपर भी योगी हैं।

इति जिनवासनिर्मित संधिः।

इति योगविजय नाम

तृतीयकल्याणं समाप्तं।



भरतेश वैभव ।

चतुर्थ भाग ।

मोक्षविजय ।

साधनासंधिः ।

परमपरंज्योति ! कोटिचंद्रादित्यकिरण ! सुज्ञानप्रकाश ! ।
सुरमकुटमणिरंजितचरणाब्ज ! शरण श्रीप्रथमजिनेश ! ॥

हे निरंजन सिद्ध ! आप साक्षात् मोक्षके कारण हैं। सर्वज्ञ हैं। मोक्षगामियोंके आराध्य हैं। मोक्षविजय हैं। त्रिलोक चक्षु हैं। इसलिए मोक्षविजयके प्रारंभमें मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

कैलासमें जिनेंद्रमंदिरोंका निर्माण, बहुत वैभवके साथ उनकी पूजा प्रतिष्ठा वगैरे होनेके बाद सम्राट् अपने हजारों पुत्रोंके एवं राणियोंके प्रेमसम्मेलनमें बहुत आनंदके साथ अपने समयको व्यतीत कर रहे हैं। प्रजावोंका पालन पुत्रवत् हो रहा है।

भरतेश्वरके पुत्र आपसमें प्रेमसे विनोद खेल कर रहे हैं। एक एक जगह सौ सौ पुत्र कहीं तालाबके किनारे, कहीं नदीके किनारे रेतपर कहीं उद्यानमें खेलते हैं। उनकी शोभा अपूर्व है। चौदह पंद्रह सोलह सत्रह अठारह वर्षके वे हैं। जादा उमर है नहीं। अभी विवाह नहीं हुवा है। उनको देखनेमें बडा आनंद होता था।

रविकीर्तिराज, रतिवीर्यराज, शत्रुवीर्यराज, दिविचंद्रराज, महाजयराज, माधवचंद्रराज, सुजयराज, अरिंजयराज, विजयराज, कांतराज, अजितंजयराज, वीरंजयराज, गजसिंहराज आदि सौ पुत्र जो कि सौंदर्यमें स्वर्गोंके देवोंको भी तिरस्कृत करनेवाले हैं। अनेक शास्त्रोंमें प्रवीण हैं, अपने साधन–सामर्थ्यको बतलाने के लिये उस दिन तयार हुये।

गिंडि, पुस्तक, खडावू, छोटीसी कठारी एवं अनेक अस्त्र और वीणा वगैरे सामग्रियोंको नौकर लोग लेकर साथमें जा रहे हैं। छोटे भाइयोंने बडे भाइयोंसे प्रार्थना की कि स्वामिन्! यहांपर नदीके किनारे रेत बहुत अच्छी है। जमीन भी साफ सूफ है। यहींपर अपन साधन (कसरत कवायत) करें तो बहुत अच्छा होगा। तब बडे भाइयोंने भी कहा कि भाई! तुम लोगोंका उत्साह आज इतना बढा हुवा है तो हम लोग क्यों रोकें? तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा ही होने दो। हम लोग भी आयेंगे। उसके बाद लंगोटी बनियन वगैरे आवश्यक पोषाकको धारण कर वे तय्यार हुये।

वे कुमार नैसर्गिक रूपसे ही सुंदर हैं। इस समय जब वे कसरत के पोषाकको धारण करने लगे तो और भी सुंदर मालूम होने लगे। उनके शरीरके सुगंधपर गुंजायमान करते हुये भ्रमर आने लगे। उनके शब्दसे मालूम हो रहा था कि शायद वे इन कुमारोंकी स्तुति ही कर रहे हैं।

सिद्ध ही शरण है। जिनेंद्र ही रक्षक है। निरंजनसिद्धं नमो इत्यादि शब्दोंको उच्चारणकर वे साधनके लिये सन्नद्ध हुये। वे जिस समय एक एक कूदकर उस रेतपर आये तो मालुम हो रहा था कि गरुड आकाशपर उडकर नीचे आ रहा हो अथवा सुरलोकके अमरकुमार आकाशपर उडकर भूमीपर आ रहे हों। जब वे एक दुसरे कुस्तीके लिये खडे हुवे तो शंका आ रही थी कि दो कामदेव ही तो नहीं खडे हैं? आपसमें विनोदके लिये दो पार्टी करके खेल रहे हैं। खड्गसे, लाठीसे, बर्चीसे अनेक प्रकारकी कलावोंका प्रदर्शन कर रहे हैं।

भाई! देखो! यह कहते हुवे एक बालकने मस्तककी तरफ दिखाकर पैरके तरफ प्रहार किया। परन्तु जिसके प्रति प्रहार किया वह भी निपुण था। उसने यह कहते हुए कि भाई! यह गलत है, उस प्रहारको पैरसे धक्का देकर दूर किया। वह गलत नहीं हो सकता है, यह कहकर पुनः मस्तकपर प्रहार किया तो हमारी बात गलत नहीं है, सही है, यह कहकर उस भाईने पुनः उसका

प्रतीकार किया। प्रभो! देखो यह बाव निश्चित है यह कहते हुए पुनः पैर व छातीपर प्रहार किया। यह उधर ही रहने दो, इधर जरूरत नहीं, यह कहकर भाईने उसका प्रतीकार किया।

इस प्रकार परस्पर अनेक प्रकारकी कुशलतासे एक दूसरेको चकित कर रहे थे। और एक भाईने अपने छोटे भाईके प्रति एक दंड प्रहार किया, तब उसने भी एक दंडा लेकर कहा कि भाई मुझे भी आज्ञा दो, तब बडे भाईने कहा कि भाई तुम पराक्रमी हो। मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति है मैं जानता हूं। समय भक्तिको एक तरफ रखो। शक्तिको बताओ। छोटे भाईने कहा तो फिर तुम्हारी आज्ञाका उल्लंघन क्यों करूं? कृपा कर देखिये। यह कहकर भाईने एक प्रहार किया तो यह उसे दो जवाब देता था। इस प्रकार वह प्रहारसंख्या बढते बढते कितनी हुई यह हम नहीं कह सकते। ब्रह्मा ही जाने। परंतु छोटा भाई बिलकुल घबराया नहीं। सब लोग शाहबाश! शाहबाश! यह कह रहे हैं। इसी प्रकार अनेक जोडियोंमें अनेक प्रकारके खेल चल रहे हैं। देखनेंवाले वीर, विक्रम, धीर, साहसी, अभ्यासी, शूर, शाहबाश इत्यादि उत्तेजनात्मक शब्द कह रहे हैं। कोई पुरुनाथ शाहबाश! गुरुनाथ वाहवा! वाहवा! हंसनाथ बस करो! कमाल किया, इत्यादि प्रकारसे कह रहे हैं। इसी प्रकार जलक्रीडा, वनक्रीडा आदिमें भी विनोद हो रहा है। कोई धनुर्विद्यामें, कोई अस्त्रशस्त्रमें, कोई शरीर साधनमें अपनी अपनी प्रवीणताको बतलाते हैं। आकाशके तरफ उडनेकी अद्भुत कलाको देखनेपर यह शंका होती है कि वे खेचर हैं या भूचर हैं? उनका लंघनचातुर्य, अंगलघुताको देखनेपर वे देवकुमार हैं या राजकुमार हैं यह मालुम नहीं होता। छोटे भाइयोंके कलानैपुण्यको देखकर बडे भाई आनंदसे आलिंगन देते हैं। सौतेली माताओंके पुत्र हैं, इसका तो उनके हृदयमें विचार ही नहीं है। उनका आपसका प्रेम प्रसंशनीय है। कोई मल्लविद्यामें साधन कर रहे हैं, कोई कठारीका

प्रयोग कर रहे हैं, कोई गदाविनोद कर रहे हैं, कोई चंद्रायुधसे कोई वज्रायुधसे, कोई रविहाससे, कोई चंद्रहाससे, साधन कर रहे हैं। सूखे पत्तोंके समान बडे बडे वृक्षोंको उखाडकर फेंकते हैं। इनके बलका क्या वर्णन करना! अर्धचक्रवर्ती बडे बडे पर्वतोंको उठाते हैं। परंतु ये तो पूर्ण चक्रवर्तीके कुमार हैं। और तद्भव मोक्षगामी, वज्रमय देहको धारण करनेवाले हैं। फिर वृक्षोंको उखाडकर फेंका तो इसमें आश्चर्यकी बात क्या है?।

इस प्रकार साधन करते हुये मध्याह्न काल भी बीत गया। सेवकोंने इन राजकुमारोंसे प्रार्थना की कि स्वामिन्! आप लोगोंकी वीरतासे घबराकर सूर्य भागकर आकाशपर चढ गया है। तब सब लोगोंको मालुम हुवा बहुत देरी हो गई है। अब घर जाना चाहिये। शरीर सब धूल रेतसे भर गया है। पसीनेसे तर हो गया है। आनंदसे एक दूसरेके समाचारको पूछने लगे हैं। हाथीके बच्चोंके समान उन कुमारोने तालाबमें प्रवेशकर स्नान किया। तदनंतर श्रृंगार कर जिनेंद्रभगवंतकी स्तुति की। आत्मध्यान किया। तदनंतर भोजन कर उसी नदीके पासमें स्थित जंगलमें चले गये। इस प्रकार नदीके किनारेपर चक्रवर्तीके पुत्रोंने अपने विद्यासाधन का प्रदर्शन किया।

महापुरुषोंकी लीला अपार है। भरतेश्वरके एकेक पुत्र एक एक रत्न ही है। वे अनेक कलावोंमें निपुण हैं। ऐसे सत्पुत्रोंको पानेके लिए भी संसारमें बडे भाग्यकी जरूरत है। क्योंकि सातिशयपुण्यके विना गुणवान् सुपुत्र, सुशीलभार्या व इष्ट परिकर प्राप्त नहीं होते हैं। इसके लिए पूर्वोपार्जित पुण्यकी आवश्यकता पडती है। भरतेश्वर सदा इस भावनामें रत रहते हैं:—

"हे परमात्मन्! आप चिंतामणिके समान इच्छित फलको देनेवाले हैं। अत एव चिंतारत्न हैं और रत्नाकर स्वामी हैं। मनोहर हैं, और निश्चिंत हैं। इसलिए मेरे हृदयमें सदा बने रहो।"

इसी पवित्र भावनाका फल है वे हर तरहसे सुखी हैं।

॥ इति साधना-संधिः ॥

विद्यागोष्टि संधिः ।

वनकी शीतल छाया, शीतल पवनमें थोडीसी निद्रा लेकर सभी कुमार जिनसिद्ध, गुरु निरंजनसिद्ध, कहते हुये उठे। तदनंतर मुंह धोकर गुलाबजल, कपूर, इत्यादिको छिडकनेके बाद सेवकोने तांबूलके करंडकको आगे किया। तांबूल सेवनकर शीतल पवनमें बैठे हुवे संगीत कलाके प्रदर्शनके लिए वे सन्नद्ध हुवे। योग्य कालको जानकर भिन्न २ रागोंके स्वरोंको ध्यानमें लेकर गौड राग, श्रीराग, मालवराग, इत्यादि रागसे आलाप करने लगे। उन्होंने अपने मस्तक पर जो पुष्प धारण किया है उसके सुगंधके लिये, शरीरपर लगाये हुए श्रीगंधलेपनके लिये, श्वासोछ्वास व मुखके सुगन्धके लिये वहां पर भ्रमरका समूह जो आ पडा उसने सुस्वरसे उस गायनमें श्रुति मिलाई।

सप्तस्वर, तीन ग्राम, चौसठ स्थानोंमे एकसौ आठ रागोंसे गायन करते हुवे वे भरतशास्त्रमें भ्रमण करने लगे। भरत चक्रवर्तीके पुत्र यदि भरत शास्त्रमें प्रवीण न हों तो और कौन हो सकते हैं? एक कुमारने मेघरंजी रागको लेकर आलाप किया तो निदाघ [गरमी] काल होनेपर भी आकाशमें मेघाच्छादन होकर पानी बरसने लगा। तब उसने उस रागके आलापको बंद कर दिया। एक कुमारने पत्थरके उपर बैठकर गुंडाक्री नामके रागका आलाप किया तो वह पत्थर पिघलकर पानी हो गया तो फिर कोमल हृदयका पिघलना क्या आश्चर्यकी बात है? एक कुमारने हिंदुवरालि नामके रागका आलाप किया वह जंगल एक ही क्षणमें पुष्प फल वगैरेसे भर गया। नागवराली रागके गानेपर उनके सामने अपने फणाको खोलकर अनेक सर्प आकर गायनको सुनने लगे। उसी समय एक कुमारने गरुडगांधारी नामके रागको लेकर गायन किया तो वे सर्प इधर उधर भाग गये। और आकाशसे गृद्ध पक्षी आकर उस गायनको सुनने लगे। विशेष क्या? उस जंगलमें स्थित कोयल, तोता, मोर, व अनेक प्राणी कान देकर

स्तब्ध होकर उनके सुंदर गायनको सुन रहे हैं। स्वरमंडलमें किन्नरियोंमें एवं त्रिविध वीणामें अनेक प्रकारके रागालापको वे करने लगे। अत्यंत सुंदर उनका स्वर है, सुंदर राग है, तान भी सुंदर है, आलाप भी सुंदर है, और गानेवाले उससे भी बढकर सुंदर हैं, उनकी बराबरी कोई भी नहीं कर सकता है।

केतारगौळमें, एवं उत्तरगौळमें आदि भगवंतने घातिकर्मोंका नाश जिस क्रमसे किया उसका चातुर्यके साथ वर्णन किया। बोधनिधान भगवान् आदिनाथ स्वामीके केवलज्ञानके वर्णनको कांबोधि रागसे गायन किया। सुंदर दिव्यध्वनीको मधुमाधवी रागसे वर्णन किया। शुद्ध रागोंसे जिनसिद्धोंकी स्तुती कर उनको निबद्ध कर, शुद्ध संकीर्ण रागके भेदको जाननेवाले उन कुमारोंने संकीर्णरागसे वृद्ध संपन्न योगियोंका वर्णन किया। छह द्रव्य, पंच शरीर, पंच अस्तिकाय, सात तत्व, नौ पदार्थ इनको वर्णन कर, इनमें एकमात्र आत्मतत्व ही उपादेय है। इस प्रकार चिद्रव्यका बहुत खूबीके साथ वर्णन किया।

पाषाणमें सुवर्ण है, काष्ठमें अग्नि है, दूधमें घी है, इसी प्रकार इस शरीरमें आत्मा है। पाषाणमें कनक है यह बात सत्य है। परंतु सर्व पाषाणमें कनक नहीं रहता है। सुवर्णपाषाणमें दिखनेवाली कांति वह सुवर्णका गुण है। काष्ठमें दिखनेवाला काठिन्यगुण अग्निका स्वरूप है। दूधमें दिखनेवाली मलाई वह घीका चिन्ह है। इसी प्रकार इस शरीरमें जो चेतन स्वभाव और ज्ञान है वही आत्माका चिन्ह है। फिर उसी पत्थरको शोधन करनेपर जिस प्रकार सुवर्णको पाते हैं, दूधको जमाकर मंथन करनेपर जिस प्रकार घीको पाते हैं, एवं काष्ठको जोरसे परस्पर घर्षण करनेपर अग्नि जिस प्रकार निकलती है, उसी प्रकार यह शरीर भिन्न है, मैं भिन्न हूं, यह समझकर भेदविज्ञानका अभ्यास करें तो इस आत्माका परिज्ञान होता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके क्रमसे तद्रूप ही आत्माका अनुभव करे तो इस चिद्रूपका शीघ्र परिज्ञान हो सकता है।

वह आत्मा पानीसे भींग नहीं सकता है, अग्निसे जल नहीं सकता है, किसी भी खड्गकी तीक्ष्णधारको भी वह मिल नहीं सकता है। पानी अग्नी, आयुध, रोग वगैरेकी बाधायें शरीरको होती हैं, आत्माको नहीं। आत्मा शरीरमें आकाशके रूपमें पुरुषाकार होकर रहता है। यह शरीर नाशशील है। आत्मा अविनश्वर है। शरीर जड स्वरूप है, आत्मा चेतन स्वरूप है। शरीर भूमीके समान है। आत्मा आकाशके समान है। इस प्रकार आत्मा और शरीर परस्परविरुद्ध पदार्थ हैं।

आकाश निराकार रूप है, आत्मा भी निराकार रूप है, आकाश पुरुषाकार रूपमें नहीं है और ज्ञान भी आकाशको नहीं है, इतना ही आकाश और आत्मामें भेद है।

अंबरके समान इस आत्माको शरीर नहीं है। चिद्रूप इसका स्वरूप है और सुंदर पुरुषाकार है। इस प्रकार तीन चिन्ह होनेसे इस आत्माका नाम चिदम्बरपुरुष ऐसा पड गया। यह शरीर कारागृहवास है, यह आयुष्य हतखडी है। बुढापा, जन्म, मरण, आदि अनेक बाधायें वहां होनेवाले अनेक कष्ट हैं। अपने महत्वपूर्ण स्वरूपको न समझकर यह आत्मा व्यर्थ ही इस शरीरमें कष्ट उठा रहा है। यह बडे दुःखकी बात है।

यह आत्मा तीन लोकके समान विशाल है। और तीन लोकको अपने हाथसे उठानेके लिए समर्थ है। परंतु कर्मवश होकर बीजमें छिपे हुए वृक्षके समान इस जड देहमें छिपा हुआ है। आश्चर्य है।

तीन लोकके अंदर व बाहर यह जानता है व देखता है। और करोड सूर्य व चंद्रमाके समान उज्वल प्रकाशसे युक्त है। परंतु खेद है कि बादलसे ढके हुए सूर्यके समान कर्मके द्वारा ढका हुआ है।

यह आत्मा शरीरमें रहता है। परंतु उसे कोई शरीर नहीं है। उसे कोई शरीर है तो ज्ञानरूपी ही शरीर है। शरीरमें रहते हुए शरीरको वह स्पर्श नहीं करता है। परंतु शरीरमें वह सर्वांग व्याप्त है।

कमलनालमें जिस प्रकार उसका डोरा नीचेसे ऊपर तक बराबर

भरा रहता है उसी प्रकार यह आत्मा इस शरीरमें पादांगुष्ठसे लेकर मस्तकतक सर्वांगमें भरा हुआ है। कमलनालमें वह डोरा नीचेसे ऊपर तक रहता है। परंतु मूल व पत्तेमें वह डोरा नहीं रहता है। इसी प्रकार यह आत्मा इस शरीरमें पादसे लेकर मस्तकतक सर्वांगव्याप्त रहता है। परंतु नख और केशमें यह नहीं है।

शरीरके किसी भी प्रदेशमें स्पर्श किया या चिमटी ली तो झट मालुम होता है व वेदना होती है अर्थात् वहां आत्मा मौजूद है, परंतु नख केशके स्पर्श करनेपर या चिमटी लेनेपर मालुम नहीं होता है व वेदना भी नहीं होती है अर्थात् उस अंशमें आत्मा नहीं है।

कमलनाल जैसा २ बढता जाता है उसी प्रकार अंदरका डोरा भी बढता ही रहता है। इसी प्रकार बाल्यकालसे जब यह शरीर बढकर जवानीमें आता है तो वह आत्मा भी उसी प्रमाण से बढता है।

कमल नाल; गंदला कंटकयुक्त, होकर कठोर जरूर है। परंतु अंदरका वह डोरा मृदु, निर्मल व सरल है। इसी प्रकार अत्यंत अपवित्र रक्त, चर्म, मांस हड्डी आदिसे युक्त इस शरीरमें आत्मा रहनेपर भी वह स्वयं अत्यंत पवित्र है।

बाहरका यह शरीर सप्तधातुमय है। इसके अंदर और दो शरीर मौजूद हैं। उन्हें तैजस व कार्माण कहते हैं। इस प्रकार तीन परकोटोंसे वेष्ठित कारागृहमें यह आत्मा निवास करता है।

सप्तधातुमय शरीरको औदारिकके नामसे कहते हैं। परंतु अंदरका शरीर कालकूट विषके समान भयंकर है। और वह अष्टकर्म स्वरूप है।

मनुष्य, पक्षि, पशु आदि अनेक योनियोंमें भ्रमण करते हुए इस आत्माको औदारिकशरीरकी प्राप्ति होती है। परंतु तैजस कार्माणशरीर तो मरण होनेपर भी इसके साथ ही बराबर लगकर आते हैं।

इस पर्यायको छोडकर अन्य पर्यायमें जन्म लेनेके पहिले विग्रहगतिमें जब यह आत्मा गमन करता है उस समय उसे तैजस कार्माण

दोनों शरीर रहते हैं। परंतु वहांपर जन्म लेनेपर और एक शरीर की प्राप्ति होती है। इस प्रकार इस आत्माको इस संसारमें तीन शरीर हर समय रहते हैं।

धारण किये हुए इस शरीररूपी थैलेके अंदर जबतक आत्मा रहता है तबतक उसका जीवन कहा जाता है। उस थैलेको छोडने पर मरणके नामसे कहते हैं और पुनः नवीन थैलेको धारण करने पर जन्मके नामसे कहा जाता है। यह जन्म-जीवन-मरण समस्या है।

एक घरको छोडकर दूसरे घरपर जिस प्रकार यह मनुष्य जाता है, उसी प्रकार एक शरीरको छोडकर दूसरे शरीरमें यह आत्मा जाता है। जबतक यह शरीरको धारण करता है तबतक वह संसारी बना रहता है। शरीरके अभाव होनेपर उसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है। शरीरके अभावकी अवस्थाको ही मोक्ष कहते हैं।

किसी चीजके अंदर भरे हुए हवाको दबा सकते हैं। परंतु ऊपर कोई थैला वगैरे न हो तो उस हवाको दबा नहीं सकते हैं। उसी प्रकार शरीरके अंदर जबतक यह आत्मा रहता है जबतक रोगादिक बाधायें हैं, जब यह शरीरको छोडकर चला जाता है तो उसे कोई भी बाधा नहीं है।

अग्नि, हथकडी, पत्थर, अस्त्र, शस्त्रादिकके आघातसे यह औदारिक शरीर बिगडता है, और नष्ट भी होता है। परंतु तैजसकार्माण-शरीर तो इनसे नष्ट नहीं होते हैं। ये दो शरीर ध्यानाग्निसे ही जलते हैं।

तैजसकार्मणशरीरके नष्ट होनेपर ही वास्तवमें इस आत्माको मुक्ति होती है। तैजसकार्मणशरीरको नष्ट करनेके लिए श्रीजिनेंद्रभक्ति ही यथार्थ युक्ति है। भक्ति दो प्रकारकी है। एक भेदभक्ति और दूसरी अभेदभक्ति। इस प्रकार भेदाभेदभक्तिके स्वरूपको बहुत आदरके साथ उन्होंने वर्णन किया।

समवसरणमें श्री जिनेंद्रभगवंत हैं, अमृतलोक अर्थात् मोक्षमंदिरमें श्रीसिद्धभगवंत विराजमान हैं, इस प्रकार क्रमसे उनको अलग रखकर ध्यान करना उसे भेदभक्ति कहते हैं।

उन जिनसिद्धोंको वहांसे निकालकर अपने आत्मामें ही उनका संयोजन करें और अपने आत्मामें या हृन्मंदिरमें जिनसिद्ध विराजमान हैं इस प्रकार ध्यान करें तो उसे अभेदभक्ति कहते हैं। वह मुक्तिके लिए कारण है।

जिनेंद्रभगवंतको अपनेसे अलग रखकर ध्यान करना वह भेदभक्ति है। अपनेमें रखकर ध्यान करना उसे अभेदभक्ति कहते हैं। यह जिनशासन है, इस प्रकार बहुत भक्तिके साथ वर्णन किया।

भेदभक्तिको ध्यानके अभ्यासकालमें आदर करना चाहिए। जबतक इस आत्माको ध्यानकी सामर्थ्य प्राप्त नहीं होती है तबतक भेदभक्तिका अवलंबन जरूर करना चाहिए। तदनंतर अभेदभक्तिका आश्रय करना चाहिए। अभेद भक्तिमें आत्माको स्थिर करना अमृतपद अर्थात् सिद्ध–स्थान के लिए कारण है।

आत्मा जिनेंद्र और सिद्धके समान ही शुद्ध है, इस प्रकार प्रतिदिन अपने आत्माका ध्यान करना यह जिनसिद्धभक्ति है, तथा निश्चय रत्नत्रय है और मुक्तिके लिए साक्षात् कारण है।

शिला, कांसा, पीतल आदिके द्वारा जिनमुद्रको तैयार कराकर उनका समादर करना व उपासना करना उसे भेदभक्ति कहते हैं। अचल होकर अपने आत्माको ही जिन समझना उसे अभेदभक्ति कहते हैं।

चर्म, रक्त, मांससे युक्त अपवित्र गायके शरीरमें रहने पर भी दूध जिस प्रकार पवित्र है, उसी प्रकार कर्म, कषाय व अनेक रोगादिक बाधाओंसे युक्त शरीरमें रहनेपर भी यह आत्मा निर्मल है, पवित्र है।

अग्नि लकडीमें है, यदि वही अग्नि प्रज्वलित हुई तो उसी लकडीको जला देती है। अर्थात् जहां उस अग्निका निवासस्थान है उसे ही

जला देती है। इसी प्रकार कठोरकर्मके बीच यह आत्मा रहता है। परंतु ध्यान करने पर वह आत्मा उन कर्मोंको ही जला देता है।

दशवायुवोंको वशमें कर, प्राभृतशास्त्रोंके रहस्यको समझकर, आंखोंको मीचकर त्रिशरीरकों अपनेसे भिन्न समझकर अंदर देखें तो आत्मा सहज ही दीखने लगता है।

विशेष क्या कहें ? प्राणवायुको मस्तकपर चढाकर वहांपर स्थिर करें तो अंदरका अंधकार एकदम दूर होकर शुभ्र चांदनीकी पुतलीके समान आत्मा दीखता है।

कोई कोई पवनाभ्यास [प्राणायाम] के विना ही ध्यानको हस्तगत करलेते हैं। और कोई २ उस वायुको अपने वशमें कर आत्मध्यान करते हैं। जब इस ध्यानकी सिद्धि होती है तो तैजसकार्मणशरीर झरने लगते हैं और चर्मका यह शरीर भी नष्ट होने लगता है। तदनंतर यह निर्मलात्मा मुक्तिको प्राप्त करता है। इस प्रकार आत्मधर्मका उन्होंने भक्तिके साथ वर्णन किया।

इस प्रकारके अध्यात्मिक विवेचनको सुनकर वहां उपस्थित सभी कुमार अत्यंत प्रसन्न हुए। वाह ! वाह ! बहुत अच्छा हुआ। अब इस गायनमें बहुत समय व्यतीत हुआ। अब साहित्यकलाका आस्वादन लेवें इस प्रकार कहते हुए साहित्यकलाकी ओर विहार करनेकी इच्छा की।

व्याकरणमें, तर्कशास्त्रमें, न्यासभाषामें, प्राकृत, गीर्वाण और देशीय भाषामें उन्होंने अनेक विषयको लेकर संभाषण किया। रसशास्त्र, काव्यशास्त्र, नाटक, अलंकार, छंदःशास्त्र, कामशास्त्र, रसवाद, कन्यावाद आदि अनेक विषयोंमें विचार विनिमय किया।

एक शब्दके अनेक अर्थ होते हैं। उन अनेक अर्थोंको एक शब्दका संयोजन कर, एक बार उच्चारण किए हुए शब्दको पुनरुच्चारण न कर नवीन नवीन शब्दोंका प्रयोग किया गया। और तत्वचर्चा की गई।

काव्यनिर्माणमें वर्णक, वस्तुक नियमको ध्यानमें रखकर कर्णरसामृत के रूपमें सुंदर कविताओंका निर्माण किया। विशेष क्या ? गण, पद, संधि, समास आदि विषयोंमें निर्दोष लक्षणको ध्यानमें रखकर एक क्षणमें सौ श्लोक और एक घटिकामें एक संपूर्ण काव्यको ही वे लीलामात्रसे तैयार करते थे। लोग इसे सुनकर आश्चर्य करेंगे। परंतु अंतर्मुहूर्तमें द्वादशांग आगमको स्मरणकर, लिखकर पढनेवाले महायोगियोंके शिष्योंके लिए काव्य निर्माण की यह सामर्थ्य क्या आश्चर्यजनक है ?

उनके लिए अष्टावधानकी क्या बडी बात है ? लक्षावधानकी दृष्टि ही उनका शरीर है, सुबुद्धी ही उनका मुख है। इस प्रकार बहुत ही चातुर्यसे उन्होंने काव्यका निर्माण किया। अडतालीस कोस प्रमाण विस्तृत मैदानमें व्याप्त सेनामें जो कुछ भी चले उसको अपनी महलमें बैठकर जाननेवाले सम्राट्के गर्भमें आनेवाले इन पुत्रोंको लक्षावधान ज्ञान रहे इसमें आश्चर्यकी बात क्या है ?

कंठमालावोंके समान नवीन नवीन कृतियोंको लिखने योग्य रूपसे वे रच रहे हैं। जिस समय काव्यपठन करते हैं, उस समय कंठका संकोच बिलकुल नहीं होता है।

एक कुमारने विनोदके लिए विषवाणीके द्वारा एक वृक्षका वर्णन किया तो वह वृक्ष एकदम सूखगया। पुनः अमृतवाणीसे वर्णन करनेपर फल पुष्पसे अंकुरित हुआ।

एक कुमारने तोतेका वर्णन उग्रवाणीसे किया तो तोता कौंवडेके समान कर्कश स्वरसे बोलने लगा। पुनः शांतवाणीसे वर्णन करनेपर वह पुनः शांत होकर मधुर शब्द करने लगा।

इस प्रकार अनेक प्रकारके विनोदसे बांझ वृक्षको फलसहित वृक्ष बनाकर, फलसहित वृक्षको बांझ बनाकर अपने राजधर्मके शिक्षा, रक्षा आदि गुणोंको कविताओंके द्वारा प्रकट कर रहे थे।

कविता तो कल्पवृक्षके समान है। जो विद्वान् उसके रहस्यको जानते हैं वे सचमुचमें कल्पवृक्षके समान ही उसका उपयोग करते हैं। उसके रहस्यको उन राजकुमारोंने जान लिया था। अब उनकी बराबरी कौन कर सकते हैं ?

एक कुमार बहानेके लिए एक कोरी पुस्तकको देखते हुए कविताका पठन कर रहा था एवं अपूर्व अर्थ का वर्णन कर रहा था। उसे सुनकर उपस्थित अन्य कुमार चकित हो रहे थे। तब उन लोगोंने यह पूछा कि वाह ! बहुत अच्छी है, यह किसकी रचना है ? तब उस कुमारने उत्तर दिया कि यह मैं नहीं जानता हूं। तब अन्य कुमारोंने पुस्तक को छीनकर देखी तो वह खाली ही थी, तब उसकी विद्वत्ताको देखकर वे प्रसन्न हुए।

विशेष क्या ? भरतपुत्र जो कुछ भी बोलते हैं वह आगम है, जरासे ओठको हिलाया तो भी उससे विचित्र अर्थ निकलता है। जो कुछ भी वे आचरण करते हैं वही पुराण बन जाता है। ऐसी अवस्थामें काव्य-सागरमें वे गोता लगाने लगे उसका वर्णन क्या किया जा सकता है ?

मुक्तक, कुलक इत्यादि काव्यमार्गसे भगवान् अर्हतका वर्णन कर मुक्तिगामी उन पुत्रोने आत्मकलाका भेदाभेद भक्तिके मार्गसे वर्णन किया।

बाहरके विषयको जानना व्यवहार है, अंतरंग विषयको अर्थात् अपने अंदर जानना वह निश्चय है। बाहरकी सब चितावोंको दूरकर अपने आत्माके स्वरूपका उन्होंने बहुत भक्तिसे वर्णन किया।

भूमिके अंदर आकाशको लाकर गाढनेके समान इस शरीरमें आत्मा भरा हुआ है। यह अत्यंत आश्चर्य है।

यदि घरमें आग लगी तो घर जल जाता है, परंतु घरके अंदरका आकाश नहीं जलता है। इसी प्रकार रोग—शोकादिक सभी बाधायें इस शरीरको हैं, आत्माके लिए कोई कष्ट नहीं है।

अनेकवर्णके मेघोंके रहनेपर भी उनसे न मिलकर जिस प्रकार आकाश रहता है, उसी प्रकार रागद्वेषकामक्रोधादिक विकारोंके बीच आत्माके रहनेपर भी वह स्वयं निर्मल है।

आत्माको पंचेंद्रिय नहीं है। वह सर्वांगसे सुखका अनुभव करता है। पंचवर्ण उसे नहीं है, केवल उज्वल प्रकाशमय है। यह आश्चर्य है। आत्माको कोई रस नहीं है, गंध नहीं है। शरीरमें रहनेपर भी वह शरीरमें मिला हुआ नहीं है। फिर वह कैसा है? अत्यंत सुखी है, सुज्ञान व उज्वल प्रकाशसे युक्त होकर आकाशने ही मानो पुरुषरूपको धारण किया है। उस प्रकार है। आत्माको मन नहीं है, वचन नहीं शरीर नहीं है। क्रोध, मोह, स्नेह, जन्म मरण, रोग, बुढापा आदि कोई आत्माके लिए नहीं है। ये तो शरीरके विकार हैं।

ज्ञानावरणादि आठ कर्म रूपी दो शत्रु (द्रव्य भाव ' अष्टगुण युक्त इस आत्माके गुणोंको आवृतकर कष्ट दे रहे हैं।

राग, द्वेष, मोह, ये तो भावकर्म हैं, अष्टकर्म द्रव्यकर्म है। चर्मका यह शरीर नोकर्म है। इस प्रकार ये तीन कर्मकांड हैं।

भावकर्मोंके द्वारा यह आत्मा द्रव्य कर्मोंको बांध लेता है। और उन द्रव्यकर्मोंके द्वारा नोकर्मको धारण करलेता है। उससे जन्म, मरण, रोग शोकादिकको पाकर यह आत्मा कष्ट उठाता है।

बहुरूपिया जिस प्रकार अनेक वेषोंको धारणकर लोकमें बहुरूपोंका प्रदर्शन करता है, उसी प्रकार यह आत्मा लोकमें बहुतसे प्रकारके शरीरोंको धारण कर भ्रमण करता है।

एक शरीरको छोडता है तो दूसरे शरीरको धारण करता है। उसे भी छोडता है तो तीसरेको ग्रहण करता है, इस प्रकार शरीरोंको ग्रहण व त्याग कर इस संसार नाटक शालामें भिन्न २ रूपमें देखनेमें आता है। यह आत्मा कभी राजा होता है तो कभी रंक होता है, कभी स्वामी होता है तो कभी सेवक बनता है। भिक्षुक और कभी धनिक

बनता है। कभी पुरुषके रूपमें तो कभी स्त्रीके रूपमें देखनेमें आता है। यह कर्मचरित है। विशेष क्या ? इस संसारमें यह आत्मा नर, सुर, खग, मृग, वृक्ष, नारक, आदि अनेक योनियोंमें भ्रमण करते हुए परमात्मकलाको न जानकर दुःख उठाता है।

पंचेंद्रियोंके सुखके आधीन होकर वह आत्मा अपने स्वरूपको भूल जाता है। शरीरको ही आत्मा समझने लगता है। जो शरीरको ही आत्मा समझता है उसे बहिरात्मा कहते हैं। आत्मा अलग है और शरीर अलग है, इस प्रकारका ज्ञान जिसे है उसे अंतरात्मा कहते हैं। तीनों ही शरीरोंका संबंध जिसको नहीं है वह परमात्मा है। वह सर्वश्रेष्ठ निर्मल परमात्मा है।

आत्मतत्त्वको जानते हुए आत्मा अंतरात्मा रहता है। परंतु उस आत्माका ध्यान जिस समय किया जाता है उस समय वही आत्म परमात्मा है। यह परमात्मा जिनेंद्र भगवंतका दिव्य आदेश है।

जिस प्रकार सूर्य बादलके बीचमें रहने पर भी स्वयं अत्यंत उज्वल रहता है, उसी प्रकार कर्मोंके बीचमें रहने पर भी यह आत्मा निर्मल है। इस प्रकार आत्माके स्वरूपको समझकर नित्य उसका ध्यान करें तो कर्मोंका नाश होकर मुक्तिकी प्राप्ति होती है।

आत्मा शुद्ध है, यह कथन निश्चयनयात्मक है। आत्मा कर्मबद्ध है, यह कथन व्यवहारनयात्मक है। आत्माके स्वरूपको कथन करते हुए, सुनते हुए वह बद्ध है। परंतु ध्यानके समय वह शुद्ध है।

आत्माको शुद्ध स्वरूपमें जानकर ध्यान करने पर वह आत्मा कर्म दूर होकर शुद्ध होता है। आत्माको सिद्ध स्वरूपमें देखनेवाले स्वतः सिद्ध होते हैं, इसमें आश्चर्यकी बात क्या है।

सिद्धबिंब, जिनबिंब आदिको शिला आदिमें स्थापितकर प्रतिष्ठित करना यह भेदभक्ति है। अपने शुद्धात्मामें उनको स्थापित करना वह अभेदभक्ति है, वह सिद्ध-पदके लिए युक्ति है।

भेदाभेद-भक्तिका ही अर्थ भेदाभेद-रत्नत्रय है। भेदाभेद-भक्तियोंसे कर्मोंको दूर करनेसे मुक्तिका पाना कोई कठिन बात नहीं है।

आत्मतत्वको प्राप्त करनेकी युक्तिको जानकर ध्यानके अभ्यास कालमें भेदभक्तिका अवलंबन करें। फिर ध्यानका अभ्यास होनेपर वह निष्णात योगी उस भेदभक्तिका त्याग करें और अभेदभक्तिका अवलंबन करें। उससे मुक्तिकी प्राप्ति अवश्य होगी।

स्फटिककी प्रतिमाको देखकर "मैं भी ऐसा ही हूं" ऐसा समझते हुए आंख मीचकर ध्यान करें तो यह आत्मा उज्ज्वल चांदनीकी पुतलीके समान सर्वांगमें दीखता है।

आत्मयोगके समय स्वच्छ चांदनीके अंदर छिपे हुएके समान अनुभव होता है। अथवा क्षीरसागर में प्रवेश करनेके समान मालुम होता है। विशेष क्या? सिद्ध लोकमें ऐक्य होगया हो उस प्रकार अनुभव होता है। आत्मयोगका सामर्थ्य विचित्र है।

आत्माका जिस समय दर्शन होता है उस समय कर्म झरने लगता है सुज्ञान और सुखका प्रकाश बढने लगता है। एवं आत्मामें अनंत गुणोंका विकास होने लगाता है। आत्मानुभवीकी महिमाका कौन वर्णन करें?

ध्यानरूपी अग्निके द्वारा तैजस व कार्माण शरीरको भस्मसात् कर आत्मसिद्धिको प्राप्त करना चाहिये। इसलिए भव्योंको संसारकांतारको पार करनेके लिए ध्यान ही मुख्य साधन है। वहांपर किसीने प्रश्न किया कि क्या यह सच है कि गृहस्थ और योगिजन दोनों धर्मध्यानके बलसे उग्रकर्मोंको नाश करते हैं। कृपया कहिये। तब उत्तर दिया गया कि बिलकुल ठीक है। आत्मस्वरूपका परिज्ञान धर्मध्यानके बलसे गृहस्थ और योगियोंको हो सकता है। परंतु शुद्धात्म स्वरूपमें पहुंचाने-वाला शुक्लध्यान योगियोंको ही हो सकता है। वह शुक्लध्यान गृहस्थोंको नहीं हो सकता है।

धर्मध्यान और शुक्लध्यानमें अंतर क्या है ? घडेमें भरे हुए दूधके समान आत्मा धर्मध्यानके द्वारा दिखता है। स्फटिकके पात्रमें भरे हुए दूधके समान शुक्लध्यानके लिए गोचर होता है। अर्थात् शुक्लध्यानमें आत्मा अत्यंत निर्मल व स्पष्ट होकर दिखता है। इतना ही धर्म व शुक्लमें अंतर है।

धर्मध्यान युवराजके समान है। शुक्लध्यान अधिराजके समान है। युवराज अधिराज जिस प्रकार बनता है, उसी प्रकार धर्मध्यान जब शुक्लध्यानके रूपमें परिणत होता है तब मुक्ति होती है।

युवराज जबतक रहता है तबतक वह स्वतंत्र नहीं है। परंतु जब वह अधिराज बनता है तब पूर्णसत्तानायक स्वतंत्र बनता है। उसी प्रकार धर्मध्यान आत्मयोगके अभ्यासकालमें होता है। उस अवस्थामें आत्मा मुक्त नहीं हो सकता है। शुक्लध्यानके प्राप्त होनेपर वह स्वतंत्र होता है, मुक्तिसाम्राज्यका अधिपति बनता है। तब कर्मबंधनका पारतंत्र्य उसे नहीं रहता है। यही आदिप्रभुका वाक्य है, इस प्रकार उन कुमारोंने बहुत आदरके साथ आत्मधर्मका वर्णन किया। इतनेमें एक अत्यंत विचित्र समाचार वहांपर आया जिसे सुनकर वे सब कुमार आश्चर्यसे स्तब्ध हुए।

भरतेश्वरके कुमारोंकी विद्यासामर्थ्यको देखकर पाठक आश्चर्यचकित हुए होंगे। प्रत्येक शास्त्रमें उनकी गति है। अस्त्रविद्यामें, शस्त्रविद्यामें, अश्वविद्यामें, धनुर्विद्यामें, जिसमें देखो उसीमें वे प्रवीण हैं। काव्यकला, संगीतकला, व नाटककलामें भी वे प्रवीण हैं। व्याकरण, छंदःशास्त्र व आगममें वे निष्णात हैं। उसमें भी विशेषता यह है कि इस बाल्यकालमें भी अर्हद्भक्ति, भेदभक्ति, अभेदभक्ति आदिके रहस्यको समझकर आत्मधर्मका अभ्यास किया है। आत्मतत्वका निरूपण बडे २ योगियोंके समान करते हैं। ऐसे सत्पुत्रोंको पानेवाले भरतेश्वर सदृश महापुरुषोंका जीवन सचमुचमें धन्य है। उनका सातिशय पुण्य ही ऐसा है जिसके

फलसे ऐसे सुविवेकी पुत्रोंको पाते हैं। वे सदा इस प्रकारकी भावना करते हैं कि:—

" हे परमात्मन्! आप विद्यारूप हैं, पराक्रमी हैं, सद्योजात हैं, शांतस्वरूप हैं। चोद्य पुरुष हैं अर्थात् लोकातिशायी स्वरूपको धारण करनेवाले हैं, भवरोग वैद्य हैं, इसलिए आपकी जय हो।

हे सिद्धात्मन्! आप सातिशयस्वरूपी हैं, रूपातीत हैं, देहरहित हैं, चिन्मय-देहको धारण करनेवाले हैं, मतिगम्य हैं, अप्रतिम हैं, जगद्गुरु हैं, इसलिए मुझे सन्मति प्रदान कीजिये"

इसी विशुद्ध भावनाका फल है कि भरतेश्वर ऐसे विवेकी सत्पुत्रोंको पाते हैं। यह सब अनेक भवोपार्जित सातिशय पुण्यका फल है।

॥ इति विद्यागोष्ठि संधिः ॥

—x—

विरक्ति-संधिः।

भरतेश्वरके कुमार साहित्यसागरमें गोते लगा रहे थे। इतनेमें एक नवीन समाचार आया। हस्तिनापुरके अधिपति मेघेश्वरने[1] समवसरणमें पहुंचकर जिनदीक्षा ली है। इस समाचारके पहुंचते ही वहांपर सन्नाटा छागया। लोग एकदम स्तब्ध हुए। यह कैसा? वह कैसा? एकदम ऐसा क्यों हुआ, इत्यादि चर्चायें होने लगी। जाते समय राज्यको किसके हाथमें सोंपा? क्या अपने सहोदरोंको राज्यप्रदान किया या अपने पुत्रको राज्यका अधिपति बनाया?। इतनेमें मालुम हुआ कि उन्होंने जाते समय अपनेसे छोटे भाई विजयराजको बुलाकर कहा कि भाई! अब तुम राज्यका पालन करो। तब विजयराजने उत्तर दिया कि भाई तुमको छोडकर मैं राज्यका पालन करूं? मेरे लिए धिक्कार

१ सम्राट्का सेनापति जयकुमार.

हो ! इसलिए मैं तुम्हारे साथ ही आता हूं । तदनंतर उससे छोटे भाई जयंतराजको बुलाकर कहा गया कि तुम राज्यका पालन करो । तब जयंतराजने कहा कि भाई ! जिस राज्यको संसारवर्धक समझकर तुमने परित्याग किया है वह राज्य मेरे लिए क्या कल्याणकारी है ? तुम्हारे लिए जो चीज खराब है, वह मेरे लिए अच्छी कैसे हो सकती है ? इसलिए तुम्हारा जो मार्ग है वही मेरा मार्ग है मैं भी तुम्हारे साथ ही आता हूं।

जब जयकुमार अपने भाईयोंको राज्यपालनके लिए मना नहीं सका तो उसने अपने पुत्र अनंतवीर्यको राज्यप्रदानकर पट्टाभिषेक किया। और अपने दोनों सहोदरोंके साथ दीक्षा ली । जयकुमारका पुत्र अनंतवीर्य निरा बालक है, छह वर्षका है । इसलिए नियमपूर्तिके लिए पट्टाभिषेक कर मंत्रियोंके आधीन राज्यको बनाया व उनको योग्य मार्गदर्शन कर स्वतः निश्चिंत होकर दीक्षाके लिए चला गया । अनंतवीर्य बालक था । इसलिए उसे सब व्यवस्था कर जाना पडा । यदि वह योग्य वयस्क होता तो वह अविलंब चला जाता । अस्तु.

इस समाचारके सुनते ही उन सबको बहुत आश्चर्य हुआ । सबने नाकपर उंगली दबाकर " जिन ! जिन ! वे सचमुचमें धन्य हैं ! उनका जीवन सफल है " कहने लगे । और उन सबने उनको परोक्ष नमस्कार किया।

उन सबमें ज्येष्ठ कुमार रविकीर्तिराज है । उन्होंने कहा कि बिलकुल ठीक है । बुद्धिमत्ता, विवेक व ज्ञानका फल तो मोक्षकार्यमें उद्योग करना है । आत्मकार्यका साधन करना यही सम्यग्ज्ञानका प्रयोजन है ।

आत्मतत्वको पानेके लिए ज्ञानकी जरूरत है । परमात्माका ज्ञान होनेपर भी उसपर श्रद्धाकी आवश्यकता है । श्रद्धा व ज्ञानके होनेपर भी काम नहीं चलता । श्रद्धा व ज्ञानके होनेपर भी संयम पालनेके लिए जो लोग अपने सर्वसंगका परित्याग करते हैं वे धन्य हैं ।

मेघेश्वरने खूब संसारसुखका अनुभव किया । राज्यभोगको भोग लिया । अनेक वैभवोंको अनुभव किया । ऐसी परिस्थितिमें इसे हेय

समझकर त्याग किया तो युक्त ही हुआ। परंतु उनके सहोदर विजय व जयंतराजने [राज्यभोगको न भोगकर] इस राज्यलक्ष्मीको मेघमाला समझकर परित्याग किया यह बडी बात है। आश्चर्य है।

अपनी यौवनावस्था व शक्तिको शरीरसुखके लिए न बिगाडकर बहुत संतोषके साथ आत्मसुखके लिए प्रयत्न करनेवाले एवं इस शरीरको तपश्चर्यामें उपयोग करनेवाले वे सचमुचमें महाराज हैं। धन्य है ! यद्यपि हम सब चक्रवर्तिके पुत्र हैं, तथापि हम चक्रवर्ति नहीं है। परंतु वे तीनों भाई चक्रवर्तिके लिए भी वंद्य बन गये हैं। इसलिए वे सुज्ञानचक्रवर्ति धन्य हैं। आजतक वे हमारे पिताजीके आधीन होकर उनके चरणोंमें विनयसे नमस्कार करते थे और राज्य पालन करते थे। परंतु आज हमारे पिताजी भी उनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं। सचमुचमें जिनदीक्षाका महत्व अवर्णनीय है।

परब्रह्म स्वरूपको धारण करनेवाले योगियोंको हमारे पिताजी नमस्कार करें इसमें बडी बात क्या है ? जिस प्रकार भ्रमर जाकर सुगंधित पुष्पोंकी ओर झुक जाते हैं, उसी प्रकार उनके चरणोंमें तीन लोक ही झुक जाता है।

सुजयात्म ! सुनो। सुकांतात्मक ! अरिविजयात्म ! आदि सभी कुमार अच्छी तरह सुनो ! दीक्षाके बराबरी करनेवाला लाभ दुनियामें दूसरा कोई नहीं है। शुक्लध्यानके लिए वह जिनदीक्षा सहकारी है, शुक्लध्यान मुक्तिके लिए सहकारी है। शुक्लध्यानके द्वारा कर्मोंको नाशकर मुक्तिको न जाकर संसारमें परिभ्रमण करनेवाले सचमुचमें अविवेकी हैं। इस प्रकार बहुत खूबीके साथ जिनदीक्षाका वर्णन रविकीर्ति राजने किया।

इस कथनको सुनकर वहां उपस्थित सर्व कुमारोंने उसका समर्थन किया। एवं बहुत हर्ष व्यक्त करते वे हुए अपने मनमें दीक्षा लेनेका विचार करने लगे। उन्होंने विचार किया कि जवानी उतरनेके पहिले, शरीरकी सामर्थ्य घटनेके पहिले एवं स्त्री–पुत्र आदिकी छाया पडनेके पहिले ही

जागृत होना चाहिए। अब हम लोग वयस्कर हुए हैं, यह जानकर पिताजी हमारे सांथ एक एक कन्यावोंका संबंध करेंगे। स्त्रियोंके पाशमें पडनेका जीवन मक्खीका तेलके अंदर पडनेके समान है।

स्त्रीको ग्रहण करनेके बाद सुवर्णको ग्रहण करना चाहिये, सुवर्णको ग्रहण करनेके बाद जमीन जायदादको ग्रहण करना चाहिये! स्त्री, सुवर्ण व जमीनको ग्रहण करनेवाले सज्जन जंग चढे हुए लोहेके समान होते हैं। वस्तुतः इन तीनों पदार्थोंके कारणसे यह मनुष्य संसारमें निरुपयोगी बनता है। और इसी कारणसे मोहकी वृद्धि होकर उसे दीर्घ संसारी बनना पडता है। सबसे पहिले अपने इंद्रियोंकी तृप्तिके लिए उसे कन्याके बंधनमें पडना पडता है, अर्थात् विवाह करलेना पडता है, तदनंतर कन्याग्रहणके बाद उसके लिए आवश्यक जेवर वगैरे बनवाने पडते हैं, एवं अर्थसंचय करना पडता है, एवं बादमें यह भावना होती है कि कुछ जमीन जायदाद स्थावर संपत्ति निर्माण करें। इस प्रकार इन तीनों बातोंसे मनुष्य संसार बंधनसे अच्छी तरह बंध जाता है।

यद्यपि हम लोगोंने कन्याका ग्रहण किया तो हमें सुवर्ण, संपत्ति, राज्य आदिके लिए चिंता करनेकी जरूरत नहीं है। क्योंकि पिताजीके द्वारा अर्जित विपुल संपत्ति व अगणित राज्य मौजूद हैं। परंतु उन सबसे आत्महित तो नहीं हो सकता है। वह सब अपने अधःपतन करनेवाले भवपाशके रूपमें हैं।

विपुल संपत्तिके होनेपर उसका परित्याग करना यह बडी बात है। जवानीमें दीक्षा लेना इसमें महत्व है। एवं परमात्मतत्वको जानना यह जीवनका सार है। इन सबकी प्राप्ति होनेपर हमसे बढकर श्रेष्ठ और कौन हो सकते हैं? कुल, बल, संपत्ति, सौंदर्य इत्यादिके होते

(१) हेण्णु, (कन्या) (२) होन्नु (सुवर्ण) (३) मण्णु (जमीन) मूल ग्रंथकारने हेण्णु, होन्नु, मण्णु इन तीन शब्दोंसे अनुप्रास मिलानेके साथ २ इन तीनोंको ही संसारके मूल होनेका अभिप्राय व्यक्त किया है।

हुए, उन सबसे अपने होमको परित्याग कर तपश्चर्याके लिए इस कायको अर्पण करें तो रूपवती स्त्रीके पतिव्रता होनेके समान विशिष्ट फलदायक है। क्योंकि संपत्ति आदि के होनेपर उनसे मोहका परित्याग करना इसीमें विशेषता है।

स्त्रियोंके पाशमें जबतक यह मन नहीं फसता है तबतक उसमें एक विशिष्ट तेज रहता है। उस पाशमें फसनेके बाद धीरे धीरे दीपककी शोभा को देखकर फसनेवाले कीडेके समान यह मनुष्य जीवनको खो देता है। हथिनीको देखकर जिस प्रकार हाथी फसकर बडे भारी खड्डेमें पडता है एवं जीवनभर अपने स्वातंत्र्यको खो देता है, उसी प्रकार स्त्रियोंके मोह में पडकर भवसागरमें फंसनेवाले अविवेकी, आंखोंके होनेपर भी अंधे हैं।

मछली जिस प्रकार जरासे मांसखंडके लोभमें फंसकर अपने गलेको ही अटका लेती है और अपने प्राणोंको खोती है उसी प्रकार स्त्रियोंके अल्पसुखके लोभसे जन्ममरणरूपी संसारमें फंसना क्या यह बुद्धिमत्ता है?

पहिले तो स्त्रियोंका संग ही भाररूप है। उसमें भी यदि संतानकी उत्पत्ति हो जाय तो वह घोरभार है। इस प्रकार वे कुमार विचार कर संसारके जंजालसे भयभीत हुए।

स्त्री तो पादकी श्रृंखला रूप है और उसमें संतानोत्पत्ति हो जाय तो वह गलेकी श्रृंखला है। इस प्रकार यह स्त्रीपुत्रोंका बंधन सचमुचमें मजबूत बंधन है।

लोग बच्चोंपर प्रेम करते हैं। गोदमें बैठाल लेते हैं। गोदमें ही बच्चे टट्टी करते हैं, मल छोडते हैं, उस समय यह छी, थू कहने लगता है, यह प्रेम एक भ्रांतिरूप है।

प्रेमके वशीभूत होकर बच्चोंके साथ बैठकर भोजन करते हैं परंतु वे बच्चे भोजनके समय ही पायखाना करते हैं। इतनेमें इसके प्रेममें भंग आता है। यह एक विचित्रता है।

स्त्रियोंको कोई रोग आवे तो उनका शरीर दुर्गंधसे भरा रहता है। तब पति अपने मुखको दुर्गंधके मारे इधर उधर फिरा लेता है। परंतु यह विचार नहीं करता है कि यह मोह ही मायाजाल स्वरूप है। व्यर्थ ही वह ऐसे दुर्गंधमय शरीरपर मुग्ध होता है।

स्त्रियां जब गर्भिणी होजाती है, प्रसूत होती है एवं मासिकधर्मसे बाहर बैठती हैं, तब उनके शरीरसे शुक्ल, शोणित व दुर्मलका निर्गमन होता है। वह अत्यंत घृणास्पद है। परंतु ऐसे शरीरमें भी भैंसे जैसे कीचडमें पडते हैं, उसी प्रकार अविवेकी जन सुख मानते हैं, खेद है!

मूत्रोत्पातिके लिए स्थानभूत जननस्थानके प्रति मोहित होकर मुक्तिको भूलकर यह अविवेकी जननिंद्य जीवनको धारण करते हैं। परंतु हम सच्चरित्र होकर इसमें फंसे तो कितनी लज्जास्पद बात होगी? इस प्रकार उन कुमारोंने विचार किया।

सुखके लिए स्त्री और पुरुष दोनों एकांतमें क्रीडा करते हैं। परंतु गर्भ रहनेके बाद वह बात छिपी नहीं रह सकती है। लोकमें वह प्रकट हो जाती है। गर्भिणीका मुख म्लान हो जाता है, रोती है, कष्ट उठाती है, प्रसववेदनासे बढकर लोकमें कोई दुःख नहीं है। सुखका फल जब दुःख है तो उस सुखके लिए धिःक्कार हो।

एक बूंदके समान सुखके लिए पर्वतके समान दुःखको भोगनेके लिए यह मनुष्य तैयार होता है, आश्चर्य है। यदि दुःखके कारणभूत इन पंचेंद्रिय विषयोंका परित्याग करें तो सुख पर्वतप्राय हो जाता है, और संसार सागर बूंदके समान हो जाता है। परंतु अविवेकी जन इस बातको विचार नहीं करते हैं।

स्वर्गकी देवांगनावोंके सुंदर शरीरके संसर्गसे भी इस आत्माको तृप्ति नहीं हुई। फिर इस दुर्गंधमय शरीरको धारण करनेवाली मानवी स्त्रियोंके भोगसे क्या यह तृप्त हो सकता है? असंभव है।

सुरलोक, नरलोक, नागलोक एवं तिरियंच लोककी स्त्रियोंको अनेक

वार भोगते हुए यह आत्मा भवमें परिभ्रमण कर रहा है। फिर क्या उसकी तृप्ति हुई ? नहीं ! और न हो सकती है। जिनको प्यास लगी है वे यदि नमकीन पानीको पीवें तो जिस प्रकार उनकी प्यास बढती ही जाती है, उसी प्रकार अपने कामविकारकी तृप्तिके लिए यदि स्त्रियोंको भोगे तो वह विकार और भी बढता जाता है, तृप्ति होती नहीं। और स्त्रियोंकी आशा भी बढती जाती है।

अग्नि पानीसे बुझती है। परंतु घीसे बढती है। इसी प्रकार कामाग्नि सच्चिदानंद आत्मरससे बुझती है, और स्त्रियोंके संसर्गसे बढती है। भोगके भोगसे भोगकी इच्छा बढती है, यह नियम है। केवल कामाग्नि नहीं, पंचेंद्रियके नामसे प्रसिद्ध पंचाग्नि उनके लिए इष्ट पदार्थोंके प्रदान करनेपर बढती हैं। परंतु उनसे उपेक्षित होकर आत्मारामें मग्न होनेपर वह पंचाग्नि अपने आप बुझती हैं।

स्नान, भोजन, गंध, पुष्प, भूषण, पान, गान, तांबूल, दुकूल [वस्त्र] इत्यादि आत्माको तृप्त नहीं कर सकते हैं। आत्माकी तृप्ति तो आत्मध्यान से ही हो सकती है।

इसलिए आज अल्पसुखकी अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। यदि संसारके मोहको छोडकर ध्यानका अवलंबन करें तो वह ध्यान आगे जाकर अवश्य मुक्तिको प्रदान करेगा। इसलिए आज इधर उधरके विचार को छोडकर दीक्षाको ग्रहण करना चाहिए। इस बातको सुनते ही सब लोगोंने उसे हर्षपूर्वक समर्थन किया।

अपन सब कैलासपर्वतपर चलें, वहांपर मेरुपर्वतके समान उन्नतरूपमें विराजमान भगवान् आदिप्रभुके चरणोंमें पहुंचकर दीक्षा लेवें।

इस वचनको सुनते ही सब कुमार आनंदसे उठ खडे हुए। उनमें कोई २ कहने लगे कि हम लोग पिताजीके पास पहुंचकर उनकी अनुमति लेकर दीक्षा लेनेके लिए जायेंगे। उत्तरमें कोई कहने लगे कि यदि पिताजीके पास पहुंचे तो दीक्षाके लिए अनुमति नहीं मिल सकती है। फिर वह कार्य नहीं बन सकता है।

और कोई कहने लगे कि पिताजीको एकवार समझाकर आ सकते हैं, परंतु हमारी माताओंकी अनुमति पाना असंभव है, इसलिए उनके पास जाना उचित नहीं है। हम हमारी मातावोंके पास जाकर कहें कि दीक्षाके लिए अनुमति दीजिये, तो क्या वे सीधी तरहसे यह कहेंगी कि बेटा! जाओ, तुमने बहुत अच्छा विचार किया है। यह कभी नहीं हो सकता है। उलटा वे हमारे गले पडकर रोयेंगी। फिर हमारा जाना मुश्किल हो जायगा।

कोई कहने लगे कि हमें चिंता किस बातकी है ? क्या आभूषणोंको ले जाकर उन्हें सोंपना है ? या हमारे बालबच्चोंको सम्हालनेके लिए उनको कहकर आना है अथवा हमारी स्त्रियोंके संरक्षणके लिए कहकर आना है ? फिर क्या है ? उनकी हमें चिंता ही क्यों है ? हमें यदि उनकी चिंता नहीं है तो उनको भी हमारी चिंता ही क्या है ? क्योंकि उनको हम सरीखे हजारों पुत्र हैं।

हमारी लिहाज या जरूरत उनको नहीं है। उनकी जरूरत हमें नहीं है। उनके लिए वे हैं, हमारे लिए हम। विचार करनेपर इस भवमालामें कौन किसके हैं ? यह सब भ्रांति है।

पुत्र पिता होता है। पिता उसी जन्ममें अपने पुत्रका ही पुत्र बनता है। पुत्री माता होती है। उसी प्रकार उसी जन्ममें माता पुत्रीकी पुत्री बन जाती है। बडा भाई छोटा भाई बन जाता है। छोटा भी बडा होता है। स्त्री पुरुष होती है, पुरुष स्त्रीयोनि में उत्पन्न होता है। यह सब कर्मचरित है।

शत्रु कभी मित्र बनता है। मित्र भी शत्रु बन जाता है। परिवर्तनशील इस संसारकी स्थितिका क्या वर्णन करना। यहांपर सर्व व्यवस्था परिवर्तनरूप है। अनिश्चित है। इसलिए कौन किसका भरोसा करें।

माताके गर्भसे आते हुए साथमें लाया हुआ यह काय भी हमसे भिन्न है, हमारा नहीं है, फिर माता पिताओंकी बात ही क्या है ?

इसलिए विशेष विचार करनेकी जरूरत नहीं। "हंसनाथाय नमः स्वाहा" यह दीक्षाके लिए उचित समय है। अब अविलंब दीक्षा लेनी चाहिए। अपन सब लोग चलें।

यदि नौकर लोग यहांसे गये तो पिताजीसे जाकर कहेंगे। एवं हमें दीक्षाके लिए विघ्न उपस्थित होगा, इस विचारसे उनको अनेक तंत्र व उपायोंसे फंसाकर अपने साथ ही वे कुमार ले गये। उनको बीचमें अनेक बातोंमें लगाकर इधर उधर जाने नहीं देते थे।

वीर योद्धा युद्धके लिए अनुमति पानेके हेतु जिस प्रकार अपने स्वामीके पास जाते हैं, उसी प्रकार "स्वामिन्! दीक्षा दो, हम लोग यमको मार भगायेंगे" यह कहनेके लिए अपने दादाके पास वे जा रहे थे।

स्वामिन्! अरिकर्मोंको हम जलायेंगे, मोक्षरूपी किलेको अपने वशमें करेंगे, यह हमारी प्रतिज्ञा है, इसे आप लिख रक्खें, यह कहनेके लिए आदिप्रभुके पास वे जा रहे हैं।

वे जिस समय जा रहे थे मार्गमें अनेक नगरोंमें प्रजाजन पूछ रहे थे कि स्वामिन्! कहां पधार रहे हैं? उत्तरमें वे कुमार कहते हैं कि कैलासपर्वतपर आदिप्रभुके दर्शनके लिए जा रहे हैं। पुनः वे पूछते हैं कि चलते हुये क्यों जा रहे हैं। वाहनादिको ग्रहण कीजिये। उत्तरमें वे कहते हैं कि भगवंतका दर्शन जबतक नहीं होता है तबतक मार्गमें हमारा वैसा ही नियम है। इसलिए वाहनादिककी जरूरत नहीं है।

इस समाचारको जानते ही प्रजाजन आगे जाकर सर्व नगरवासियोंको समाचार देते थे कि आज हमारे स्वामीके कुमार कैलासवंदनाके लिए जाते हैं। इस निमित्त उनका सर्वत्र स्वागत हो, और ग्राम नगरादिककी शोभा करें। इस प्रकार सर्वत्र हर्षसे उत्सव मनाये जाने लगे।

स्थान स्थानपर उन कुमारोंका स्वागत हो रहा है, नगर, मंदिर, महल वगैरे सजाये गये हैं। प्रजाजनोंकी इच्छानुसार अनेक मुक्कामोंमें विश्रांति लेकर वे कुमार कैलास पर्वतके समीप पहुंचे।

भरतेश्वरके सुकुमारोंकी चित्तवृत्तिको देखकर पाठकोंको आश्चर्य हुए विना न रहेगा। इतने अल्पवयमें भी इतने उच्चविचार, संसार-भीरुता, वैराग्यसंपन्नविवेक पुण्यपुरुषोंको ही हो सकता है। काम क्रोधादिक विकारोंके उत्पन्न होनेके लिए जो साधकतम अवस्था है, उस समय आत्मानुभव करने योग्य शांतविचारका उत्पन्न होना बहुत ही कठिन है। ऐसे सुपुत्रोंको पानेवाले भरतेश्वर धन्य हैं। यह तो उनके अनेक भवोपार्जित सातिशय पुण्यका ही फल है कि उन्होंने ऐसे विवेकी ज्ञान-गुण संपन्न सुपुत्रोंको पाया है, जिन्होंने बाल्यकालमें ही संसारके सारका अच्छी तरह ज्ञान कर लिया है। इसका एक मात्र कारण यह है कि भरतेश्वर सदा तद्रूप भावना करते हैं।

"हे परमात्मन्! आप सुज्ञानस्वरूपी हैं। सुज्ञान ही आपका शरीर है। सुज्ञान ही आपका श्रृंगार व भूषण है। इसलिए हे सुज्ञानसूर्य! मेरे अंतरंगमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! आप मुक्तिलक्ष्मीके अधिपति हैं, ज्ञानके समुद्र हैं। दिव्यगुणोंके आधारभूत हैं। वचनके लिए अगोचर हैं। तीन लोकके अधिपति हैं। सूर्यके समान उज्वल प्रकाशसे युक्त हैं। इसलिए हे निरंजनसिद्ध! मुझे सन्मतिप्रदान कीजिये।

॥ इति विरक्तिसंधिः ॥

—×—

अथ समवसरण संधिः।

भरतजीके सौ कुमार आपसमें प्रेमसे बातचीत करते हुए भगवान् आदि प्रभुके दर्शनके लिए कैलासपर्वतकी ओर जा रहे हैं। दूरसे कैलास पर्वतको देखकर वे आनंदित हुए।

सफेद आकाश भूमिके अंदर अंकुरित होकर ऊपर फूलकर पर्वतके रूपमें बन गया हो, इस प्रकार वह कैलासपर्वत अत्यंत सुंदर मालुम हो रहा था। और चांदनी रात होनेसे और भी अधिक चमक रहा था।

अनेक चंद्रमंडल मिलकर यह एक पर्वत तो नहीं बना है ? अथवा यह चंद्रगिरी है या रजतगिरी है। इस प्रकार इंद्रवैभवयुक्त वे कुमार विचार कर देखने लगे। क्षीरसमुद्र ही पर्वतके रूपमें तो नहीं बना है ? यह तो चित्तको बहुत ज्यादा आकर्षित कर रहा है। क्या यह क्षीरपर्वत है या रजतपर्वत है ? क्या ही अच्छा है ? इस प्रकार प्रशंसा करने लगे।

भगवान् आदिप्रभुकी धवलकीर्ति ही मूर्तस्वरूपको पाकर यह पर्वत तो नहीं बनी है ? अथवा भव्योंका पुण्य पर्वत बन गया है ! जिन ! जिन ! आश्चर्य है। यह कहते हुए वे उस पर्वतके पास पहुंचे।

उस पर्वतको देखकर उनके हृदयमें उसके प्रति आदर उत्पन्न हुआ। सुवर्णपर्वत पांच हैं। रजताद्रि तो एक सौ सत्तर हैं, परंतु हे पर्वतराज ! तुम्हारे समान समवसरणको धारण करनेका भाग्य उन पर्वतोंको कहां है।

सिद्धलोकको जानेके लिए यह एक सूचना है। इसपर चढना सिद्धशिलापर चढनेके समान है। यह विचार करते हुए एवं वचनसे 'सिद्धं नमो' यह उच्चारण कर उन्होंने उस पर्वतपर चढनेके लिए प्रारंभ किया। मनमें अत्यंत सुंदर विचार करते हुए, पंक्तिबद्ध होकर वे कुमार उस कैलासपर्वतपर अब चढ रहे हैं। उस समय अपने मनमें कुछ विचार कर वीरंजय राजकुमारने बडे भाई रविकीर्ति राजसे एक प्रश्न किया। भाई ! आपने एक वार पिताजीके साथ भगवान् का दर्शन किया है, तो भगवंतकी दरबार कैसी है उसका कृपाकर वर्णन तो कीजिये।

रविकीर्तिराजने उत्तरमें कहा कि भाई ! खूब ! तुमने ऐसा प्रश्न किया, जैसे कोई किसी बडे नगरको देखनेके लिए जाता है तो बाहरकी गलीमें पहुंचनेके बाद नगरका वर्णन सुनना चाहता है। इसी प्रकार अपन कैलास पर चढ रहे हैं, और शीघ्र समवसरणमें पहुंचेगे। अब तो बिलकुल पासमें है। ऐसी अवस्थामें समवसरणका वर्णन सुनना चाहते हो। आप लोग चलो, वह समवसरण कैसा है अपनी आंखोंसे ही देखोगे।

तब वीरंजयकुमारने कहा कि भाई! आप यदि समवसरणका वर्णन करें तो हम लोग उसे सुनते २ रास्ता जल्दी तय करेंगे। और लोकैकगुरु श्रीभगवंतका पुण्यकथन हम लोगोंने श्रवण किया तो आपका क्या बिगडता है? कहिये तो सही।

तब रविकीर्तिराजने कहा कि भाई! तो फिर सुनो। मैं अपने पिता के साथ भगवंतका दर्शन कर चुका हूं। वे प्रभु जिस समवसरणमें विराजमान है, वह तो लोकके लिए एक विचित्र वस्तु है।

जिनसभा, जिनवास, समवसरण व जिनपुर यह सब एक ही अर्थके वाचक शब्द हैं। जिनेंद्र भगवंत जिस स्थानमें रहते हैं उसी स्थानको इस नामसे कहते हैं। उसका मैं वर्णन करता हूं, सुनो!

इस कैलासको स्पर्श न कर अर्थात् पर्वतसे पांच हजार धनुष छोडकर आकाश प्रदेशमें वह समवसरण विराजमान है। उसके अतिशयका क्या वर्णन करूं?

उस समवसरणके लिए कोई आधार नहीं है। परंतु तीन लोकके लिए वह आधारभूत राजमहलके समान है। ऐसी अवस्थामें इस भूलोकको वह अत्यंत आश्चर्यकारक है।

दुनियामें हर तरहसे कोई निस्पृह है तो भगवान अर्हतप्रभु है। इसलिए उनको किसी भी प्रकारकी पराधीनता नहीं है। वे अपनी स्थितिके लिए भी महल, समवसरण, पर्वत आदिके आधारकी अपेक्षा नहीं करते हैं। इसलिए लोकोत्तर महापुरुष कहलाते हैं। देवेंद्रकी आज्ञासे कुबेर इंद्रनीलमणीकी फरसीसे युक्त समवसरणका निर्माण करता है। वह चंद्रमंडलके समान वृत्ताकार है और वह दिवसेंद्रयोजनके विस्तारसे युक्त है। देखने व कहनेके लिए तो वह बारह कोस प्रमाण है, तथापि कितने ही लोग उसमें आवें समाजाते हैं। करोडों योजनके विस्तारका आकाश प्रदेश जिस प्रकार अवकाश देता है, उसी प्रकार समागत भव्योंके लिए स्थान देनेकी उसमें सामर्थ्य है। जिस प्रकार हजारों

नदियां आकर मिलें, और पानी कितना ही बरसे तो भी समुद्र उस पानीको अपनेमें समा लेता है व अपनी मर्यादासे बाहर नहीं जाता है, उसी प्रकार वह समवसरण आये हुए समस्त भव्योंके लिए स्थान देता है।

समवसरणकी जमीन तो इंद्रनीलमणिसे निर्मित है, परन्तु वहांका गोपुर, द्वार, वेदिका, परकोटा आदि तो नवरत्न व सुवर्णसे निर्मित है, इसलिए अनेक मिश्रवर्णसे सुशोभित होते हैं।

इंद्रगोपसे निर्मित यह क्षेत्र तो नहीं है ? अथवा इंद्रचापसे निर्मित भूमि है ? इस प्रकार लोगोंको आश्चर्यमें डालते हुए चंद्रार्ककोटि प्रकाशसे युक्त जिनेंद्र भगवंतकी नगरी सुशोभित हो रही है।

अंबर (आकाश) रूपी समुद्रमें स्थित कदंब वर्णके कमलके समान वह समवसरण सुशोभित हो रहा है। उसका प्रकाश दशों दिशावोंमें फैल रहा है। इसलिए प्रकाशमंडलकी बीच वह कदंबवर्णके सूर्यके समान मालुम होता है। भाई ! विशेष क्या कहूं ? वह समवसरण उष्णतारहित सूर्यबिंबके समान है। कलंकरहित चंद्रबिंबके समान है। अथवा पर्वतराजके लिए उपयुक्त दर्पणके समान है, इस प्रकार आदिप्रभुका पुर अत्यंत सुंदर है।

अपनी कांतिसे विश्वभरमें व्याप्त होकर समुद्रमें एक स्थानमें ठहराये हुए नवरत्ननिर्मित जहाजके समान मालुम होता है।

जिस समय उसका आकाशमें विहार होता है उस समय प्रकाशरूपी समुद्रमें जहाजके समान मालुम होता है, और जहां ठहरनेका होता है वहां ठहर जाता है, जैसा कि नाविककी इच्छानुसार जहाजकी गतिस्थिति होती है।

पुण्यात्मावोंके पुण्यबलसे तीर्थंकरका विहार उनके प्रांतकी ओर हो जावे तो पुण्यके समान वह भी उनके पीछे ही आ जाता है। जब भगवंत कैलासपर विराजते हैं वह भी वहींपर आकर ठहर जाता है।

भाई ! जिस प्रकार कोई वाहनको एक जगहसे दूसरी जगहको चलाते हैं, उस प्रकार भगवान् तो एक बडे नगरको ही एक जगहसे दूसरी जगहको ले जाते हैं। क्या इनकी महिमा सामान्य है ?

चारों दिशाओंसे रत्नसोपान निर्मित है। और रत्नसोपानको लगकर वह जिननगर विराजमान है। ऐसा मालुम होता है इस कैलासपर्वतके ऊपर नवरत्नमय एक पर्वत ही खडा हो।

भाई ! उस समवसरणको ९ प्राकार मौजूद हैं। उनमें एक तो नवरत्नसे निर्मित है। एक माणिक्यरत्नसे निर्मित है। और पांच सुवर्णसे निर्मित हैं। और दो स्फटिकरत्नसे निर्मित हैं। इस प्रकार ९ परकोटोंसे वह देवनगरी वेष्ठित है। पहिला परकोटा नवरत्न निर्मित है, तदनंतर दो सुवर्णके द्वारा निर्मित हैं। आगेका एक पद्मरागमणिसे निर्मित है। तदनंतर तीन सुवर्णसे निर्मित हैं। तदनंतर दो स्फटिकसे निर्मित हैं।

समवसरणके वर्णनमें ४ साल व पांच वेदिकाओंका वर्णन करते हैं। इन ९ परकोटोंसे ही ४ साल और पांच वेदिकाओंका विभाग होता है।

चारों दिशावोंमें चार द्वार हैं। और चारों ही द्वारोंके बाहर अत्यंत उन्नत चार मानस्तंभ विराजमान हैं।

९ परकोटोंमें ८ परकोटोंके द्वारपर द्वारपालक हैं। नवमें परकोटके द्वारपर द्वारपालक नहीं है। उन परकोटोंके बीचकी भूमिका वर्णन सुनो।

पहिले प्राकारमें सुवर्णसे निर्मित गोपुर, रत्नसे निर्मित जिनमंदिर सुशोमित हो रहे हैं। उससे आगे उत्तम तीर्थगंधोदक नदीके रूपमें दूसरी प्राकारभूमिमें वह रहा है। अत्यंत हृद्य सुगंधसे युक्त फूलका बगीचा अनवद्य तीसरें प्राकारभूतलपर मौजूद है। एवं चौथी प्राकार भूमीमें उद्यान वन, चैत्यवृक्ष वगैरे मौजूद हैं। पांचवी भूमिमें हाथी, घोडा बैल आदि भव्य तिर्यंच प्राणी रहते हैं। छठी वेदिकामें कल्पवृक्ष सिद्धवृक्ष आदि सुशोभित हो रहे हैं। ७ वीं वेदिका जिनगीत वाद्य

नृत्य आदिके द्वारा सुशोभित हो रही है। आठवीं वेदिकामें मुनिगण, देवगण, मनुष्य आदि भव्य विराजमान हैं। इस प्रकार समवसरणकी आठ वेदिकाओंका वर्णन है।

अब नवम दरवाजेके अंदरकी बात सुनो। उसका वर्णन करता हूं। द्वारपालसे विरहित नवम प्राकारमें तीन पीठ विराजमान है। भाई ! वीरंजय ! उनकी शोभाको सुनो !

एक पीठ वैडूर्यरत्नके द्वारा निर्मित है, उसके ऊपर सुवर्णके द्वारा निर्मित दूसरा पीठ है। उसके ऊपर अनेक रत्नोंसे निर्मित पीठ हैं। इस प्रकार रत्नत्रयके समान एकके ऊपर एक, पीठत्रय विराजमान हैं।

सबसे ऊपरके पीठपर अनेक रत्नोंके द्वारा कीलित चार सिंह हैं। उनकी आंखे खुली व लाल, उठा हुआ पुच्छ, एवं केशर, जटाजाल विखरा हुआ है। पूर्व, पश्चिम, दक्षिण व उत्तर दिशाकी ओर उनमें एकेक सिंहकी दृष्टि है। उनको देखनेपर मालुम होता है कि वे कृत्रिम नहीं हैं। साक्षात् जीवसहित सिंह ही हैं। उन सिंहोंके ऊपर एक सुवर्ण-कमल हजार दलसे युक्त है। केशर व कर्णिकासे युक्त होनेके कारण दशोंही दिशाओंको अपने सुगंधसे व्याप्त कर रहा है।

उस पद्मकर्णिकासे ४ अंगुल स्थानको छोडकर आकाशमें पद्मराग-मणिकी कांतिसे युक्त पादकमलको धारण करनेवाले भगवान् आदि प्रभु पद्मासनमें विराजमान हैं।

दो करोड बालसूर्योंके एकत्र मिलनेपर जिस प्रकार कांति होती है उसी प्रकार की सुंदर देहकांतिसे युक्त भगवंत कांतिके समुद्रमें ही विराजमान हैं। तीन लोकके लिए यह एक ही देव है, यह लोकको सूचित करते हुए मोतियोंसे निर्मित छत्रत्रय सुशोभित हो रहे हैं।

देवगण शुभ्र चौसठ चामर भगवानके ऊपर डोल रहे हैं। मालुम होता है कि भगवंत क्षीरसमुद्रके तरंगके ऊपर ही अपनी दरबारको लगाये हुए हैं।

जिनेंद्रके रूपको देखकर इंद्रचापने स्थिरताको धारण कर लिया हो जैसा भामंडल शोभाको प्राप्त हो रहा है ।

भगवंतके दर्शन करने पर शोक नहीं है । इस बातको अपने आकार से लोकको घंटाघोषसे कहते हुए नवरत्नमय अशोकवृक्ष विराजमान है ।

आकाशमें खडे होकर स्वर्गीय देवगण वृषभपताक ! हे भगवन् ! आपकी जय हो, इस प्रकार कहते हुए स्वर्गलोकके पुष्पोंकी वृष्टि लोकनाथके मस्तकपर कर रहे हैं ।

दिमि दिमि, दंधण, धगदिमि, दिमिकु मुं मूं मुं मूं इत्यादि रूपसे उस समवसरणमें शंख पटह आदि सुंदर वाद्योंके शब्द सुनाई दे रहे हैं ।

दिव्यवाणीश भगवंतके मुखकमलसे नव्य, दिव्य मृदु, मधुर, गंभीरतासे युक्त एवं भव्य लोकके लिए हितकर दिव्यध्वनिकी उत्पत्ति होती है ।

पुष्पवृष्टि, अशोकवृक्ष, छत्रत्रय, चामर, दिव्यध्वनि, भामंडल, भेरी, सिंहासन, ये ही भगवंतके सातिशय अष्ट चिन्ह हैं । इन्हींको अष्ट महाप्रातिहार्यके नामसे भी कहते हैं ।

भाई ! और एक आश्चर्यकी बात सुनो ! समवसरणमें विराजमान भगवंतको एक ही मुख है, तथापि चारों ही दिशावोंसे आकर भव्य खडे होकर देखें तो चारों ही तरफसे मुख दिखते हैं । इसलिए वे प्रभु चतुर्मुखके समान दिखते हैं ।

भगवंतके दस अतिशय तो जनन समयमें ही प्राप्त होते हैं । और दस अतिशय घातिया कर्मोंके नाश करनेसे प्राप्त होते हैं । और देवोंके द्वारा भक्तिसे निर्मित अतिशय चौदह हैं । इस प्रकार भगवंत चौतीस अतिशयोंसे युक्त हैं ।

आठमी भूमि और नवमी भूमि, इस प्रकार दोनोंको मिलाकर कोई कोई लक्ष्मीमंडपके नामसे वर्णन करते हैं ।

मुनिगण आदि लेकर द्वादशांग सभाकी संपत्ति व त्रिलोकाधिनाथके होनेसे इस प्रदेशको लक्ष्मीमंडप या श्रीमंडपके नामसे कहा जाय, यह

उचित ही है। अत्यंत सुंदर सुवर्ण निर्मितस्तंभ व नवरत्नसे निर्मित शिखर और माणिक्यसे निर्मित कलश होनेसे उसे गंधकुटीके नामसे भी कहते हैं। चार सिंहोंके ऊपर जो सहस्रदल कमल विराजमान है, उसका सुगंध, देवोंके द्वारा होनेवाली पुष्पवृष्टिका सुगंध, एवं त्रिलोकाधिपति तीर्थंकर प्रभुके शरीरका सुगंध, इनसे वह भरी हुई है, इसलिए उसे गंधकुटी कह सकते हैं।

आठमी भूमिको गणभूमिके नामसे भी कहते हैं। क्योंकि वहांपर गणधरादि योगी विराजमान हैं। वहांपर बारह कोष्टक हैं। उन बारह कोष्टकोंमें गणधरादि बारह प्रकारके भव्य विराजमान होकर तत्वश्रवण करते हैं।

मुनिगण, देवांगनायें, अर्जिकायें, ज्योतिर्लोककी देवांगनायें, व्यंतर देवियां, नागकन्यायें, भवनवासी देव, व्यंतरदेव ज्योतिष्क देव, वैमानिक देव, मनुष्य व अंतिमकोष्टकमें सिंह इस प्रकार बारह गण क्रमसे विराजमान है।

भगवान् पूर्वाभिमुख होकर विराजमान हैं। परंतु द्वादशगण उनको प्रदक्षिणा देकर अपने २ स्थानपर बैठते हैं। जिनेंद्र भगवंतके सामने ही सब विराजते हैं। सबसे पहिले ऋषि, अंतिम कोष्टकमें सिंह। इस प्रकार वहांकी व्यवस्था है। आसन्नभव्य ! वीरंजय ! सुनो ! गणभेदसे बारह विभाग है ! गुणभेदसे तेरह भेद हैं। उसके रहस्यको भी खोलकर कहता हूं। अच्छी तरह सुनो।

जिस प्रकार राजाको मंत्रिगण होते हैं, उसी प्रकार तीन लोकके प्रभुकी दरबारमें भी चौरासी गणधर मंत्रिस्थानमें रहते हैं। वे गणधरके नामसे विख्यात हैं। अनुज सुनो ! श्रुतज्ञानसागर व चौदह पूर्व शास्त्रोंको धारण करनेवाले योगी उस दरबारमें चार हजार सातसौ पचास (४७५०) हैं।

सप्त तत्वोंमें चार तत्व अर्थात् जीव, संवर, निर्जरा व मोक्ष ये उपादेय हैं, और अजीव, आस्रव, बंध ये तीन तत्व हेय हैं। वहांपर ऐसे योगिगण हैं, जो भव्योंको सदा यह उपदेश देते हैं कि चारतत्वोंको

कसो (ग्रहणकरो) और तीन तत्वोंके जालमें मत फंसो। इस प्रकार उपदेश देनेवाले शिक्षक योगिगण उस समवसरणमें चार हजार एकसौ पचास (४१९०) विराजमान हैं।

उत्तम ध्यान कोई चीज नहीं है। वह प्राप्त नहीं हो सकता है, इस प्रकार तत्वविरुद्ध भाषण करनेवालोंके मुंह वादसे बंद करनेवाले वादी योगिराज वहांपर बारह हजार सात सौ पचास (१२७५०) हैं।

अणिमा महिमा आदि विक्रयावोंमें क्षणमें एक विक्रियाको दिखानेमें समर्थ विक्रियाऋद्धिके धारक योगिराज वहांपर २६००० संख्यामें हैं।

युवराज ! सुनो ! पिछले व अगले जन्मके विषयको प्रत्यक्ष देखे हुएके समान प्रतिपादन करनेवाले अवधिज्ञानके धारक योगिगण वहांपर ९००० संख्यामें हैं।

भाई ! कोई मनमें कुछ भी विचार करें उसे कहनेके पहिले ही बतलानेमें समर्थ मनःपर्यय ज्ञानके धारी मुनिराज उस समवसरणमें १२७५० की संख्यामें हैं।

भगवंतकी चारों ओर बीस हजार केवली विद्यमान हैं। भगवान्के समान ही उनको सुख है, शक्ति है, एवं ज्ञान है।

पवित्र संयमको धारण करनेवाली अर्जिकायें वहांपर साडे तीन लाख विराज रही हैं।

उस समवसरणमें तद्भव मोक्षगामी व भेदाभेद भक्तिके भावक सुव्रतके धारक श्रावक तीन लाखकी संख्यामें हैं।

भाई सुनो ! भगवानके दरबारमें सुव्रताको आदि लेकर स्त्रियां पांच लाख हैं। सुर, नाग, नक्षत्र, यक्ष, किंपुरुष, गंधर्व, ये देव व देवांगनावोंकी संख्याकी गणना नहीं हो सकती है, इसलिए वे असंख्यात हैं।

भाई ! लोकके मनुष्योंपर प्रभाव डालना कौनसी बडी बात है ! आखेरके कोष्ठकमें पक्षी सिंह, मृग आदि भव्य तिर्यंच प्राणी अगणित प्रमाणमें हैं।

इस प्रकार भगवंतके दरबारमें गणधर, श्रुतधर, वादि, शिक्षक, जिन, अणिमादि ऋद्धिधारक; अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, आदि उपर्युक्त विवेचनके अनुसार तेरह गण विद्यमान है।

देवगण व सिंहगणके लिए कोई संख्या नहीं है। उसके साथ बाकीके ११ गणकी संख्या मिले तो ५९१६ कम १२ लाख ४० हजार होती है।

पहिले बारह गणोंका भेद कहा गया, और फिर तेरह गुणोंके भेदसे १३ गण भेदका वर्णन किया। अब दूसरे एक दृष्टिकोणसे विचार किया तो वहांपर १०० इंद्र और एक आचार्यगण इस प्रकार १०१ गणके भेदसे विभाग होता है।

यहांतक जो कुछ भी वर्णन किया गया वह भगवान्की बाह्यसंपत्तिका है। अब सुनो! मैं भगवंतकी अंतरंगसंपत्तिका वर्णन करता हूं।

वह परमात्मा उनके दिव्य चरणकमलसे मस्तकपर्यंत सर्वांगमें व्याप्त होकर रहता है। आपादमस्तक उज्वलप्रकाश रत्नदीपककी सुंदरकांतिके समान वह मालुम होता है। प्रकाश व रत्नदीप जिस प्रकार अलग २ नहीं है, उसी प्रकार आत्मप्रकाशके रूपमें ही वह विद्यमान है। उस प्रकाशका ही तो नाम सुज्ञान है। बोलनेमें दो पदार्थ मालुम होते हैं। परंतु यथार्थमें विचार करनेपर एक ही पदार्थ है।

अग्निको उष्ण कहते हैं, प्रकाशयुक्त भी कहते हैं। विचार करनेपर अग्नि एक ही पदार्थ है। इसी प्रकार सुप्रकाश व सुज्ञानका दो पदार्थोंके रूपमें उल्लेख होनेपर भी वस्तुतः वे दोनों पदार्थ एक ही हैं।

कभी कभी अग्नि, प्रकाश व उष्णता इन तीन विभागोंसे भी आगका कथन हो सकता है, परंतु अग्निमें तो सभी अंतर्भूत होते हैं। इसी प्रकार जीव, ज्ञान व प्रकाश ये तीन पदार्थ दिखनेपर भी आत्माके नामसे कहनेपर एक ही पदार्थ है, उसीमें सभी अंतर्भूत होते हैं।

पुरुषाकारके रत्नके सांचेमें रक्खे हुए स्फटिकसे निर्मित पुरुषके समान वह आत्मा शरीरके अंदर रहता है।

वह स्फटिकके सदृश पुरुष होनेपर भी इस चर्मचक्षुके लिए गोचर नहीं हो सकता है। वह तीर्थंकर आत्मा आकाशके रूपमें प्रकाशमय स्वरूपमें विद्यमान है।

कांचके पात्रमें दीपक रखनेपर जिस प्रकार उसकी ज्योति बाहर निकलती है व बाहरसे स्पष्ट दिखती है, उसी प्रकार भगवंतके परमौदारिक–दिव्यशरीरसे वह आत्मकांति बाहर आ रही है।

सूर्यकिरण जिस प्रकार शोभित होता है उसी प्रकार अनंतज्ञान व अनंतदर्शनका किरण सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। क्योंकि परमगुरु भगवंतने पूर्वोक्त ध्यानके बलसे ज्ञानावरण व दर्शनावरण कर्मका नाश किया है।

अंगुष्ठसे लेकर मस्तकतक वह भगवंत सुज्ञानसे सुशोभित हो रहा है। अंगुष्ठके अणुमात्र प्रदेशमें जितना ज्ञान है, उससे उनको समस्त लोकका परिज्ञान होता है। उस सर्वांगपरिपूरित ज्ञानका क्या वर्णन करना?

अनंतज्ञान सर्वांगपरिपूरित है। अनंत दर्शन गुण भी अत्यंत शोभाको प्राप्त हो रहा है। तीन लोकके अंदर व बाहर वह भगवंत सदा जानते व देखते हैं।

अत्यंत स्वच्छ रत्नदर्पणके सामने रखे हुए पदार्थ जिस प्रकार उसमें प्रतिबिंबित होते हैं, उसी प्रकार पादसे लेकर मस्तकतकके आत्मप्रदेशमें तीन लोक ही प्रतिबिंबित होता है।

कांसेका स्वच्छ पाटा हो तो उसमें एक ही तरफसे पदार्थ दीख सकते हैं, परंतु स्वच्छ रत्नदर्पणमें तो दोनों तरफसे पदार्थ प्रतिबिंबित होते हैं। इसी प्रकार भगवान्‌के भी ज्ञान व दर्शनसे चारों ओरके पदार्थ दिखते हैं।

सर्वांग परिपूर्ण ज्ञान व दर्शनसे चारों तरफके विश्वके समस्त पदार्थोंको जानना व देखना सर्वज्ञका स्वभाव है। इसलिए उन्हें सर्वतोलोचन, सर्वतो मुखके नामसे सर्वजन कहते हैं, वह सत्य है।

पिछले अनादिकालके, आगेके अनंतकालके, एवं आजके समस्त गत अनागत वर्तमानके विषयोंको एक ही क्षणमें जिनेंद्र भगवंत जानते

हैं व देखते हैं। भाई! वह भगवंत तीन लोकके अंदर समस्त पदार्थोंको एक ही समयमें जानते हैं। देखते हैं। इतना ही नहीं, तीन लोकके बाहरके आकाशके भी अंततक जानते हैं व देखते हैं।

भगवान् अनेक द्रव्योंको उनके अनेक पर्यायोंको एक साथ जानते हैं व देखते हैं। तथापि उनको उन पदार्थोंपर मोह नहीं है। एक पदार्थको जाननेके बाद दूसरे पदार्थको जाने, नंतर तीसरेको, इस प्रकारकी क्रमवृत्ति वहांपर नहीं है। सबको एक साथ ही जानते हैं।

संसारी जीवोंका ज्ञान व दर्शन परिमित हैं। इसलिए पदार्थोंको जानने व देखनेकी क्रिया क्रमसे होती है। परंतु जो कर्मरहित हैं, ऐसे भगवंतको क्रम क्रमसे जाननेकी जरूरत नहीं है। एक ही समयमें सर्व पदार्थोंको जान सकते हैं व देख सकते हैं।

भाई! देखो! एक दीपकसे यदि अनेक घरमें प्रकाश पहुंचाना हो तो क्रम क्रमसे सबके घरमें पहुंच सकता है। परंतु सूर्य तो उदयाचल पर्वतपर खडे होकर एक ही क्षणमें समस्त विश्वको प्रकाशित करता है।

भाई! लोकमें आंखोंसे देखते हैं व मनसे जानते हैं। परंतु भगवंतके ज्ञानदर्शन आंख व मनपर अवलंबित नहीं है। वे आंख व मनकी सहायताके बिना आत्मज्ञान व दर्शनसे ही समस्त लोकका ज्ञान करते हैं व देखते हैं। क्योंकि आत्मा स्वयं ज्ञानदर्शनसे संयुक्त है।

कर्मांगियोंको ही पराधीन होकर रहना पडता है। इसलिए वे जानने व देखनेके लिए आंखें व मनकी आधीनतामें पहुंचते हैं। परंतु समस्त कर्मको जिन्होंने नाश किया है ऐसे भगवंतके ज्ञान व दर्शनके लिए पराधीनता कहां?

रात्रिमें इधर उधर जानेके लिए सर्वजन दीपककी अपेक्षा रखते हैं। क्या सूर्यको दीपककी आवश्यकता है? नहीं! इसी प्रकार कर्मबद्ध व शुद्धोंके व्यवहारमें अंतर है।

सूर्यका प्रकाश लोकमें सब जगह पहुंचता है। तथापि गुफाके अंदर नहीं पहुंचता है। परंतु उस जिनसूर्यका प्रकाश तो लोकके अंदर व बाहर समस्त प्रदेशमें पहुंचता है।

आदि भगवंत लोक और अलोकको जरा भी न छोडकर जानते हैं व देखते हैं। इसलिए वह सुज्ञानसूर्य जगभरमें व्याप्त है, ऐसा कहते हैं, यह उपचार है।

गुरु व शिष्यके तत्वपरिज्ञानके व्यवहारमें उपचार दृष्टांत देना पडता है। जबतक तत्वका ज्ञान नहीं होता है तबतक दृष्टांतकी जरूरत है। मूलतत्वका ज्ञान होनेके बाद दृष्टांतकी आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार बछडेको दिखाकर, बछडेका शोधन कर आत्मज्ञान कराया गया, अथवा लोहरससे अर्हत्प्रतिमा बनाकर अर्हतको बतलाया जाता है, यह सब दृष्टांत है। उपचार दृष्टांत तो कुछ समयतक रहता है। उपमित निश्चय दृष्टांत ही यथार्थमें ग्राह्य है। उपदेशका अंग होनेसे उस निश्चय दृष्टांतका कथन करता हूं, सुनो!

दर्पणमें सामनेके पदार्थ प्रतिबिंबित होते हैं, परंतु क्या वे पदार्थ दर्पणके अंदर हैं या वे पदार्थसे वह स्पृष्ट है? नहीं! इसी प्रकार संपूर्ण पदार्थ केवलीके ज्ञानमें झलकते हैं। परंतु भगवंत उन पदार्थोंको स्पर्श न कर विराजते हैं। परमौदारिक दिव्यशरीरमें भगवान् रहते हैं। परंतु उसका भी उन्हें कोई संबंध नहीं है। उनका शरीर तो अनंतज्ञान ही है। भव्योंकी इष्टसिद्धिके लिए उनके पुण्यसे वे आज यहां विराजते हैं। कल अव्ययसिद्धिको वे प्राप्त करते हैं।

भाई! दूसरे पदार्थोंकी अपेक्षा न कर जिस प्रकार भगवंत अनंतज्ञानी व अनंतदर्शनसे सुशोभित होते हैं उसी प्रकार परवस्तुवोंकी अपेक्षासे रहित होकर अनंतसुखसे भी वे संयुक्त है। उसका भी वर्णन करता हूं। सुनो!

८ कर्मोंके जालमें जो फंसे हुए हैं, वे १८ दोषोंको द्वारा संयुक्त हैं। १८ दोष जहां हैं वहां दुःख भी है। जिनको दुःख है, उनको सुख कहांसे मिल सकता है ?

पहिले भगवंतने ८ कर्मोमें रहकर उन्हींमेंसे ४ कर्मोको जलाया तब १८ दोषोंका भी अंत हुआ। इसीसे उनको अनंतसुखकी प्राप्ति हुई। वे अठारह दोष कौनसे हैं, कहता हूं, सुनो।

क्षुधा, तृषा, निद्रा, भय, पसीना, कामोद्रेक, रोग, बुढापा, रौद्र, ममता, मद, जनन, मरण, भ्रांति, विस्मय, शोक, चिंता, कांक्षा ये अठारह दोष हैं। इन अठारह दोषोंसे भगवंत विरहित हैं। अतएव वे सदा सुखी हैं और अपने आत्मस्वरूपमें विराजते हैं।

जिनको क्षुधा नहीं है उनको भोजनकी क्या जरूरत है ? प्यास जहां नहीं है वहां पानकी क्या आवश्यकता है ? क्षुधातृषारूपी रोग जिनको हैं उनके लिए भोजन पान औषधिके समान है। इसलिए ऐसे रोग जहां नहीं है वहां औषधिकी भी आवश्यकता नहीं है।

क्षुधातृषा आदि रोगोंका उद्रेक होनेपर भोजनपानरूपी औषधिका प्रयोग किया जाता है। परंतु इन औषधियोंसे वह रोग सदाके लिए दूर नहीं हो सकते हैं, कुछ समयके लिए उपशमको पाकर तदनंतर पुनः उद्रिक्त होते हैं। इसलिए उन रोगोंको सदाके लिए दूर करना हो तो अपनी आत्मभावना ही दिव्य औषध है।

भाई ! अपने ऊपर आक्रमण करनेके लिए आये हुए शत्रुको प्रत्येक समय कुछ लांच वगैरे दे दिलाकर वापिस भेजे तो उसका परिणाम कितने दिनतक हो सकता है ? वह कभी न कभी धोका खाये विना नहीं रह सकता है। इसी प्रकार क्षुधातृषादि रोगोंको कुछ समयके लिए दबाकर चलना क्या उचित हैं ?।

क्षुधातृषादिकोंकी बात क्या ? काम क्रोधादिक व्यसन जब बराबर पीडा देते हैं तब यह जीवन दुःखमय ही रहता है। सुखकी कल्पना

करना व्यर्थ है। भोजन, स्नान, सुगंधद्रव्येलपन, स्त्रियोंकी संगति, इत्यादिसे यह शरीरसुख बिलकुल पराधीन है। परंतु आत्मीय सुखके लिए कोई पराधीनता नहीं है। शरीरसुख, इंद्रियसुख अथवा संसारसुख इन शब्दोंका अर्थ एक है। वह दुःखके द्वारा युक्त है, क्योंकि भाई ! पर पदार्थोंके संसर्गसे दुःखका होना साहजिक है।

निर्वाणसुख, निजसुख, आत्मसुख इन शब्दोंका एक अर्थ है। आत्मा आत्मामें लीन होकर सुखका अनुभव करता है, उसे बाकीके लोगोंकी आधीनता नहीं है। वह लोकमें अपूर्व सुख है।

अपने आत्माके लिए आत्मा ही अपनी वस्तु है। स्वयं धारण किया हुआ शरीर, मन, इंद्रिय, वचन, स्त्री पुत्र आदि लेकर सर्व पदार्थ परवस्तु हैं। शरीरसुखके लिए इन सब पदार्थोंकी अपेक्षा है।

परवस्तुओंकी अपेक्षासे रहित आत्मजन्य सुखको आत्मानुभवी ही जान सकते हैं। अथवा कर्मशून्य जिनेंद्र भगवंत ही उसे जान सकते हैं, दूसरे नहीं जान सकते हैं।

दीपपात्र, तेल, बत्ती वगैरेकी अपेक्षा अग्निदीपकके लिए रहती है। रत्नदीपकको किस बातकी अपेक्षा है ? इसी प्रकार कर्मसहित संसारियोंको ही सुख प्राप्तिके लिए परपदार्थोंकी अपेक्षा है। कर्मरहित जिनेंद्रको इन बातोंकी जरूरत नहीं है।

जिस प्रकार अग्निदीपक दीपपात्रमें स्थित तेलको बत्तीके द्वारा ग्रहण कर प्रकाशको प्रदान करता है, उसी प्रकार संसारी जीव दाल भात आटा आदि आहारद्रव्यके द्वारा शरीर इंद्रिय आदिको पोषण कर स्वयं फूलते हैं। दीपकमें तेल हो तो प्रकाश तेज रहता है। यदि तेल न हो तो मंदप्रकाश होता है। उसी प्रकार लोकमें भी मनुष्य खावे तो मस्त, न खावे तो सुस्त रहते हैं। यह लोककी रीत है।

परंतु भाई ! जिस प्रकार रत्नदीप तेलबत्ती वगैरेके विना ही प्रकाशित होता है। उसी प्रकार रत्नाकरसिद्धके परमपिता आदिप्रभुका सुख परवस्तुओंकी अपेक्षासे विरहित है।

व्यंतर, सुर, नाग ज्योतिष्क आदि देवोंके अनेक जन्मके सुखोंको एकत्रित कर भगवान् आदि प्रभुके सुखके सामने रक्खें तो वह उस सुख समुद्रके सामने बूंदके समान मालुम होते हैं।

तीन लोकको उठाकर हथेलीमें रख लेनेकी शक्ति भगवंतको है, तथापि वे वैसा करते नहीं। प्रभु होकर गंभीरहीन कृति करना उचित नहीं, इसीलिए उस जिनसभामें गांभीर्यसे वे रहते हैं।

हे वीरंजय! अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य व अनंतसुख इस प्रकारके चार विशिष्ट गुण प्रभुमें हैं। उनको विद्वान् लोग अनंत चतुष्टयके नामसे कहते हैं।

भाई! ऊपर वर्णित जिनेंद्रभगवंतकी चार अंतरंग संपत्ति हैं। इसके अलावा मुनिगण नवकेवललब्धियोंका वर्णन करते हैं। उनका भी वर्णन करता हूं, सुनो।

भाई! परमात्मतत्वको न जाननेवाले भव्योंको वह परमात्मा अपनी दिव्यध्वनिके द्वारा उस तत्वज्ञानका दान करते हैं। उसे अक्षयदान कहते हैं।

भगवंतके दिव्यवाक्यसे संसारभयको त्यागकर भव्यजन आत्मामृतका पान करते हैं। एवं अनेक सुखोंको पाकर आत्मराज्यको पाते हैं। इसलिए आहार, अभय, औषध व शास्त्रदानका विधान लोकमें किया गया।

यह आत्मा मुक्त होनेतक शरीरमें रहता है। शरीरके पोषणके लिए आहारकी जरूरत है। परंतु केवली भगवंत आहारग्रहण नहीं करते हैं। लाभांतराय कर्मके अत्यंत क्षय होनेसे प्रतिसमय सूक्ष्म, शुभ, अनंत, पुद्गल परमाणुरूपी अमृत उनको सुख प्राप्त कराकर जाते हैं। वह जिनेंद्रके लिए दिव्यलाभ है।

सुगंधपुष्पोंकी वृष्टि आदिभगवंतके लिए दिव्यभोग हैं। और छत्र, चामर, वाद्य, सिंहासन आदि सभी दिव्य उपभोग हैं। जो पदार्थ एक वार भोगकर छोडे उसे भोग कहते हैं। और पुनः पुनः भोगनेको उपभोग कहते हैं। यह भोग और उपभोगका लक्षण है।

यथार्थ रूपसे विश्वतत्वका निश्चय होना उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। और शरीरकी तरफसे मोहको हटाकर आत्मामें मग्न रहना वह क्षायिकचारित्र है।

इस प्रकार क्षायिकभोग व उपभोग, क्षायिक लाभ, क्षायिक दान, क्षायिकचारित्र व सम्यक्त्व, एवं पूर्वोक्त अनंत चतुष्टय इन नौ गुणोंको नवकेवललब्धिके नामसे कहते हैं।

सुख ही भोग, उपभोग व लाभ गुणकी अपेक्षासे त्रिमुख भेदसे विभक्त हुआ। अर्थात् क्षायिकभोग, क्षायिक उपभोग व दिव्यलाभ ये आत्माके अनंतसुख नामके गुणमें ही अंतर्भूत होते हैं। एवं अनंतज्ञान गुण, दान, ज्ञान, सम्यक्त्व व चारित्रके रूपसे ४ भेदोंसे विभक्त हुआ। अर्थात् दान व सम्यक्त्वचारित्र ये अनंतज्ञानगुणमें अंतर्भूत होते हैं।

इसलिए भाई! मूलभूत गुण दो होनेपर भी भेदविवक्षासे कभी ४ भेद करते हैं। और कभी नौ भेद करते हैं। यह कथन करनेकी शैली है।

इस प्रकार सर्वांग सुंदर, अंतरंग बहिरंग संपत्तिसे युक्त भगवंतको मैने आंख भरकर देखा। भाई! बाहर तो शरीर अत्यंत देदीप्यमान होकर दिख रहा है। और अंदर आत्मा उज्वल होकर दिख रहा है। अंदर व बाहर दोनों जगह सुज्ञानसे युक्त होकर शोभित होनेवाली वह अनादिवस्तु है।

भगवंतका शरीर दिव्य है। आत्मा दिव्य है। इसलिए देह और आत्माका अस्तित्व माणिक्यरत्नसे निर्मित पात्रके अंदर स्थित ज्योतिके समान मालुम होता है।

कंठके ऊपरके भागको उत्तमांग कहते हैं। और कटिप्रदेशतक मध्यमांग कहते हैं। कटिप्रदेशसे नीचेके भागको कनिष्ठांग कहते है। यह लोकका नियम है। परंतु भगवंतका शरीर वैसा नहीं है। उनका शरीर तो मस्तकसे लेकर पादतक भी सर्वत्र परमोत्तमांग है। मरवेके पुष्पमें नीचे ऊपर मध्यका भेद है। परंतु सुगंधमें वह भेद नहीं है। और न्यूनाधिक्य भी नहीं है। उस परमौदारिक दिव्यदेहमें स्थित आत्मा

मस्तकसे लेकर पादतक आदि मध्य अंतमें कहीं भी सुपवित्र स्वरूपमें शोभित हो रहा है। क्या रत्नदर्पणमें ऊपर नीचे, आदि अंत, इस प्रकारका भेद है? नहीं। वह आत्मा दिव्यज्ञान व दर्शनसे युक्त है, उसके स्वरूपमें कहीं भी न्यूनता नहीं है।

अंतरंगसंपत्ति बहिरंग संपत्तिसे युक्त जिनेंद्र भगवंतका वर्णन मैं क्या करूं। भाई! केवल उसे उभयश्रीसहित कह सकता हूं। वे कांतिके खान हैं, सुज्ञानके तीर्थ हैं। तीन लोकमें शांतिके सागर हैं। इस प्रकार भव्योंके संदेहको दूर करते हुए कामविजयी भगवान् विराजमान हैं।

निद्रा एक तरहसे मूर्च्छा है। और निद्रित मनुष्य मुर्देके समान पडा रहता है। भगवंतको निद्रा व जाड्य (आलस्य) नहीं हैं। वे चिद्रूप भगवंत कभी सोते नहीं है। हमेशा भद्रासनमें विराजमान हैं।

दुनियामें जिनको शत्रु हैं, उनके नाशके लिए लोग अस्त्र शस्त्रादिकको धारण करते हैं, और अपना संरक्षण करते हैं। परंतु भगवंतके कोई शत्रु नहीं है। और दूसरोंसे उनको अपाय नहीं हो सकता है, और वे भी किसीके प्रति प्रहार नहीं करते हैं। इसलिए उनको अस्त्र शस्त्रादिककी आवश्यकता नहीं।

इस भवमें जो संसारी जीव हैं वे अपने आत्महितके लिए अपने देवके नामको जपते हैं। इसलिए उनको जपमालाकी आवश्यकता होती है। परंतु भगवंतको भव नहीं है, और न उनको कोई देव ही है। ऐसी हालतमें परशिवके हाथमें जपमाला नहीं है। जप करते समय चित्तचांचल्य होनेसे भूल हो सकती है। इसलिए १०८ मणिसे निर्मित जपमालाको हाथमें लेकर जप करते हैं। वे लोकके अंदर व बाहर कैसे जान सकते हैं?।

परमात्मसुखसे जो विरहित हैं, वे कामसुखके आधीन होकर स्त्रियोंके जालमें फंसते हैं। परंतु जिनेंद्र भगवंतको परमात्मसुखकी प्राप्ति हुई है। भाई! इसीलिए उनको रानियोंकी आवश्यकता नहीं है।

लोकमें अपने देहको सजानेके लिए श्रृंगार करते हैं। परंतु निसर्ग सुंदर जिनेंद्रके सुंदर शरीरके लिए श्रृंगारकी क्या जरूरत है? वस्त्र, आभरण आदिकी अपेक्षा तो सौंदर्यरहित शरीरके लिए है।

भाई! विचार करो। करोडों चंद्रसूर्योंके प्रकाशसे युक्त शरीरको यदि वस्त्रसे ढके तो क्या वह शोभित हो सकता है? कभी नहीं। वह तो उत्तम दिव्यरत्नको वस्त्रके अंदर बांधकर रखनेके समान है। उसमें कोई शोभा नहीं है। भगवंतके दिव्यप्रकाशयुक्त शरीरके सामने रत्नादिककी शोभा ही क्या है? सामान्य दीपकको माणिक्यरत्नका संयोग क्यों? जिनेंद्र भगवंतको रत्नाभरणकी आवश्यकता ही क्या?

भगवंतको कांति ही देह है, कांति ही वस्त्र है और कांति ही आभूषण है। इसलिए भगवंतको कांतिनाथ माणिक्यनाथ आदि दिव्य नामोंसे उच्चारण करते हैं।

देवगण भगवंतका दर्शन कर आनंदित होते हैं एवं पादकमलमें पंक्तिबद्ध होकर नमस्कार करते हैं, उस समय भगवंतके पादनखोंमें वे देवगण प्रतिबिंबित होते हैं, इसलिए उनको रुंडमालाधरके नामसे भी कहते हैं।

भगवंतने भव्योंके भवबंधनको ढीला कर पापरूपी अंधकारको दूर किया। इसलिए उनको पुण्यबंध करनेकी इच्छा करनेवाले भव्य भक्तिसे अंधकासुरको मर्दन करनेवाला कहते हैं।

अष्टमदरूपी मदगजोंको नष्ट करनेवाले आदिभगवंतसे शिष्टजन, हे! गजासुरमर्दन! हमारे इष्टकी पूर्ति करो, इस प्रकार प्रार्थना करते हैं।

भगवंत कोपरूपी व्याघ्रको शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं, इसलिए उनको व्याघ्रासुरवैरीके नामसे कहकर जयजयकार करते हैं।

चंद्रमंडलके समान छत्रत्रय भगवंतके मस्तकके ऊपर रुंद्रवैभवसे सुशोभित होते हैं! इसलिए उनको चंद्रशेखर या चंद्रमौलीके नामसे कहकर स्तुति करते हैं।

भगवंतके शरीरमें दाहिने और बांये ओर दो नेत्र तो विद्यमान

हैं। बीचमें सुज्ञाननामक तीसरा नेत्र है। इसलिए उनको त्रिनेत्रके नामसे भी कहते हैं।

ललाटमें अपने मनको स्थिर करके आत्माको देखते हुए क्षणभरमें जिन्होंने कर्मजालको जलाया ऐसे भगवंतको ललाटनेत्र भी कहते हैं, उष्णनेत्र भी कहते हैं, यह सब गुणकृत नाम हैं।

कनक कमलके ऊपर भगवान् विराजमान हैं। इसलिए उनको कमलासन कहते हैं। चारों तरफके पदार्थोंको वे देखते हैं, जानते हैं, इसलिए उनको चतुर्मुखके नामसे कहकर देवगण स्तुति करते हैं।

जो नष्टमार्गी हैं अर्थात् धर्मकर्मको न मानकर मोक्षमार्गको भूल जाते हैं, उनको कैवल्यमार्गको स्पष्ट रूपसे भगवंत निर्माण कर देते हैं, इसलिए उनको भक्तिसे भव्यगण सृष्टिकर्तारके नामसे कहते हैं।

ब्रम्हाको कमंडलु है, ऐसा कहते हैं, इससे मालुम होता है कि वह पवित्र देहसे युक्त नहीं है। परंतु आदिब्रम्हाका शरीर अत्यंत पवित्र है, उनको प्यास भी नहीं है, अतएव उनके पास कमंडलु नहीं रहता है।

भगवंतके निर्मलज्ञानरूपी कमरेमें तीन लोकके समस्त पदार्थ एक साथ प्रतिबिंबित होते हैं। इसलिए उस आदिमाधव भगवंतको लोग तीन लोकको अपने उदरमें धारण करनेवाले पुरुषोत्तमके नामसे कहते हैं।

भाई! जय शद्बका अर्थ जीतना है। लोकको व शत्रुवोंको जीतनेसे जिन नहीं बनसकता है। परंतु अष्टादश दोषोंको जीतनेवाला ही जिन कहलाता है। भगवंतके पास बीस हजार केवलीजिन रहते हैं। उन सबमें भगवंत मुख्य हैं। इसलिए उनको जिननायकके नामसे कहते हैं।

परमात्मा, शिव, परशिव, जिन, परब्रम्हा, पुरुषोत्तम, सदाशिव, अर्ह, देवोत्तम, वृषभनायक, आदिपरमेश आदि अनेक नामोंसे उनकी स्तुति करते हैं। और कभी आदिजिनेश, आदिब्रह्मा, आदीश्वर, आदिवस्तु आदि मध्यांतको पाकर भी उसे स्पर्श न करनेवाला, महादेवके नामसे कहते हैं।

इसी प्रकार भाई ! देवगण अनेक नामोंसे भगवंतका उल्लेख कर भक्तिसे उनकी स्तुति करते हैं। इन सब बातोंको आप लोग अपनी आंखोंसे देखेंगे। मैं क्या वर्णन करूं, इस प्रकार रविराजने कहा।

इस प्रकार रविकीर्तिकुमार जिस समय समवसरणका वर्णन कर रहा था उस समय बाकीके कुमारोंमें कोई हूं, कोई जी, कोई वाह ! इत्यादि कहते हुए आनंदसे उस पर्वतपर चढ रहे थे।

कोई कहने लगे कि भाई ! आपने बहुत अच्छा कहा ! पहिले एक दफे आपने भगवंतका दिव्य दर्शन किया है, इसलिए आप अच्छी तरह वर्णन कर सके। परंतु हम लोगोंको आपके वर्णन कौशलसे साक्षात् दर्शनके समान आनंद मिला।

आपने जो वर्णन किया उससे हमें एक वारके दर्शनका पूर्ण अनुभव हुआ। इसलिए हमारा अब जो दर्शन होगा वह पुनर्दर्शन है। भाई ! हम लोग आज धन्य हैं। वीरंजयकुमारने आपको प्रश्न किया। आपने प्रेमके साथ वर्णन किया, रास्ता बहुत सरलताके साथ तय हुआ। विशेष क्या ? समवसरणको आंखों देखनेके समान आनंद हुआ।

हा ! नूतन दर्शनके लिए हम आये थे। परंतु हमारे लिए पुरातन दर्शन ही हुआ। रविकीर्तिकुमारके वाक्चातुर्यका वर्णन क्या करें, कमाल है। वचनकी गंभीरता, कोमलता, जिनसभाको वर्णन करनेकी शैली इत्यादि इसके सिवाय दूसरोंको नहीं मिल सकती है, इस प्रकार वे विचार करने लगे। शिष्यगण गुरुओंका आदर करते हुए जिस प्रकार जाते हैं, उसी प्रकार भगवंतके दिव्यचारित्रको वर्णन करनेवाले रविकीर्ति कुमारके प्रति आदर व्यक्त करते हुए वे कुमार उस पर्वतपर चढ रहे हैं।

" भाई देखो ! आगे रत्नशिलाकी राशि है, पैरको लगेगा। सावकाश ! यहां फूल है। होशियार ! " इत्यादि आदरके साथ कहते हुए वे कुमार ऊपर चढ रहे हैं !

क्या ही आश्चर्यकी बात है। कथा कहने व सुननेमें खंड नहीं

पडा और दृष्टि भी मार्गमें बराबर थी। इस प्रकार वे शिथिलकर्मी अपने चित्तको स्थिर कर कर्ममथन भगवंतके दर्शनके लिए उत्कंठित होकर उस पर्वतपर चढ रहे हैं।

कोई कह रहे हैं कि भाई! इस कथाके लिए यह सुक्षेत्र है। यह मार्ग संसारको दूरकर मुक्ति पहुंचानेका मार्ग है। इसलिए अब बस कीजिये! आप बहुत थक गये'। यह कहते हुए आनंदके साथ उस कैलास पर्वतपर चढ रहे हैं।

जब इस प्रकारकी अनंदपूर्ण तत्वचर्चाके साथ वे सौ कुमार उस पर्वतपर चढ रहे थे, तब समवसरणसे सुरभेरीका शब्द दंधण दिम्म-मोमोंरके रूपसे दूरसे सुननेमें आया। कुमारोंको और भी आनंद हुआ।

पाठक! भरतकुमारोंकी विद्वत्तासे चकित हुए विना नहीं रहेंगे। अत्यंत अल्पवयमें विरक्तिका प्रादुर्भाव होना, साथमें विशिष्ट ज्ञानका भी उदय होना सामान्य बात नहीं है। खासकर जिस तारुण्यमें यह चंच-लमन विकृत होकर स्त्रियोंके जालमें फसता है, ऐसे विकट समयमें विवेक-जागृति होना सचमुचमें पूर्वजन्मके सातिशय पुण्यका ही फल समझना चाहिये। सामान्यजनोंको यह साध्य ही नहीं है। ऐसे इंद्रियविजयी, विवेकी, विद्वान् पुत्रोंको पानेवाले भरतेश्वर भी असदृश पुण्यशाली हैं। वे सदा अपने आराध्यदेवको इस प्रकार स्मरण करते हैं कि—

"हे परमात्मन्! आप कामविरोधी हैं, कामित फलदायक हैं, व्योमसन्निभ हैं, चिन्मय हैं, क्षेमकर हैं। इसलिए हे चिदंबर-पुरुष! स्वामिन्! मेरे अंतरंगमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! आप पापरूपी गेंहूको पीसनेके लिए चक्कीके समान हैं। किट्टकालिमादि दोषोंसे रहित सुवर्णके समान शुद्ध-स्वरूप हैं। हे रत्नाकरसिद्धके गुरु निरंजनसिद्ध! मुझे सन्मति-प्रदान कीजिये"। इसी भावनाका वह फल है।

इति समवसरणसंधिः।

अथ दिव्यध्वनिसंधिः ।

समवसरणसे भेरीके शब्दको सुनते ही कुमार आनंदसे नाचने लगे। जैसे कि मेघके शब्दसे मयूर नृत्य करता है। विशेष क्या ? उन राजपुत्रोंने समवसरणको प्रत्यक्ष देखा।

समवसरणके दिखनेपर हाथ जोडकर भक्तिसे मस्तकपर चढाया, व 'दृष्टं जिनेंद्रभवनं' इत्यादि उच्चारण करते हुए एवं माणिक्यतीर्थ-नायक जय जय आदि भगवंतकी स्तुति करते हुए आगे बढे।

समवसरणको देखनेपर मालुम हो रहा था कि चांदीके पर्वतके ऊपर इंद्रधनुषका पर्वत खडा हो। तथापि वह उस चांदीके पर्वतको स्पर्श न कर रहा है। आश्चर्य है।

रूप्यगिरीके ऊपर नवरत्न गिरीकी स्थापना किसने की होगी ? सचमुचमें जिनमहिमा गोप्य है। इत्यादि प्रकारसे विचार करते हुए वे कुमार अविलंब जा रहे हैं।

तीन लोककी समस्त कांति एकत्रित होकर तीन लोकसे प्रभु आदिभगवंतके पुरमें ही आगई हो. इस प्रकार उस समवसरणको देखने-पर मालुम होता था, आनंदसे उसका वर्णन करते हुए वे जा रहे हैं।

अंदर आठ परकोटोंसे वेष्टित धूलीसाल नामक मजबूत परकोटा दिख रहा था। वह नवरत्नकी कांतिसे इंद्रचापके समान मालुम हो रहा था। वहांपर चारों दरवाजोंके अंदर अत्यंत उन्नत गगनस्पर्शी सुवर्णसे निर्मित चार मानस्तंभ हैं, उसमेंसे एक मानस्तंभको उन कुमारोंने देखा।

उस धूलीसाल परकोटके मूलपार्श्वमें एक हस्तप्रमाण छोडकर रजताद्रि है, अर्थात् पर्वतको समवरण स्पर्श करके विराजमान नहीं है, एक हस्त प्रमाण अंतर छोडकर है। वहांसे पुनश्च पांच हजार धनुष उन्नत है जिसे चढनेके लिए सोपानपंक्तीकी रचना है।

पर्वतके उपर धूलीसालतक आधा कोस दूर है, जोरसे आवाज देनेपर सुननेमें आसकता है, तथापि इतनेमें वीस हजार सोपानकी व्यवस्था

है। परंतु वहांपर बीस हजार सीढियोंको क्रमसे चढनेकी जरूरत नहीं है। पहिली सीढी पर पैर रखते ही वहांके पादलेपनके प्रभावसे क्षणमात्रमें एकदम अंतिम सीढीपर जाकर खडे हो जाते हैं, समवसरण व जिनेंद्रका दर्शन करते हैं। यह वहांका अतिशय है।

भरतकुमार जो अभीतक कुछ दूर थे उस सोपानपंक्तिके पास आये, और सीढीपर पैर रखते ही ऊपर धूलीसालमें पहुंच गये। सबके मुखसे जिनशरण, जिनशरण शब्दका उच्चारण सुननेमें आ रहा है।

दरवाजेमें रत्नदंडको हाथमें लेकर द्वारपालक खडे हैं। द्वारपालकोंके पादसे मस्तकतक उनका शरीर आभरणोंसे भरा हुआ है। ऐसे उद्दंड द्वारपालकोंकी अनुमतीको पाकर सभी कुमार अंदर प्रविष्ट हुए। वहांपर उन्नत मानस्तंभके एक पार्श्वमें ही सुवर्णकुंडमें जल भरा हुआ था। वहां पैर धोकर आगे बढे।

आगे जाते हुए उन परकोटोंके दरवाजेमें स्थित द्वारपालकोंकी अनुमति लेते हुए एवं इधर उधर की शोभाको देख रहे हैं। कांतिके समुद्र में ही चल रहे हैं अथवा शीतल नदीमें डुबकी लगा रहे हैं, इसका अनुभव करते हुए कांतिमय व सुगंध समवसरण भूमिपर वे आगे बढ रहे थे।

आठ परकोटोंके मध्यमें स्थित सात वेदिकाओंको पारकर स्फटिक मणिसे निर्मित आठवें परकोटेमें वे प्रविष्ट हुए। लावण्यरस, योग्यश्रृंगार, योग्य वैभवसे युक्त सुंदर इन कुमारोंको भगवंतकी ओर आते हुए देवेंद्रने देखा।

सांचेमें उतार दिया हो इस प्रकारका सादृश्यरूप, सुवर्णके समान देहकांति, भरी हुई जवानी आदिको देखकर उनके सौंदर्यसे देवेंद्र एकदम आश्चर्यचकित हुआ।

गमनका गमक, बोलने व देखनेकी ठीवी, आलस्यरहित पटुत्व, विनय व गांभीर्यको देखकर देवेंद्र आकृष्ट हुआ।

आखोंकी कांति, दंत पंक्तिकी कांति, सुवर्णाभरणोंकी कांति, शरीरकी कांति, रत्नाभरणोंकी कांति, शरीरकी कांतिके मिलनेपर वे ज्योतिरंग पुरुष

मालुम हो रहे थे। देवेंद्र आश्चर्यसे अवाक् होगया व मनमें विचार करने लगा। "ये कौन हैं, स्वर्गलोकमें तो कभी इनको देखा नहीं, मर्त्यलोकमें ऐसे सुंदर कुमार पैदा हो नहीं सकते। यदि हुए तो भी एक दो को ही ऐसा रूप मिल सकता है, फिर ये कौन है ? आश्चर्य है! इससे वह सुंदर है, उससे यह सुंदर है। इन दोनोंसे वह सुंदर है। वह यह क्यों कहें, ये तो सभी सुंदर ही सुंदर हैं। फिर लोकमें ये कौन हैं।" इत्यादि प्रकार से मनमें विचार करनेपर अवधिज्ञानके बलसे देवेंद्र समझ गया कि ये तो भरतेश्वरके कुमार हैं। उस राजरत्नको छोडकर ये कुमाररत्न और जगह उत्पन्न नहीं हो सकते हैं।

त्रिलोकीनाथका पुत्र भरतेश है। उस रत्नशलाकाकी खानमें ये कुमाररत्न उत्पन्न नहीं हुए तो और कहां होंगे ? भरतेश! तुम धन्य हो। इस प्रकार देवेंद्रने मस्तक हिलाया।

इधर देवेंद्र विचार कर रहा था। उधर वे कुमार आगे बढकर नौवें परकोटेके अंदर प्रविष्ट हुए। वहांपर क्या देखते हैं। तीन पीठके उपर सिंहके मस्तकपर स्थिर कमल है। उसे स्पर्श न करके सुज्ञानकरंडक भगवान विराजमान हैं।

लोकालोकके समस्त पदार्थोंको एकाणुमात्रमें सुज्ञान रूपी कमरेमें रख लिया है जिन्होने, ऐसे एकोदेव एषोऽद्वैतरूपी ब्रम्हाकीर्णकका उन्होने दर्शन किया। अज्ञानरूपी अंधकारको भगाकर विज्ञान सूर्यको धारण करनेवाले सुज्ञान व दर्शनरूपी शरीरको धारण करनेवाले सर्वज्ञको उन्होने देखा। सातिशय भोगमें रहनेपर भी अपनी आत्माको देखनेसे व ध्यानाग्निके बलसे जन्मजरामरणरूपी त्रिपुरको जलानेवाले देवका उन्होने दर्शन किया।

वेद, सिद्धांत, तर्क, आगम इत्यादिका ज्ञान होनेपर भी उसके झगडोंसे रहित, आदि अनादि कल्पनाओंसे परे आदिवस्तुको उन्होंने देखा।

वस्त्राभूषणोंसे रहित होकर सुंदर, स्नान भोजन न करके सुखी,

स्त्रियोंके विना ही आनंद प्राप्त, देखने, बोलने, व मनके विचारमें आनेपर भी वर्णन करनेके लिए असमर्थ ऐसे जगत्पतिका उन्होंने दर्शन किया।

कोटि चंद्रसूर्योंको एकत्रित कर सामने रखनेपर उससे भी बढकर देहकांतिको धारण करनेवाले कालकर्मके वैरी भगवंतको उन कुमारोंने देखा। निर्मल निर्भेदभक्ति ही माता है, श्रीमंदरस्वामी ही पिता है। इस प्रकारके विचारको रखनेवाले रत्नाकर सिद्धके बडे बापको उन कुमारोंने देखा।

मार्गमें वे कुमार विचारकर आये थे कि हम जानेके बाद साष्टांग नमस्कार करेंगे, स्तुति करेंगे आदि। परंतु यहांपर भगवंतके त्रिलोकातिशायी रूपको देखकर वे सब बातोंको भूल गये। आश्चर्यसे खडे होकर भगवंतकी ओर देखने लगे। भगवंतके श्रीमुखमें, कंठमें, दीर्घ भुजाओंमें, हृदयमें, नाभिकूपमें, चरणोंमें, सुंदर पादकमलोंमें इनकी दृष्टि गई। वहांसे वापिस आना नहीं चाहती थी। वस्त्राभूषणोंकी बात ही नहीं है। रत्नदर्पण ही जिनेंद्र हुआ है, इस प्रकार सुंदररूपको धारण करनेवाले भगवंतके देहमें ही उनकी आंखें फिरने लगी।

मस्तकसे पादतक, पादसे मस्तकतक बराबर उनकी आंखें चढती हैं। केवल आंखें ही काम कर रही हैं। ये कुमार तो आश्चर्यसे अवाक् होकर पुतलियोंके समान खडे हैं। वहांकी निस्तब्धता व कुमारोंके मौनको भंग करते हुए स्वर्गाधिपति देवेंद्रने प्रश्न किया कि कुमार! आप लोग भगवंतको देखकर उनके चरणोंमें नमस्कार न कर यों ही मौनसे खडे क्यों हैं? इतनेमें वे कुमार जागृत हुए व आनंदसे कहने लगे कि हा! भूल गये, हम लोगोंकी बाल्यलीला अभीतक गई नहीं। तीन छत्रके स्वामी हे भगवन्! बच्चोंकी भूलको न देखकर हमारी रक्षा कीजिये। इस प्रकार प्रार्थना की।

हाथ भरकर सुवर्णरत्नके पुष्पोंसे पुष्पांजलि अर्पण करके, देह भरकर साष्टांग नमस्कार कर, मुंह भरकर भक्तिसे उन्होंने भगवंतकी स्तुति की।

नित्य निराश निरंजन निरुपम सत्य सदानंद सिंधो !
अत्यंतशांत सुकांत विमुक्ति साहित्याय ते नमः स्वाहा ॥
कायाकार कायातीत सुज्ञानकाय शुद्धात्मसुदृष्टि !
श्रेयोनाथाय लोकनाथाय निर्मायाय ते नमः स्वाहा ॥
वीतरागाय विद्यासंयुजे परंज्योतिषे श्रीमते महते !
भूतहिताय निष्प्रीताय भव्रकुलोध्दूताय ते नमः स्वाहा ॥

इत्यादि प्रकारसे भक्तिसे स्तुतिकर भगवंतको तीन प्रदक्षिणा दी व वहांपर विराजमान अन्य केवलियोंकी भी वंदना की। गणधरोंको भी नमन कर, सभामें स्थित सर्व समुदायके प्रति एक साथ शिष्टाचारको प्रदर्शन कर ग्यारहवें निर्मल कोष्टमें वे बैठ गये। सभाकी अतुल संपत्ति व भगवंतके देहकी दिव्यकांतिको देखते हुए, जिनेंद्रके सामने ही बैठकर वे कुमार आनंदसे पुलकित हो रहे हैं। शायद तीन लोकके अग्रभागको ही वे चढ गये हों, इतना आनंद उनको हो रहा है।

रविकीर्तिराजने हाथ जोडकर प्रभुने प्रार्थना की कि 'स्वामिन्! हमें आत्मासिद्धिके उपायका निरूपण कीजिये। तब मृदु मधुर गंभीर निनादसे युक्त सातसौ अठारह भाषाओंसे संयुक्त दिव्यध्वनि भगवंतके मुखकमलसे निकली। उस राजरूपी राजबिंब (चंद्रबिंब) को देखकर कैलासनाथ आदि प्रभुरूपी समुद्र एकदम उमड पडा और दिव्यध्वनिरूपी समुद्रघोष प्रारंभ हुआ।

गर्मीके संतापसे सूखे हुए वृक्षोंको यदि बरसातका पानी पडे तो जिस प्रकार अंकुरित होते हैं, 'उसी प्रकार संसारतापसे संतप्त भव्योंको उस दिव्यध्वनिने शांतिप्रदान किया।

वह दिव्यध्वनि एक बोली ही है। परंतु सबकी बोलीके समान वह सामान्य बोली नहीं है। अर्हतकी बोलीके बारेमें मैं क्या बोलूं? गला, जीभ, ओठ आदिको न हिलाते हुए बोलनेकी वह अपूर्व बोली है। मेघके शब्दको, समुद्रके घोषको ओठ जीभ आदिकी आवश्यकता ही क्या

है ? त्रिजगत्पतिकी दिव्यध्वनिके लिए इतर पदार्थोंकी अपेक्षा ही क्या है ? दूरसे सुननेवालोंको समुद्रघोषके समान सुननेमें आता है। पाससे सुननेवालोंको स्पष्ट सुनाई देता है। कोई भी भव्य कुछ भी प्रश्न करें सबका उत्तर उस दिव्यध्वनिसे मिलता है।

विवाह समारंभके घरके बाहरसे एकदम घोर शब्द सुनने में आता है। परंतु अंदर जाकर सुननेपर स्त्रियोंका गीत, वाद्य व इतर शब्द सुनने में आते हैं। एक ही ध्वनिको सामने अनेक व्यक्ति सुन रहे हैं। तथापि उस ध्वनि को एक ही रूप नहीं कह सकते हैं। सुननेवाले विभिन्न परिणामके भव्योंके चित्तमें विभिन्नरूपसे परिणत होता है। इसलिए अनेक रूपसे परिणत होता है।

जिस प्रकार नदीका पानी एक होनेपर भी उसे बगीचेमें लेकर आम इमली, कटहर, नारियल आदि अनेक वृक्षोंकी ओर छोडनेपर वह पानी एक ही रूपका होनेपर भी पात्रोंकी अपेक्षासे विभिन्न परिणतिको प्राप्त करता है, उसी प्रकार दिव्यध्वनि भी अनेक रूपमें परिणत हो जाती है।

नर सुर नागेंद्र आदि भाषाओंसे युक्त होकर वह दिव्यभाषा एक ही है, जिस प्रकार कि रसायनमें सुगंध, माधुर्य आदि अनेकके सम्मिश्रण होने पर भी वह एक ही है।

सर्व प्राणियोंके लिए वह हितकारक है। सर्व सत्वोंका मूल है। उस को प्रकट करनेवाले जिनेंद्र अकेले हैं, सब सुननेवाले हैं। लाखों भव्योंके होनेपर भी वहां अलौकिक निस्तब्धता है।

एक आश्चर्य और है। आदि देवोत्तमका निरूपण कोई पासमें रहे या दूर रहे कोसों दूरतक एक समान सुननेमें आता है।

भव्योंको देखकर वह निकलती है। अभव्योंको देखकर वह निकल नहीं सकती है। यह स्वाभाविक है। आदिचक्रवर्ती भरतेशके पुत्र भव्य हैं। इसलिए वह दिव्यध्वनि प्रसृत हुई।

यह दिव्यध्वनि नित्य प्रातःकाल, मध्यान्ह, सायंकाल और मध्यरात्रि, इस प्रकार चार संधिकालमें छह घटिका निकलती है। बाकी समयमें मौनसे रहती है। बाकीके समयमें कोई आसन्नभव्य आकर प्रश्न करें तो निकलती है। इन कुमारोंके पुण्यातिशयका क्या वर्णन करना। उनके पुण्यातिशयसे ही दिव्यध्वनिका उदय हुआ।

दिव्यध्वनिमें भगवंतने फर्माया कि हे रविकीर्तिराजा आत्मसिद्धिको पाना क्या कोई कठिन है ?। भव्योंके लिए वह अतिसुलभ है। संसारमें अनेक पदार्थोंको जानकर मनको अपने आत्मामें स्थिर करनेसे उसकी सिद्धि होती है।

काल अनादि है, कर्म अनादि है। जीव भी अनादि है, यह जीव काल व कर्मके संबंधको अपनेसे हटाले तो आत्मसिद्धि सहजमें होती है, अथवा वही आत्मसिद्धि है। इस प्रकार त्रिलोकीनाथ भगवंतने निरूपण किया।

रविकीर्ति राजाने पुनः विनयसे प्रश्न किया कि स्वामिन् ! काल किसे कहते हैं, कर्म किसे कहते हैं, आत्मा किसे कहते हैं, जरा विस्तारसे निरूपण कीजिये, हम बच्चे क्या जाने। दयानिधे ! जरा कहियेगा।

भगवंतने उत्तरमें कहा कि तब हे भव्य ! सुनो ! सबसे पहिले छह द्रव्योंके लक्षणको निरूपण करेंगे। आखेरको दिव्यात्मसिद्धिका वर्णन करेंगे।

लोकमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, इस प्रकार छह द्रव्य तीन वायुवोंसे वेष्ठित होकर विद्यमान हैं।

विशाल अनंत आकाशके बीचोबीच एक थैलेके समान तीन बात विद्यमान हैं। उस थैलेमें ये छह पदार्थ भरे हुए हैं।

वे तीनों बात मिलकर एक योजनको किंचित् कम प्रमाणमें है। और एक एक वायु तलमें २० हजार कोस प्रमाण मोटाईमें है।

उन छह द्रव्योंका आधार लोक है, उन तीन वायुवोंके बाहर स्थित आकाश आलोकाकाश कहलाता है, इतना तुम ध्यानमें रखना, अब क्रमसे आत्मसिद्धिको कहूंगा।

लोक एक होनेपर भी उसका तीन विभाग है। अधोलोक मध्य लोक और ऊर्ध्वलोकके भेदसे तीन है। परंतु लोक तो एक ही है, केवल आकार व नामसे भेद है।

एक थैलेमें जिस प्रकार तीन खप्पेका करंडक रक्खें तो मालुम होता है उसी प्रकार तीन वातोंसे वेष्टित वह तीन लोकका विभाग है।

नीचे सात नरक भूमियां हैं। वहांपर अत्यधिक दुःख है। उन भूमियोंके ऊपर कुछ सुखका स्थान नागलोक है। नागलोकसे ऊपर मध्यलोककी भूमितक अधोलोकका विभाग है।

हे भरतकुमार! मेरुपर्वतको वलयाकृतिसे प्रदक्षिणा देकर अनेक द्वीपसमुद्र हैं। वह मध्यलोक है। मेरुगिरीके ऊपर अनेक स्वर्ग विमान मौजूद हैं। उन स्वर्ग साम्राज्योंके ऊपर मुक्ति है। मेरुपर्वतसे ऊपर वातवलय पर्यंतका प्रदेश ऊर्ध्वलोक कहलाता है।

अधोलोक अर्धमृदंगके समान, मध्यलोक झल्लरीके आकारमें है। और ऊर्ध्वलोक पूर्ण खडे हुए मृदंगके समान है। अब समझगये न? तीन लोकके विस्तारको रज्जुनामक प्रमाणसे हम अब कहेंगे।

एक समयमें असंख्यात योजन प्रमाण जानेवाला देवविमान सतत असंख्यात वर्षतक रात्रिंदिन जावें तो जितना दूर जा सकता है, उस प्रमाणका नाम एक रज्जु है। लोकके नीचेसे आखेरतक चौदह रज्जु प्रमाण दक्षिणोत्तर भागमें नीचे ७ रज्जु हैं, बीचमें एक रज्जु, कल्पवासी विमानोंमें पांच रज्जु, और आखेरको एक रज्जु प्रमाण है।

इस प्रकारके प्रमाणसे युक्त लोकमें षड्द्रव्य खचाखच भरे हुए हैं। हे भव्य! अब उनके स्वरूपको हम कहेंगे। ध्यान देकर सुनो।

बीचमें ही रविकीर्तिराजने प्रश्न किया कि स्वामिन्! आपने जो निरूपण किया वह सभी समझमें आया। परंतु एक निवेदन है। वायु तो चंचल है। वह एक जगह ठहर नहीं सकती है, फिर उसके साथ यह

लोक कंपित क्यों नहीं होता है, यह समझमें नहीं आया। कृपया यह निरूपण होना चाहिये।

भव्य! वायुमें एक चलवायु, एक निश्चलवायु इस प्रकार दो भेद है। चल वायु तो लोकमें इधर उधर व्याप्त है, परंतु ये तीनों वायु चलवायु नहीं हैं, स्थिर वायु हैं।

शीतलता, निस्संगत्व, सूक्ष्मत्व आदि गुणोंमें तो कोई अंतर नहीं है। चलवायुमें कंपन है। स्थिरवायुमें कंपन नहीं है। इतना ही भेद है।

स्वर्गलोकमें स्थिर विमान चलविमान, इस प्रकार दो प्रकारके विमान विद्यमान हैं। उनके नाम आदिमें कोई भेद नहीं है। सबके नाम समान है। इसी प्रकार स्थिर वायु और चलवायुका नाम सादृश्य होनेपर भी चलाचलका भेद है।

तारावोंमें भी एक स्थिर तारा, और एक चल तारा इस प्रकारके भेद हैं। स्थिर तारा चलती नहीं, चल तारा तो इधर उधर जाती है। इसी प्रकार वातमें भी भेद है।

स्वामिन्! मेरी शंका दूर हुई। अब छह द्रव्योंके आगे वर्णन कीजिये। इस प्रकार विनयसे मंदस्मित होकर रविकीर्तिराजने प्रार्थना की। उत्तरमें भगवंतने कहा कि हे भव्यजीव! सबसे पहिले जीव पदार्थका वर्णन करेंगे। पहिले जो दस प्राणोंके साथ जो जीता रहा है, जीता आरहा है, जी रहा है और आगे जीयेगा उसे जीव कहते हैं। वे १० प्राण कौनसे हैं। मन, वचन, काय, श्वासोच्छ्वास, आयुष्य एवं पंच इंद्रिय अर्थात् स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, इस प्रकार ये दस प्राण हैं।

यह आत्मा कभी पांच इंद्रियोंसे युक्त रहता है, कभी एक, दो, तीन या चार इंद्रियोंसे युक्त रहता है। इसलिए उन प्राणोंमें भी चार, छह, सात, आठ, नौ, इस प्रकारके विभाग होते हैं।

एक एक इन्द्रियको आदि लेकर पांच इन्द्रियतक जो जीव धारण करता है उसमें प्राणोंका विभाग भी ४–६–७–८–९ के रूपमें कैसा

होता है इसका वर्णन सुनो। वृक्ष लता आदि एकेंद्रिय जीव हैं। वे स्पर्शन इन्द्रिय मात्रसे युक्त हैं। इसलिए स्पर्शनेंद्रिय, काय, श्वासोच्छ्वास व आयुष्य, इस प्रकार उन जीवोंको चार प्राण हैं। वायु, अग्नि, जल, भूमि ये चार जिनके शरीर हैं। वे भी एकेंद्रिय जीव हैं। वे इस संसारमें विशेष दुःखको प्राप्त होते हैं।

कोई कीट वगैरे दो इन्द्रिय अर्थात् स्पर्शन रसनसे युक्त हैं। वे स्वरमात्र वचनसे भी युक्त हैं। इसलिए पूर्वोक्त ४ प्राणोंके साथ रसनेंद्रिय व वचनको मिलानेपर छह प्राण होते हैं।

चींटी आदि प्राणी तीन इन्द्रियके धारी हैं। स्पर्शनसे, रसनासे एवं वासके द्वारा पदार्थोंको वे जानते हैं। इसलिए तीन इंद्रियधारी प्राणियोंमें ७ प्राण होते हैं।

मक्खी, भ्रमर आदि स्पर्शन, रसन, घ्राण व चक्षु इस प्रकार चार इन्द्रियको धारण करनेवाले जीव हैं। वे ८ प्राणोंको धारण करते हैं। कोई तिर्यंच प्राणियोंमें सुननेका सामर्थ्य है इसलिए पांच इन्द्रिय तो हुए। परन्तु मन न होनेसे वे नौ प्राणोंको धारण करते हैं।

मन नामका प्राण हृदयमें अष्टदलाकार कमलके समान रहता है। उससे यह जीव विचार किया करता है।

वनगज, पशु, घोडा, आदियोंमें भी कुछ प्राणियोंको मन है। कुछको नहीं। इसलिए उन पंचेंद्रिय प्राणियोंको जहां मन है अर्थात् जो समनस्क है उनको दस प्राण होते हैं, मनुष्योंको भी दस प्राण होते हैं।

तिर्यंचोंमें कोई समनस्क, कोई अमनस्क इस प्रकार दो भेद हैं। परंतु नारकी, देव, मनुष्य ये दस प्राणोंके धारी होते हैं।

हे भव्य! एकेन्द्रियसे पंचेंद्रियतक लोकमें जीव जीते हैं, उनकी रीति यह हैं। इसे तुम अच्छीतरह ध्यानमें रखो।

बाहरसे औदारिक नामक शरीर है। और अंदर तैजस, कार्माण

नामक दो शरीर हैं। इस प्रकार तीन शरीररूपी कैदखानेमें यह जीव फंसा हुआ है। इसे भी ध्यानमें रखना।

कर्मोंके मूलसे आठ भेद हैं। तीन देहमें वे आठ कर्म उत्तर भेदसे एकसौ अडतालीस भेदसे युक्त हैं। और भी उत्तरोत्तर भेदसे वे कर्म असंख्यात विकल्पोंसे विभक्त हैं। परंतु मूलमें आठ ही भेद जानना।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, दुःख देनेवाला वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र, अंतराय, इस प्रकारके आठ कर्म उन तैजस कार्माणशरीरमें छिपे हुए हैं। उनके ऊपर यह औदारिक शरीर हैं। इस प्रकार तीन शरीररूपी थैलेमें यह आत्मा है।

आठ कर्मोंमें चार कर्म घातियाकर्म कहलाते हैं। और अघातिया कर्म कहलाते हैं। मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय ये चार कर्म घातिया हैं।

हमने पहले कहा था कि आठ कर्म ही सब कर्मोंके मूल हैं। इन कर्मोंके मूलमें तीन पदार्थ हैं। वह क्या है सुनो! राग, द्वेष, मोह, ये तीन कर्मोंके मूल हैं। इनको भावकर्मके नामसे भी कहते हैं।

उपर्युक्त आठ कर्म द्रव्यकर्म हैं। और तीन भावकर्म हैं। और जो शरीर दिख रहा है वह नोकर्म है। इसलिए कर्मकांड तीन प्रकारका है, द्रव्यकर्म, भावकर्म, और नोकर्म।

नोकर्म तैलयंत्रके समान है, द्रव्यकर्म तो खलके समान है। और भावकर्म तेलके समान है एवं आत्मा आकाशके समान है।

जिस प्रकार तेलीके यहां यंत्र, खल, तेल व आकाश ये चार पदार्थ रहते हैं, इसी प्रकार द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म व आत्माका एकत्र संयोग है। अर्थात् आत्मा इन तीनोंके बीच स्थान पाकर रहता है।

तीन कर्मकांडोंमें वर्ण, रस, गंध, रूप, गुण, मौजूद है। परंतु आत्माको वर्णादिक नहीं हैं, वह तो केवल सुज्ञानज्योतिसे युक्त है।

उस तैलयंत्रके बीचमें स्थित आकाशके समान यह आत्मा इस शरीरमें पादसे लेकर मस्तक तक सर्वांगमें संपूर्ण भरा हुआ है। चाहे लकडी मोटी हो या छोटी हो उसके प्रमाणसे अग्नि रहती है, उसी प्रकार यह शरीर मोटा हो या छोटा हो उसके प्रमाणसे आत्मा गुरुदेह लघुदेहमें रहता है।

लकडीके भागको उल्लंघन कर अग्नि नहीं रह सकती है। जितने प्रमाणमें लकडी है उतने ही प्रमाणमें अग्नि है। इसी प्रकार यह आत्मा भी जितने अंशमें देह हैं, उतने अंशमें सर्वत्र भरा हुआ है। देह-प्रमाण आत्मा है।

वृक्षके अंदरके भागमें अर्थात् काष्ठभागमें अग्नि है, परन्तु बाहरके पत्तोंमें अग्नि नहीं है। इसी प्रकार आत्मा इस शरीरमें अंदर भरा हुआ है, परंतु बाहरके रोमसमूह, केश, और नखोंमें यह आत्मा नहीं है। शरीरके भागमें नाखूनसे दबानेपर जहांतक दर्द होती है वहांतक आत्मा है, यह समझना चाहिए। जहां दर्द नहीं है वहां आत्मा नहीं है। नख, केश व रोगोंमें दर्द होती नहीं, इसलिए वहांपर आत्मा भी नहीं है। इस बातको हे भव्य ! अच्छीतरह ध्यानमें रक्खो।

छह द्रव्योंमें द्रव्य, गुण और पर्यायके भेदसे तीन विकल्प होते हैं। उनको भी दृष्टांतके साथ अब वर्णन करेंगे।

कनक अर्थात् सुवर्णनामक द्रव्य है, उसका गुण पीतवर्ण है। हार कंकण, कुंडल आदि उसके पर्याय हैं। इसी प्रकारके तीन विकल्पोंको सभी द्रव्योंमें लगा लेना चाहिए।

दूध नामका पदार्थ रसद्रव्य है। मधुर, श्वेत, आदि उसके गुण हैं। दही, छाछ, मक्खन आदि उसके पर्याय हैं।

निराकाररूपी पदार्थ जीव द्रव्य है। उसके गुण ज्ञान दर्शन है। कर्मके वशीभूत होकर मनुष्य, देव आदि गतियोंमें भ्रमण करना वह पर्याय है।

द्रव्यदृष्टिसे पदार्थ एक होनेपर भी पर्याय भेदसे अनेक विकल्पोंसे विभक्त होते हैं। द्रव्यपर्याय व गुणके समुदाय ही यह पदार्थ है। यह सभी द्रव्योंका स्वभाव है।

जिस प्रकार कंकणको कुंडल बना सकते हैं। कुंडलको बिगाडकर हार बना सकते हैं। हार को भी तोडकर सोनेकी थाली बना सकते हैं। इस प्रकार सोनेके अनेक पर्याय हुए। परंतु सबमें सुवर्ण नामका द्रव्य एक ही है। उसमें कोई अंतर नहीं है।

यह मनुष्य एक दफे मृग होता है। मृग ही देव बनता है। देव वृक्ष होता है। मनुष्य, मृग, देव, व वृक्षके भेदसे जीवके चार पर्याय हुए। परंतु सबमें भ्रमण करनेवाला जीव एक ही है।

पुरुष स्त्री बन जाता है, स्त्री पुरुष बन जाती है। और वही कभी नपुंसक पर्यायमें जाती है, इस प्रकार ये तीन पर्याय हैं। परंतु उन तीनोंमें जीव एक ही है।

अणुमात्र देहको धारण करनेवाला जीव हजार योजन प्रमाणके शरीरको धारण करनेपर उतना ही बडा होता है। बीचके अनेक प्रमाणके शरीरोंको धारण करनेपर उसी प्रमाणसे रहता है।

हे भव्य! यह सब वर्णन किसी एक जीवके लिए नहीं है। सभी संसारी जीवोंकी यही रीत है। समस्त कर्मोंको दूर करके जो आत्माको देखते हैं, वहां कोई झंझट नहीं है।

देखो! स्फटिकरत्न तो बिलकुल शुभ्र है। जिस प्रकार उसके पीछे अन्य रंगके पदार्थोंको रखनेपर उसका भी वर्ण बदलता रहता है, उसी प्रकार तीन शरीररूपी घटके संबंधसे यह आत्मा अतिकल्मष होकर संकटोंका अनुभव करता है।

यह आत्मा शरीरमें रहता है। परंतु उसे कोई शरीर नहीं है। सुज्ञान ही उसका शरीर है। आत्मा शरीरको स्पर्श करनेपर भी उससे अस्पृष्ट है, परंतु शरीरके सर्वांगमें भरा हुआ है। यह आत्माका अंग है।

वह आत्मा आगसे जल नहीं सकता है। पक नहीं सकता। पानीसे भीग नहीं सकता है। अस्त्र, शस्त्र, कुल्हाडी आदिसे छेदा भेदा नहीं जा सकता है। पानी, अग्नि, अस्त्र, शस्त्रादिककी बाधा शरीरके लिए है, आत्माके लिए नहीं।

मांस, रक्त, चर्ममय प्रदेशमें रहनेपर भी दूध मांसचर्ममय नहीं है। अपितु संसेव्य है। उसी प्रकार मांसास्थिचर्म कर्मरूपी शरीरमें रहनेपर भी आत्मा शुद्ध है, परम निर्मल है।

वह आत्मा लोकके अंदर व बाहर जानता है व देखता है। कोटि सूर्य व चंद्रके प्रकाशसे युक्त है। जिस प्रकार मेघसे आच्छादित होकर प्रतापी सूर्य रहता है, उसी प्रकार यह आत्मा कर्ममेघसे आच्छादित होकर रहता है।

तीन लोकको हाथसे उठाकर हथेलीमें रखनेकी शक्ति इस आत्माको है। तीन लोकका जितना प्रमाण है उतना ही इसका भी प्रमाण है। अर्थात् तीन लोकमें सर्वत्र वह व्याप्त हो सकता है। परंतु जिस प्रकार बीजमें वृक्ष छिपा रहता है, उसी प्रकार सर्व शक्तिमान् यह आत्मा इस छोटेसे शरीरमें रहता है।

रविकीर्ति ! कर्मके नाश करनेपर तो सभी हमारे समान ही बनते हैं। उन कर्मोंका नाश किस प्रकार किया जा सकता है उसका वर्णन आगे किया जायगा। यह जीवके स्वरूपका कथन है। अब पुद्गलके संबंधमें कहेंगे। उसे भी अच्छी तरह सुनो।

रविकीर्तिराजने बीचमें ही कहा कि प्रभो ! यहां एक शंका है। आपश्रीने फरमाया कि आठ कर्म तो तैजस कार्माण शरीरके अंदर रहते हैं तो फिर बाहरका शरीर (औदारिक) तो उन कर्मोंसे बाहर है, ऐसा अर्थ हुआ। अर्थात् औदारिक शरीरके लिए कर्मोंका कोई संबंध नहीं है। भगवंतने उत्तरमें फरमाया कि ऐसा नहीं है। सात कर्म तो अंदरके तैजस कार्माण शरीरसे संबंध रखते हैं। परंतु नामकर्म तो बाहर व अंदरके दोनों शरीरोंसे संबंध रखता है, अर्थात् सातकर्म तो तैजस कार्माणमें रहते

हैं। परंतु नामकर्म तो औदारिक व उन अंतरंग शरीरोंमें भी रहता है, अब समझ गये ?

रविकीर्ति राजने कहा कि 'समझ गया, लोकनाथ!'

आगे पुद्गल द्रव्यका वर्णन होने लगा। पूरण व गलनसे युक्त मूर्तवस्तुका नाम पुद्गल है। पूरकर व गलकर वह पदार्थ तीन लोकमें सर्वत्र भरा हुआ है।

पांचवर्ण, आठ स्पर्श, दो गंध, और पांच रस इन बीस गुणोंसे वह पुद्गल युक्त है। पांच इंद्रियोंके विषयभूत पदार्थ, पांच इंद्रिय, आठ कर्म, पांच शरीर, मन आदि मूर्त पदार्थ सभी पुद्गल हैं।

वह पुद्गल स्थूल सूक्ष्मके भेदसे पुनः छह भेदसे विभक्त होता है। उन स्थूल, सूक्ष्मोंके भेदको भी सुनो। स्थूलस्थूल, स्थूल, स्थूलसूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मसूक्ष्म, इस प्रकार छह भेद हैं। पत्थर, जमीन, आदि पदार्थ स्थूलस्थूल हैं। जल तैल आदि स्थूल हैं। छाया, धूप, चांदनी आदि स्थूलसूक्ष्म हैं। चक्षुरिंद्रियको छोडकर बाकीके चार इंद्रियोंको गोचर होनेवाले शीतल पवन, ध्वनि, सुगंध आदिक सूक्ष्मस्थूल हैं। कर्मरूपी पुद्गल सूक्ष्म है। इससे भी अधिक सूक्ष्मसूक्ष्म गुणसे युक्त और एक पुद्गलका भेद है। इस प्रकार पुद्गलके छह अंग हैं।

सरलतासे निकालना, जरा सावकाशसे निकालना, निकालनेपर भी नहीं आना, मृदु, चार इंद्रियोंसे गम्य, कर्मगम्य ये पांच भेद हैं। परंतु छठे सूक्ष्मसूक्ष्म नामके भेदमें ये नहीं पाये जा सकते हैं।

इस पुद्गलका तीन भेद है। अणु, परमाणु व स्कंधके भेदसे तीन प्रकार है। परमाणु पांचों ही इंद्रियोंसे गोचर नहीं हो सकता है। उससे सूक्ष्म पदार्थ लोकमें नहीं है। उसे ही सूक्ष्मसूक्ष्म कहते हैं।

अनंत परमाणुवोंके मिलनेपर एक अणु बनता है। दो तीन चार आदि अणुवोंके मिलनेपर पिंडरूप स्कंध बनता है। इस प्रकारके पर्याय पुद्गलके हैं।

अणुके निम्न श्रेणीमें स्थित परमाणु एक दो तीन आदि संख्यामें मिलकर अणुतक पहुंच जाते हैं। वह भी एक तरहसे स्कंध है, क्यों कि अणु भी कारणस्कंध कहलाता है।

अणु, परमाणु, स्कंधके रूपसे कभी पुद्गलके तीन भेद होते हैं तो कभी अणु शब्दको छोडकर परमाणु व स्कंधके नामसे दो ही भेदको करते हैं।

परमाणुको स्पर्शन, रसन, गंध, वर्ण मौजूद है। परंतु शब्द नहीं है। परमाणु मिलकर जब स्कंध बनते हैं। तब शब्द की उत्पत्ति होती है! वह पर्याय है।

पुद्गलके पर्यायमें स्थिर पर्याय और अस्थिर पर्याय नामक दो भेद हैं। पृथ्वी, मेरुपर्वत आदि स्थिर पर्याय हैं। बाकीके पृथक् पृथक् संचरण करनेवाले अस्थिर पर्याय हैं। अभीतक पुद्गलका वर्णन किया अब आगेके द्रव्यका वर्णन करेंगे।

" प्रभो! ठहर जाईये! मेरी यहांपर एक शंका है, हे चिद्गुणाभरण! कृपाकर कहियेगा। आपने फरमाया कि पांच शरीर पुद्गल हैं। परंतु कर्मके वर्णनमें तीन ही शरीरोंका वर्णन किया। ये दो शरीर और कहांसे आये? कृपया कहिये "। रविकीर्ति राजने प्रश्न किया।

उत्तरमें भगवंतने कहा कि सुनो! नारकियोंको, देवोंको औदारिक शरीर नहीं है, उनको वैक्रियक शरीर है। और वैक्रियके साथ उनको कूर तैजस व कार्माण शरीर रहते हैं। इस प्रकार उनको तीन शरीर हैं। मनुष्य व तिर्यंचोंका शरीर प्राप्त आकारमें ही रहता है। उसे औदारिक कहते हैं। परन्तु देव नारकी इच्छित रूपमें अपने शरीरको परिवर्तन कर सकते हैं, वह वैक्रियक है।

उत्तम संयमको धारण करनेवाले मुनियोंको तत्वमें संशय उत्पन्न होनेपर मस्तकमें एक हस्तप्रमाण शुभ सूक्ष्म शरीरका उदय होकर हमारे समीप आजाता है। और संशयनिवृत्त होकर जाता है। उसे

आहारक * शरीर कहते हैं। तत्वविषयका संदेह दूर होते ही स्वतः भी अंतर्मुहूर्तके अंदर नष्ट होता है। फिर वह मुनिराज सदाके भांति रहते हैं। उसे आहारक शरीर कहते हैं। इस प्रकार आहारक, औदारिक वैक्रियक, तैजस व कार्माणके भेदसे शरीरके पांच भेद हैं।

इसी प्रकार लोकमें धर्म व अधर्म नामक दो द्रव्य सर्वत्र भरे हुए हैं। निर्मल आकाशके समान अमूर्त हैं, अखंड हैं।

धर्मद्रव्य जीव पुद्गलोंको गमन करने के लिए सहकारी है, और अधर्मद्रव्य ठहरने के लिए सहकारी है। जिस प्रकार कि पानी मछलीको चलनेके लिए सहकारी व वृक्षकी छाया धूपमें चलनेवालोंको ठहरने के लिए सहकारी है। जो नहीं चलता है उसे धर्मद्रव्य जबर्दस्ती चलाता नहीं है, चलनेवालोंको रोकता नहीं है, पानीमें मछली जिस प्रकार चलती है, यदि वह ठहर जायतो पानी उसे जबर्दस्ती चला नहीं सकता है। और चलनेवाली मछलीको रोक भी नहीं सकता है। परंतु वहांपर चलनेके लिए पानी ही सहकारी है। क्यों कि पानीके विना केवल जमीनपर वह मछली चल ही नहीं सकती है। इसी प्रकार जीव पुद्गल इधर उधर चलनेवाले पदार्थ हैं। उनको चलनेके लिए बाह्य सहकारी धर्मद्रव्य है।

वृक्षकी छाया चलनेवालोंको हाथ पकडकर बैठनेके लिए नहीं कहती है। बैठनेवालोंको रोकती भी नहीं है। परंतु थके हुए पथिक वृक्षकी छायामें ही बैठते हैं, कठिन धूपमें बैठते नहीं है। इसलिए बैठनेवाले जीव पुद्गलोंको बैठनेके लिए अथवा ठहरनेके लिए बाह्य सहकारी जो द्रव्य है वह अधर्म द्रव्य है।

आकाश नामक और एक द्रव्य है जो कि लोक अलोकमें अखंड

* आहरदि अणेण मुणी सुहमे अत्थे सयस्स संदेहो।
गत्ता केवलि पासं तम्हा आहरगो जोगो॥
नेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्ति.

रूपसे भरा हुआ है। और सभी द्रव्योंको जितना चाहे उतना अवकाश देकर महाकीर्तिशालीके समान विशाल है।

काल नामका द्रव्य परमाणुके रूपमें तीन लोकमें सर्वत्र भरा हुआ है। वह परमाणु अनंत संख्यामें होनेपर भी एक दूसरेसे मिलते नहीं। रत्नराशिके समान भिन्न २ हैं।

स्पर्श, रस, गंध, वर्णादि उन कालाणुवोंको नहीं है। आकाशके रूपमें ही है। कदाचित् आकाशको ही परमाणु रूपमें खंडकर डाल दिया है। ऐसा मालुम हो रहा है। लोकमें वह सर्वत्र भरा हुआ है।

उसमें व्यवहारकाल व निश्चयकालके भेदसे दो विभाग हैं। लोकमें व्यवहारके लिए उपयुक्त दिन, मास, घटिका, निमिष, वर्ष, याम, प्रहर आदि सभी व्यवहार काल है। इस अमित लोकमें सर्वत्र भरा हुआ निश्चय काल है। पदार्थोंमें नवीन, पुराना, आदि परिवर्तन के लिए वह कालद्रव्य कारण है। अन्य द्रव्योंकी वर्तनाके लिए वह कारण है। जिस प्रकार कि विदूषक अपने मुखको टेढा मेडा कर हसकर दूसरोंको हसाता है।

हे भव्य! जीव पुद्गलको आदि लेकर छह द्रव्योंका वर्णन किया गया। उन छह द्रव्योंके मूलमें कुछ तरतमभाव है, उनको अब अच्छी तरह सुनो।

आकाश, धर्म व अधर्म द्रव्य एक एक स्वतंत्र होकर अखंडरूप है। परंतु जीव पुद्गल व काल ये तीन द्रव्य असंख्यात कहलाते हैं।

अनेक जीवोंकी अपेक्षा जीव खंडरूप है। परंतु एक जीवकी अपेक्षा अखंडरूप है। कालाणु भी अनेक की अपेक्षा खंडरूप है, परंतु एक अणुकी अपेक्षा तो अखंड ही है।

पुद्गलके स्कंधको भिन्न करने पर खंड होते हैं, एवं मिले हुए अणुवोंको भी भिन्न करनेपर खंड होते हैं। परमाणु मात्र अखंडरूप ही है। वह खंडित नहीं हो सकता है।

छह द्रव्योंमें पुद्गल ही मूर्त है, बाकीके पांच द्रव्य मूर्त नहीं है। सायमें हे रत्निकीर्ति ! उन छह द्रव्योंमें ज्ञानसे युक्त द्रव्य तो जीव एक ही है। अन्य द्रव्योंमें ज्ञान नहीं है। गतिके लिए सहकारी धर्मद्रव्य ही है। स्थितिके लिए सहकारी अधर्म ही है। स्थान दानके लिए आकाश ही समर्थ है। वर्तना परिणतिके लिए काल ही कारण है। अर्थात् वे द्रव्य अपने २ स्वभावके अनुसार ही कार्य करते हैं। अपने कार्यको छोडकर दूसरोंका कार्य वे कर नहीं सकते हैं।

जीवपुद्गल दो पदार्थ संचरण शील हैं अर्थात् वे आकाश प्रदेशमें इधर उधर चलते हैं। परंतु बाकीके ४ द्रव्य इधर उधर चलते नहीं हैं। परस्पर बंध भी जीव पुद्गलोंमें हैं, बाकीके द्रव्योंमें वह नहीं है।

जीवके संचलनेके लिए पुद्गल कारण है। पुद्गलके चलनेके लिए काल कारण है। इस प्रकार काल, कर्म व जीवका त्रिकूट मिलकर चलन होता है। जीवद्रव्य जबतक कर्मके साथ युक्त रहता है तबतक वह चतुर्गति भ्रमण रूप संसारमें चलता है। परंतु कर्मोंको नष्टकर मुक्ति साम्राज्यमें जब जा विराजमान होता है तब वह चलता नहीं है।

लोकमें छह द्रव्य एकमेकमें मिलकर सर्वत्र भरे हुए हैं। परंतु एकका गुण दूसरेका नहीं हो सकता है। अपने २ स्वरूपमें स्वतंत्र है।

पंक्तिबद्ध होकर यदि लोकके समस्त जीव खडे हो जाय लोकका स्थान पर्याप्त नहीं है। पुद्गलद्रव्य तो उससे भी अधिक स्थूल है। इसी प्रकार काल द्रव्य, धर्म अधर्म आकाशमें सर्वत्र भरे हुए हैं।

जिस प्रकार दूधके घडेमें मधुको भर दिया जाय तो वह उसमें समा जाता है। उसी प्रकार आकाश द्रव्यके बीचमें बाकीके द्रव्य समाजाते हैं।

गूढ नागराजके बीच छिपे हुए गूढनिधिके समान तीन गाढ वातके बीच ये छह द्रव्य छिपे हुए हैं।

एक परमाणु जितने स्थान में ठहर सकता है उसे एक प्रदेश कहते है। पुद्गल संख्यात; असंख्यात, अनंत, व अनंतानंत प्रदेशी है। आकाश

अनंत प्रदेशी है। जीव, धर्म व अधर्म द्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं। हे भव्य ! काल द्रव्यके लिए एक ही प्रदेश है। काल द्रव्यका प्रदेश अत्यंत अल्प है, क्योंकि वह एक ही प्रदेशको घेरकर रहता है। अत एव वह काय नहीं है। बाकीके पांच द्रव्य अस्तिकायके नामसे कहलाते हैं।

गुण, पर्याय, वस्तुत्व इन तीन लक्षणोंसे काल द्रव्यको छह द्रव्योंमें शामिल किया है। परंतु काल द्रव्य एक प्रदेशी है, अनेक प्रदेशी नहीं है। इसलिए अस्तिकाय पांच ही हैं।

हे रविकीर्ति ! द्रव्य छह हैं। उनमें पांच अस्तिकाय हैं। अब तत्व सात हैं। उनका भी विवेचन अच्छीतरह सुनो।

इस प्रकार भगवान् आदिप्रभुने षड्द्रव्य, पंचास्तिकायोंका निरूपण दिव्यध्वनिके द्वारा कर सप्ततत्वोंका निरूपण प्रारंभ किया।

आदिचक्रेश भरतके पुत्र सचमुचमें धन्य हैं जिन्होंने समवसरणमें पहुंचकर साक्षात् तीर्थंकरका दर्शन किया। दिव्यध्वनि सुननेका भाग्य पाया। अनेक जन्मोंसे जिन्होंने ज्ञानार्जन करनेका अभ्यास किया है। विशिष्ट तपश्चरण किया है वे ही ऐसे सातिशय ज्ञानधारी केवलज्ञानी तीर्थंकरोंके पादमूलमें पहुंचते हैं। ऐसे पुत्रोंको पानेवाले भरतेश्वर भी धन्य हैं। वे सदा इस प्रकारकी भावना करते हैं कि—

हे परमात्मन् ! आप अक्षराभरण हैं, निरक्षर ज्ञानको धारण करनेवाले हैं, पापको क्षय करनेवाले हैं। परम पवित्र हैं। विमलाक्ष हैं। इसलिए हे चिदंबरपुरुष ! मेरे अंतरंगमें सदा बने रहो। और मेरी रक्षा करो।

हे सिद्धात्मन् ! आप आकाशरूपी पुरुष हो, आकाशके आकारमें हो, आकाशरूपी हो, आकाशरूपी शरीरसे युक्त है, आकाशाधार हो। इसलिए हे निरंजनसिद्ध ! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इति दिव्यध्वनिसंधिः ॥

—×—

अथ तत्वार्थ संधिः।

देवाधिदेव भगवान् आदिप्रभुने उस रविकीर्तिराजको आत्मकल्याणके लिए जीवादि सप्ततत्वोंका निरूपण किया। क्योंकि लोकमें तीर्थंकरोंसे अधिक उपकारक और कोई नहीं है।

हे भव्य रविकीर्ति! सुनो, अब सप्ततत्वके मूल, रहस्य आदि सबका वर्णन करेंगे, बादमें कर्मोंको नाशकर कैवल्यको पानेके विधानको भी कहेंगे। अच्छीतरह सुनो। तत्व सात हैं, जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा व मोक्ष। इस प्रकार सात तत्वोंके स्वरूपको सुनो। जीव बद्धात्मा व शुद्धात्माके भेदसे दो प्रकार है। तीन शरीरसे युक्त जीव बद्धात्मा कहलाते हैं। तीन शरीरसे रहित जीव शुद्धात्मा कहलाते हैं। सिद्ध परमात्मा मुक्त हैं, उनको कोई शरीर भी नहीं है। सिद्ध, मुक्त, निर्देही इन सब शब्दोंका एक ही अर्थ है। संसारी, बद्ध, सदेही इन शब्दोंका अर्थ एक ही है।

स्पर्शन, रसन घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, इस प्रकार पांच इंद्रिय व दश प्राणोंको धारण करनेवाले शरीर व कर्मसे युक्त जीव संसारी जीव कहलाते हैं। इंद्रिय, शरीर, कर्म, प्राण, इनका नाश होकर जब यह आत्मा ज्ञानेंद्रिय व ज्ञान शरीरको पाकर मुक्ति सुखको पाता है, उस समय शुद्ध जीव अथवा मुक्त जीव कहलाता है। हे भव्य! जितने भी जीव मुक्त हुए हैं। वे सब पूर्वमें संसार युक्त थे, नंतर युक्तिसे कर्मको नाशकर शररीरके अभावमें मुक्त हुए हैं। मुक्तजीव सदासे मुक्तिमें ही रहते आये नहीं, अपितु विचार करनेपर वे इस संसारमें ही रहते थे। परंतु कर्मको दूरकर मुक्तिको गये हैं। वे संसारमें अब वापिस नहीं आते हैं। उनको नित्य ही मुक्ति है। हे रविकीर्ति! आपलोगोंके भी कर्मका नाश होजाय तो आपलोग भी उनके समान ही मुक्त होंगे। यह संसार नित्य नहीं है। भव्योंके लिए वह अविनश्वर मुक्ति ही नित्य है।

हे भव्य ! उन जीवोंमें भव्य व अभव्योंका भेद है। भव्य तो मुक्तिको पाते हैं। अभव्य मुक्तिको प्राप्त नहीं कर सकते हैं। भव्योंमें भी सारभव्य और दूरभव्य इस प्रकार दो भेद हैं। सार भव्य तो शीघ्र मुक्तिको प्राप्त करते हैं। दूरभव्य तो विलंबसे मुक्तिको जाते हैं।

कुछ भवोंमें मुक्ति पानेवाले सारभव्य हैं। अनेक भवोंमें मुक्ति पानेवाले दूरभव्य हैं। इतना ही अंतर है। सारभव्य हों या दूरभव्य हों जो मोक्षकन्नको पानेवाले हैं वे सुखी हैं।

अभव्य जीव इस जन्म-मरणरूपी संसारमें परिभ्रमण करते हैं। वे दुःख देनेवाले कर्मको नष्ट कर मुक्तिको प्राप्त नहीं करते हैं।

वे अभव्य जीव शरीरको कष्ट देकर उग्र तप करते हैं। अहंकारसे शास्त्र पठन करते हैं व अपनी विद्वत्ताका प्रदर्शन करते हैं। स्वर्गमें जाते हैं इस प्रकार संसारमें ही परिभ्रमण करते हैं। मुक्तिको नहीं जाते हैं। आत्मसिद्धिको नहीं पाते हैं। स्वर्गमें वे ग्रैवेयक विमानपर्यंत जाते हैं। फिर भी दुर्गतियोंमें ही पडते हैं। वे अज्ञानी अपवर्ग में चढते नहीं हैं।

वे नरक, तिर्यंच, निगोदराशि आदि नीच योनियोंमें व मनुष्य देव आदि गतियोंमें बार २ जन्म लेते हैं। परंतु मुक्तिको प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

बीचमें ही रविकीर्तिने प्रश्न किया कि स्वामिन् ! तपश्चर्याकर व अनेक शास्त्रोंको अध्ययन कर भी वे मुक्तिको क्यों नहीं पाते हैं ?

उत्तरमें भगवंतने कहा कि तपश्चर्या व शास्त्रपठन बाह्याचरण है। वह आत्मविचार नहीं है। आत्महितके लिए तो आत्मध्यानकी ही आवश्यकता है। उसका निरूपण आगे करेंगे। अस्तु. वह भव अभव्योंके लिए ध्रुव है। भव्योंके लिए ध्रुव नहीं है। उनको तो मुक्ति ही ध्रुव है। जीवोंमें मुक्तजीव, संसारीजीवका नामभेद होनेपर भी शक्तिकी अपेक्षासे कोई अंतर नहीं है। आत्माकी शक्तिको जो व्यक्तमें लाते हैं वे मुक्तजीव हैं। व्यक्तमें न लानेवाले संसारी जीव हैं। क्योंकि आत्माकी शक्ति तो एक है।

सिद्धोंकी निर्मल आत्माका गुण चिद्गुण है, बद्धात्मावोंका गुण भी वही है। सिद्धात्मा ज्ञानी है, बद्धात्मा भी ज्ञानी है, शुद्ध व बद्धका ही भेद है, अन्य भेद नहीं है। एक उत्तम सोना व दूसरा हलका सोना, दोनों सोने ही कहलाते हैं। पीतल कांसा वगैरे नहीं। किट्टकालिमादि दोषोंसे युक्त सोना हलका सोना कहलाता है। सर्वथा दोष रहित सोना उत्तम कहलाता है। उत्तम व हलकेका भेद है, अन्यथा सुवर्ण तो दोनों ही है। पुटपर चढानेपर छह सात टंचका सोना भी शुद्ध होकर सौ टंचका सोना बन जाता है। उसी प्रकार कर्ममलको जलानेपर यह आत्मा भी परिशुद्ध होकर मुक्त होता है।

दोषसे युक्त अवस्थामें सोनेका रंग छिपा हुआ था, परंतु पुटपर चढानेके बाद दोष, जलगये, वह उसका रंग बाहर आया, तब उसे विशुद्ध सोना कहते हैं। इसी प्रकार छिपे हुए गुण दोषोंके नाश होनेपर जब बाहर आते हैं तब उसे मुक्तात्मा कहते हैं।

शक्तिकी अपेक्षा सर्व जीवोंमें ज्ञान दर्शन, शक्ति व सुख मौजूद है, परंतु सामर्थ्यसे कर्मको दूर कर जो बाहर उन गुणोंको प्रकट करते हैं वे ही मुक्त होते हैं, उस व्यक्तिका ही नाम मुक्ति है।

बीजके अंदर स्थित वृक्ष शक्तिगत है। उसे बोकर, अंकुरित कर पल्लवित कर जब वृक्ष किया जाता है उसे व्यक्त हैं। इसी प्रकार जीवोंमें भी शक्ति व्यक्तिका भेद है।

जीवतत्वकी कलाको ध्यानमें रखना, अब निर्जीव तत्वका निरूपण करेंगे। जीवतत्वको छोडकर बाकीके पांच द्रव्य निर्जीव हैं। आकाश, धर्म अधर्म, काल, पुद्गल इन पांच द्रव्योंको सुख दुःखका अनुभव नहीं होता हैं। उनको देखने व जाननेकी शक्ति नहीं है। इस लिए उनको निर्जीव अथवा अजीव कहते हैं। उनमें चार द्रव्य तो दृष्टिगोचर होते नहीं हैं। परंतु पुद्गल तो दृष्टिगोचर होता है। बातगर्भमें वह पुद्गलद्रव्य सर्वत्र भरा है। पुद्गलके छह भेदोंका वर्णन पहिले कर ही चुके हैं।

स्थूलस्थूल, स्थूल, स्थूलसूक्ष्म, ये पुद्गलके तीन भेद तो सबको दृष्टि गोचर होते हैं। परंतु बाकीके तीन भेद तो किसी दृष्टि गोचर नहीं होते हैं। कर्म वर्गणा नामक सूक्ष्मपुद्गल स्निग्ध व रूक्ष रूप में है। स्निग्ध पुद्गल तो रागरूप है। और रूक्षपुद्गल द्वेषरूप है। यह पुद्गल आत्मा प्रदेशमें बंधको प्राप्त होता है।

भोजन करना, स्नान करना, सोना इत्यादि विषयोंको मनुष्य प्रत्यक्ष देखता है। यह सब पुद्गलकी ही क्रियामें हैं। बाकीके पांच द्रव्योंको तो कौन देखता है? नदी, पानी, बरसात, खेत, घर, तंबू, हवा, शीत, गर्मी, पर्वत, मेघ, शरीर, आमला, मधुर, कडुवा, चरपरा, लाल, पीला, काला, सफेद वगैरे सभी पुद्गल हैं। रत्नहार, कंकण, नथ, हार, वगैरे आभरण, धन, कनक, पीतल, ताम्र, चांदी वगैरे सर्व पुद्गल हैं।

बडे घडे में जिस प्रकार पानी भरा रहता है उसी प्रकार लोकमें यह पुद्गल भरा हुआ है। समुद्रमें जिस प्रकार मछलियां रहती हैं उस प्रकार वहां जीवगण विद्यमान हैं।

पूर्व में कह चुके हैं कि तीन पुद्गल दृष्टिगोचर होते हैं। और तीन नहीं होते हैं। जो दृग्गोचर नहीं होते हैं वे सर्वत्र भरे हुए हैं। उनके बीच जीव छिपे हुए हैं।

पर्वत, वृक्ष, भित्ति आदि जो पुद्गल हैं वे चलनेवाले जीवादिकोंको रोकते हैं। परंतु परमाणु अणु तो अत्यंत सूक्ष्मपुद्गल हैं। वे किसीको भी आघात नहीं करते हैं।

धर्मादि चार द्रव्य तो कुछ हां ना नहीं कहते हुए मौनसे रहते हैं। परंतु जीवपुद्गल तो आपसमें लडनेवाले फैलवानोंके समान हैं।

उनका बिलकुल संबंध नहीं है, यह नहीं कह सकते, परंतु काल द्रव्य जिधर कर्म ज़ाता है उधर चला जाता है। पुद्गल की परिणति के लिए वह कारण है। इसलिए मालुम होता है कि उसके ही निमित्तसे जीव पुद्गलोंका व्यवहार चल रहा है।

इसलिए जीव, पुद्गल व काल इन तीन द्रव्योंको अनादि कहते हैं। नहीं तो जब कि छह ही द्रव्य अनादि हैं तो तीन ही द्रव्योंमें यह भिन्नता क्यों आई? इसलिए लोकमें इस बातकी प्रसिद्धि हुई कि कर्म, आत्मा व काल ये तीन पदार्थ अनादि हैं। और उनके ही निमित्तसे धर्म, अधर्म व आकाश कार्यकारी हुए। इसलिए वे आदि वस्तु हैं, ऐसा भी कोई कहते हैं।

इन सर्व द्रव्योंके यथार्थ स्वरूपको कैवल्यधाममें स्थित सिद्ध परमेष्ठी वस्तुस्वभाव समझकर प्रत्यक्ष निरीक्षण करते हैं। मोक्ष जीवद्रव्यके लिए ही प्राप्त हो सकता है। पुद्गलकेलिए मुक्ति नहीं है। क्यों कि वह अजीव तत्व है। इस बातको तुम निश्चयसे जानो।

मन वचन, कायके परिस्पंद होनेपर वह अत्यंत सूक्ष्म कार्माणरज अंदर आत्म प्रदेशमें आकर प्रविष्ठ होते हैं, उसे आस्रव, बंध कहते हैं।

जिस प्रकार जहाजमें छिद्र होनेपर अंदर पानी जाता है, उसी प्रकार मन, वचन, कायकी चेष्टारूपी छिद्रके होनेपर कार्माणरज आत्म प्रदेशमें प्रवेश कर जाते हैं। उसे आस्रव कहते हैं।

मूलतः पांच भेदके द्वारा वह आस्रव विभक्त होता है। और उत्तर भेदोंसे ५७ भेदोंसे विभक्त होता है। परंतु यह सब इन मन, वचन, कायोंके द्वारा ही होते हैं। उनको योग कहते हैं।

पहिले अंदर जाते समय पुद्गलरजके रूपमें रहते हैं। बादमें भावकर्मका संबंध जब हो जाता है तब कर्मरूपमें परिणत होते हैं। यह आस्रव तत्व है। आगे बंधतत्वका निरूपण करेंगे।

मन वचन कायके संबंधसे अंदर प्रविष्ट वह रज क्रोध, राग, मोहके संबंधसे कर्मरूप परिणत होकर उसी समय आत्मप्रदेशमें बद्ध होते हैं। उसे बंध कहते हैं। आत्मप्रदेशमें प्रविष्ट करते हुए आस्रव कहलाता है। परंतु वहांपर जीवात्माके प्रदेशमें बद्ध होनेके बाद बंध कहलाता है। आस्रव व बंधमें इतना ही अंतर है।

24

उस सूक्ष्म रजमें दो गुण विद्यमान है । एक स्निग्ध व एक रूक्ष। स्निग्ध गुण ही ममकार है, और रूक्ष ही क्रोध है । इन दोनों गुणोंके निमित्तसे आत्मप्रदेशमें वे बद्ध होते हैं ।

अग्निसे अच्छी तरह तप्त लोहेका गोला जिस प्रकार चारों तरफसे पानीको खींचलेता है उसी प्रकार भावकर्मरूपी अग्निसे संतप्त यह जीव सर्वांगसे कर्मजलको ग्रहण करता है ।

क्षुधाकी निवृत्ति व तृप्तिके लिए ग्रहण किया हुआ आहार शरीरमें पहुंचकर उदराग्निके संबंधसे सप्तधातुओंके रूपमें परिणत होता है, उसी प्रकार पुद्गल परमाणु आत्मप्रदेशमें पहुंचकर भावकर्मके संबंधसे अष्टकर्मके रूपमें परिणत होते हैं ।

जिस समय कर्मबद्ध होते हैं उसी समय वे फल नहीं देते हैं। आत्म प्रदेशमें बद्ध होनेके बाद कुछ समय रहकर, स्थितिके पूर्ण होनेपर जिस समय छूट कर जाते हैं, उस समय जीवको सुख या दुःखके अनुभव करा कर जाते हैं ।

बीजको बोनेपर चाहे वह कटुबीज हो या मधुरबीज हो, बोते ही फल प्राप्त होते नहीं, अपितु कालांतरमें ही फल प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार पुण्यपाप कर्मके फलस्वरूप सुखदुःख संगृहीत होकर कालांतरमें ही अनुभवमें आते हैं । सुखके समय फूलकर दुःखके समय खिन्न होनेसे पुनश्च कर्मोंका बंध होता है । सुखदुःखके समय संमताभावसे आत्मविचार करनेपर बंध नहीं होता है । पहिलेके कर्म जर्जरित होकर चले जाते हैं और नवीन कर्म आकर बंधको प्राप्त होते हैं । इसी कर्मके निमित्तसे शरीरका संबंध होता है । उसी कर्मके कारणसे पुराने शरीरको छोडकर नवीन शरीरको ग्रहण करता है, और इसी प्रकार कर्मके निमित्तसे शरीरका परिवर्तन करते हुए यह आत्मा कर्ममें मग्न रहता है ।

जिस प्रकार एक तालाबमें एक ओरसे पानी आवे ओर एक ओरसे जावे तो जिस प्रकार हमेशा वह पानीसे भरा ही रहता है उसी प्रकार कर्मरज जीवप्रदेशमें आते हैं जाते हैं और बने रहते हैं ।

नवीन कर्म पहिले द्रव्यकर्मके साथ संबंधित होते हैं। और वह द्रव्यकर्म भावकर्मके साथ मिल जाता है और भावकर्मका आत्मप्रदेशमें बंध होता है। इस प्रकार बंधपरंपरा है। नवीनकर्मका पूर्वकर्मके साथ बंध है, पूर्व कर्मका भावकर्मके साथ बंध है। भावकर्मका जीवके साथ बंध है। इस प्रकार बंधका तीन भेद है। वैसे तो बंधका प्रकृति, स्थिति, प्रदेश व अनुभागके भेदसे चार भेद है। परन्तु विशेष वर्णनसे क्या उपयोग ? बंधतत्वके कथनको संक्षेपसे इतना ही समझो। आगे संवरतत्वका निरूपण करेंगे।

आनेवाले कर्मोंके तीन द्वारको तीन गुप्तियोंके द्वारा बंद करके अपनी आत्माको स्वयं देखना यह संवर है।

मौनको धारण कर, वचन व कायकी चेष्टाको बंदकर, आंख-मीचकर, मनको आत्मामें लगाना वही संवर है। उसे ही त्रिगुप्ति कहते हैं। जहाजके छिद्रको जिस प्रकार बंद करनेपर उसमें पानी अंदर नहीं आता है, उसी प्रकार तीव्रयोगसे जानेवाले योगोंको मुद्रित करनेपर कर्म अंदर प्रविष्ट नहीं होता है। अर्थात् गुप्तिके होनेपर संवर होता है। तीन गुप्तियोंमें चित्तगुप्तिकी प्राप्ति होना बहुत ही कष्टसाध्य है। जो संसारकी समस्त व्याप्तियोंको छोडकर आत्मामें मन लगाते हैं, उन्हींको इस गुप्तिकी सिद्धि होती है।

बंध व निर्जरा तो इस आत्माको प्रतिसमय प्राप्त होते रहते हैं। परंतु बंधवैरी संवरकी प्राप्ति होना बहुत ही कठिन है। निजात्मसंपत्ति की प्राप्तिके लिए वह अनन्यबंधु है। पहिले बद्धकर्म तो निर्जराके द्वारा निकल जाते हैं। नवीन आनेवाले कर्मोंको रोकने पर आत्माकी सिद्धि अपने आप होती है, हे रविकीर्ति ! इसमें आश्चर्यकी क्या बात है ?

श्रीमंतका खजाना कितना ही बडा क्यों न हो, आयको रोकनेपर, व्ययके चालू रहनेपर एक दिन वह खाली हुए विना नहीं रह सकता

है। इसी प्रकार आनेवाले कर्मोंको रोकनेपर पूर्वसंचित कर्म निकल जावे तो यह जीव एक दिन अवश्य कर्मरहित होता है।

इस प्रकार यह संवरतत्वका कथन है, पूर्वसंचित कर्मोंको थोडे थोडे अंशमें बाहर निकालना व नष्ट करना उसे निर्जरा कहते हैं।

नवीन आनेवाले कर्मोंको रोकना संवर है, पुराने कर्मोंको आत्म प्रदेशसे निकालना उसे निर्जरा कहते हैं, संवर और निर्जरामें इतना ही अंतर है। परमाणुमात्र भी स्नेह और कोपको धारण न कर एकाकी होकर परमहंस परमात्माको देखनेपर यह कर्म निर्जरित होकर जाता है, इसमें आश्चर्यकी क्या बात है।

उपवास आदि संयमको धारण कर मनमें उपशांतिको प्राप्त करते हुए शुद्धात्माका निरीक्षण करें तो यह कर्म क्षपित होता है।

निर्जराका दो भेद है, एक सविपाक निर्जरा और दूसरा अविपाक निर्जरा। सविपाकनिर्जरा तो सर्व प्राणियोंमें होती है। परंतु अविपाक निर्जरा मुनियोंमें ही होती है, सबको नहीं है।

अपने आप उदयमें आकर जो प्रतिनित्य कर्म निकल जाते हैं उसे सविपाकनिर्जरा कहते हैं। अनेक प्रकारके तपश्चर्यांके द्वारा शरीरको कष्ट देकर कर्म उदयमें लाया जाता है, एवं वह कर्म निर्जरित होता है उसे कृतपाक या अविपाकनिर्जरा कहते हैं।

एक फल तो ऐसा है जो अपने आप पककर वृक्षसे पडता है, और एक ऐसा है जिसे अनेक उपायोंसे पकाकर गिराते हैं। दोनों फल पक जाते हैं, इसी प्रकार कर्मोंके भी फल देकर खिरनेके प्रकार दो हैं।

संवरको सतत साथ लेकर जो निर्जरा होती है, वह उस आत्माको मोक्षमें ले जाती है। और उस संवरको छोडकर जो निर्जरा होती है वह इस आत्माको संसारबंधनमें डालती है। और भवरूपी समुद्रमें भ्रमण कराती है।

इस आत्माको ध्यानमें मग्न होकर प्रतिनित्य देखना चाहिए। ध्यान जिस समय करना न बने अर्थात् चित्तचंचल होजाय उस समय पहिले जो ध्यानके समय जिस आत्माका दर्शन किया है उसीका स्मरण करते हुए मौनसे रहना चाहिए।

ध्यानके समय निर्जरा होती है, ध्यान जिस समय न लगे उस समय ध्यान शास्त्रको छोडकर अन्य विचारमें समय बितावें तो हाथीके स्नानके समान है। वचन व कायमें चंचलता आनेपर भी मनको तो आत्मामें ही लगाना चाहिए। आत्मामें उस मनको लगावे तो राग द्वेषकी उत्पत्ति नहीं होती है। रागद्वेषके अभावसे संवरकी सिद्धि होती है।

इस आत्माको एक तरफसे कर्म आता है और एक तरफसे जाता है। आया हुआ कर्म बद्ध होता है। इस प्रकार आत्मा सदा कर्मसे बद्ध रहता है। इसलिए आते हुए कर्मोंके द्वारको बंद करके, पहिलेके आये हुए कर्मोंको आत्मप्रदेशसे निकाल बाहर करें तो यह आत्मा मोक्षमंदिरमे जा विराजता है। उसके मार्गको न समझकर यह आत्मा व्यर्थ ही संसा-रमें परिभ्रमण कर रहा है। सरोवरको आनेवाले पानीको रोककर पहिले संचितजलको निकाल देवें तो जिस प्रकार वह रिक्त होता है, उसी प्रकार संवर व निर्जराके मिलनेपर आत्मसिद्धि होती है।

धूलसे धुंदले हुए दर्पणको साफ करनेपर जिस प्रकार उसमें मुख दीखता है, उसी प्रकार कर्मधूलसे मलिन लेपको सुध्यानके बलसे दूर करें तो यह आत्मा परिशुद्ध होता है। हे भव्य यह निर्जरा तत्व है। इसे प्राप्तकर यह आत्मा आठों कर्मोंकी निर्जरा करते हुए समस्त कर्मोंको जब दूर करता है। एवं अपने आत्मामें स्थिर होता है उसे मोक्ष कहते है।

एकदेश अंशमें कर्मोंका निकलना उसे निर्जरा कहते हैं। समस्त कर्मोंका क्षय होना उसे मोक्ष कहते हैं। मोक्ष और निर्जरामें इतना ही अंतर है।

कोई कोई आत्मा पहिले घातिया कर्मोंको नाश करते हैं, और बादमें अघातिया कर्मोंको नाश करते हैं। और कोई घातिया और अघातिया कर्मोंको एक ही साथ नाश कर मुक्तिको जाते हैं।

कोई दंड, कपाट, प्रतर, लोकपूरणको करके मुक्तिको जाते हैं, और कोई इन चार समुद्घातकी अवस्थाको प्राप्त न करके ही मुक्ति चले जाते हैं। त्रिशरीररूपी कारागृहको जलाकर अष्टगुणोंको यह आत्मा जब वश में कर लेता है तब वह अशरीर आत्मा एक ही समयमें अमृतलोकमें पहुंच जाता है।

वह सिद्धलोक इस भूलोकसे सात रज्जु उन्नतस्थानपर है। परंतु सात रज्जुवोंके स्थानको यह आत्मा लीलामात्रसे एक ही समयमें तय कर जाता है।

तीन शरीर जब अलग हो जाते हैं तब यह आत्मा लोकाग्रभागको निरायास पहुंच जाता है जिस प्रकार कि एरंड फलके सूखनेपर उसका बीज, ऊपर उड जाता है। ऊपरके वातवलयमें क्यों ठहर जाते हैं? उससे ऊपर क्यों नहीं जाते हैं। इसका उत्तर इतना ही है कि उस वातवलयसे ऊपर धर्मास्तिकाय नहीं है जो कि उन जीवोंको गमन करनेमें सहकारी है। इसलिए वहींपर सिद्धात्मा विराजमान होते हैं।

वह संपत्ति अविनश्वर है, बाधारहित आनंद है। अनंत वैभवका वह साम्राज्य है, विशेष क्या? वचनसे उसका वर्णन नहीं हो सकता है। यह लोकातिशायी संपत्ति है, निश्रेयस है। यह सप्त तत्वोंमें अंतिम तत्व है।

इस प्रकार हे भव्य! सप्ततत्वोंके स्वरूपको जानकर उनमें पुण्य पापोंको मिलानेपर नवपदार्थ होते हैं। उनका भी विभाग सुनो।

आस्रव व बंधतत्वमें तो वे पुण्यपाप अंतर्भूत हैं। क्यों कि आस्रव में पुण्यास्रव, 'पापास्रव इस प्रकार दो भेद है। और बंधमें भी पुण्यबंध और पापबंध इस तरह दो भेद हैं।

गुरु, देव, शास्त्रचिंता, पूजा आदिके लिए जो मन वचन कायका उपयोग लगाया जाता है वह सब पुण्ययोग है। मद्यपान, जुआ, शिकार आदिके लिए उपयुक्त योग पापयोग है।

तीर्थवंदन व्रताराधना, जप, देवतावंदन आदिके लिए उपयुक्त योग पुण्य है। अनर्थके कार्यमें, एवं जार चोरादिक कथामें उपयुक्त योग पाप योग है। पुण्याचरणके लिए युपयुक्त योग पुण्यास्रवरूप है, पाप मार्गमें प्रवृत्त योग पापास्रव कहलाता है।

रागद्वेष और मोहके संयोगसे बंध होता है। राग और मोहका पुण्य और पापके प्रति उपयोग होता है, परंतु क्रोध अथवा द्वेष तो पापबंधके लिए ही कारण है। देवभक्ति, गुरुभक्ति, शास्त्रभक्ति, सद्गुण, विनयसंपन्नता आदि पुण्यबंधके लिए कारण हैं। स्त्री, पुत्र, धन, कनक आदिके प्रति जो ममता है वह पाप बंधके लिए कारण है। व्रत, दान, जप, तप, संघ आदिके प्रति जो ममत्व परिणति है वह पुण्य बंधके लिए कारण है, और हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, व परिग्रह आदिके प्रति जो स्नेह है वह पापबंधके लिए कारण है।

आत्मा स्वयं ही आत्माका है। इसे छोडकर अन्य पदार्थोंके प्रति आत्मबुद्धि करना वही मोह है। देव शास्त्र गुरुओंके प्रति ममत्वबुद्धि करना पुण्य है। शरीरके प्रति ममत्वबुद्धि करना वह पाप है।

जिनबिंब, पुस्तक, जपसर आदिके प्रति ममत्व बुद्धि करना वह पुण्य है। क्षिति, हेम, नारी आदियोंके प्रति जो अतिमोह है वह पाप है।

मोहको मिथ्यात्व भी कहते हैं। मोहको अज्ञान भी कहते हैं। यह सब आगम व अध्यात्मभाषाके भेदसे कथन है।

हे रविकीर्ति! इस प्रकार स्नेह और मोह पुण्य और पापके लिए जन्मगेहके रूप में हैं। परन्तु वह कोप इस आत्माको जलाता है। इसलिए वह पापरूप है। और राहुके समान है। धर्मके लिए अथवा भोगके लिए, किसी भी कारण के लिए क्यों न हो क्रोध करें तो वे धर्म और भोग भस्म होते हैं। और पापकर्मका ही बंध होता है।

पाप इस आत्माको नरक और तिर्यंचगतिमें लेजाता है, पुण्य स्वर्गलोकमें लेजाता है। दोनोंकी समानता होनेपर इस आत्माको मनुष्य गतिमें लेजाते हैं।

हे भव्य! ये दोनों पाप और पुण्य कर्मलेप है, आत्माके निज भाव नहीं हैं। वे पाप पुण्य आठ कर्मोंके रूपमें परिणत होकर आत्माको इस संसारमें परिभ्रमण कराते हैं।

वे कर्म कभी इस आत्माको सुंदर बनाते हैं तो कभी कुरूपी बनाते हैं। कभी यह आत्मा ज्ञानी है तो कभी मूर्ख कहलाता है। कभी देव, कभी नारकी, और कभी मनुष्य, और कभी तिर्यंचके रूपमें यह आत्मा दिखता है। यह सब उन पापपुण्योंका तंत्र है। कभी यह आत्मा क्रूर कहलाता है तो कभी शांत कहलाता है। कभी वीर कहलाता है और कभी डरपोक कहलाता है, कभी स्त्री बनता है और कभी पुरुष। यह सब विचित्रतायें आत्माको कर्मजनित हैं।

शुभ व अशुभ कर्मके वशीभूत होकर संसारके समस्त प्राणी इस भवबंधनमें पडकर दुःख उठाते हैं। जब इस अशुभ व शुभ कर्मको अपने आत्मप्रदेशसे दूर करते हैं तब वे मुक्तिको प्राप्त करते हैं।

सुकृत व दुष्कृत दोनों पदार्थ आत्माके लिए उपयोगी नहीं है। उन दोनोंको समान रूपमें देखकर जो परित्याग करते हैं वे विकृतिको दूर कर मुक्तिको प्राप्त करते हैं।

एक सुवर्णकी श्रृंखला है, और दूसरी लोहेकी श्रृंखला है। परंतु दोनों बंधनके लिए ही कारण है। ऐसे पुण्यपाप आत्माके विकारके लिए कारण है। इस प्रकार जीव पुद्गलके संसर्गसे सप्ततत्वोंका विभाग हुआ। और उनमें पुण्य पापोंको मिलानेपर नव पदार्थ हुए।

इस प्रकार सप्ततत्व और नव पदार्थोंका विवेचन हुआ। अब उनमें हेय और उपादेय इस प्रकार दो विभाग है। अजीव, पुण्यास्रव पापास्रव, पुण्यबंध, पापबंध, इनको हेय समझकर छोडना चाहिये। निर्जरा, संवर, जीव और मोक्ष इन तत्वोंको उपादेय समझकर ग्रहण करना चाहिये।

जीवास्तिकाय, जीवतत्व, जीवपदार्थ इन सबका एकार्थ है। इसे आत्मकल्याणके लिए ग्रहण करना चाहिए। बाकी सर्वपदार्थ ज्ञेय हैं। आगमको जाननेका यही फल है। जीवद्रव्यको उपादेय समझकर अन्य द्रव्योंका परित्याग करना ही लोकमें सार है। जिस प्रकार सोनेकी खानिको खोदकर, मट्टीको राशी कर एवं शोधन कर बादमें उसमेंसे सोनेको लिया जाता है, बाकी सर्वपदार्थोंको छोड दिया जाता है, उसी प्रकार सप्ततत्वोंको जानकर उनमेंसे छह तत्वोंको छोडकर जीवतत्वका ग्रहण करना ही बुद्धिमानोंका कर्तव्य है।

आस्रव व बंधसे इस आत्माको संसारकी वृद्धि होती है, आस्रव व बंधको छोडकर संवर व निर्जराके आश्रयमें जानेसे मुक्ति होती है। क्षमा ही क्रोधका शत्रु है, निस्संगभावना ही मोहका वैरी है, परमवैराग्य ही ममकारका शत्रु है, इन तीनोंको संयमी ग्रहण करें तो उसे बंध क्यों कर हो सकता है? पहिले पापकर्मको छोडकर पुण्यमें ठहरना चाहिए अर्थात् अशुभको छोडकर शुभमें ठहरना चाहिये। तदनंतर उसे भी परित्यागकर सुध्यानमें मग्न होना चाहिए। क्यों कि ध्यानसे ही मुक्ति होती है।

हे रविकीर्ति! इस प्रकार षड्द्रव्य, पंचास्तिकाय, सप्ततत्व, नवपदार्थोंका निरूपण किया। अब आत्मसिद्धि किस प्रकार होती है, उसका कथन किया जायगा। इस प्रकार भगवान् आदिप्रभुने अपने मृदु-मधुर-गंभीर दिव्यनिनाद के द्वारा तत्वोंका निरूपण किया एवं आगे आत्मसिद्धिके निरूपणके लिए प्रारंभ किया। उपस्थित भव्यगण बहुत आतुरताके साथ उसे सुन रहे हैं।

भरतनंदन सचमुचमें धन्य हैं, जिन्होंने तीर्थंकर केवलीके पादमूलमें पहुंचकर ऐसे पुण्यमय, लोककल्याणकारी उपदेशको सुननेके भाग्यको पाया है। तत्वश्रवणमें तन्मयता, बीचमें तर्कपूर्ण सरलशंकायें आदि करनेकी कुशलता एवं सबसे अधिक आत्मकल्याण कर लेनेकी उत्कट

संलग्नताको देखनेपर उनके सातिशय महत्वपर आश्चर्य होता है। ऐसे सत्पुत्रोंको पानेवाले भरतेश्वर भी असदृश पुण्यशाली हैं। जिन्होने पूर्व-जन्ममें उच्च भावनावोंके द्वारा पुण्योपार्जन किया है। जिससे उन्हे ऐसे लोकविजयी पुत्ररत्न प्राप्त हुए।

भरतेश्वर सदा इस प्रकार भावना करते थे कि—

हे परमात्मन्! आप विमललोचन हैं, विमलाकार हैं। त्रिमलांग हैं। विमलपुरुष हैं। त्रिमलात्मा हैं। इसलिए लोकविमल हैं। अतः निर्मल मेरे अंतःकरणमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! आप त्रिभुवनसार हैं। दिव्यध्वनिसार हैं और अभिनव तत्वार्थसार हैं। विभवैकसार हैं, विद्यासार हैं, इसलिए हे निरंजनसिद्ध! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये!!

इति तत्वार्थसंधिः।

—×—

अथ मोक्षमार्ग संधिः।

भगवान् आदिप्रभुने उन कुमारोंको पहिले विश्वके समस्ततत्वोंको समझाकर बादमें आत्मसिद्धिका परिज्ञान कराया। क्यों कि आत्मज्ञान ही लोकमें सार है। हे भव्य! परमात्मसिद्धिकी कलाको सुनो! हमने जो अभीतक तत्वोंका विवेचन किया है, उन तत्वोंके प्रति यथार्थश्रद्धान करते हुए जो उनको जानते हैं व यथार्थसंयमको धारण करते हैं, उनको आत्मसिद्धि होती है।

श्रद्धान, ज्ञान व चारित्रको रत्नत्रयके नामसे भी कहते हैं। इन रत्नत्रयोंको धारण करनेसे अवश्य आत्मकल्याण होता है। उन रत्नत्रयों में भेद और अभेद इस प्रकार दो भेद हैं। कारण कार्यमें विभिन्नता होनेसे ये दो भेद हो गये हैं। उन्हींको व्यवहाररत्नत्रय और निश्चय-रत्नत्रयके नामसे भी कहते हैं।

नवपदार्थ, सप्ततत्व, पंचास्तिकाय, षड्द्रव्य, इनको भिन्न भिन्न रूपसे जानकर अच्छी तरह श्रद्धान करना, एवं व्रतोंको विकल्परूपसे आचरण करना इसे भेदरत्नत्रय अथवा व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं।

परपदार्थोंकी चिंताको छोडकर अपने आत्माका ही श्रद्धान एवं उसीके स्वरूपका ज्ञान व मनको उसीमें मग्न करना यह अभेदरत्नत्रय है एवं इसे निश्चयरत्नत्रय भी कहते हैं। आत्मासे भिन्न पदार्थोंके अवलंबनसे जो रत्नत्रय होता है उसे भेद रत्नत्रय कहते हैं, अभेदरूपसे अपने ही श्रद्धान, ज्ञान व ध्यानका अवलंबन वह अभिन्न रत्नत्रय अर्थात् अभेद-रत्नत्रय है।

पहिले व्यवहाररत्नत्रयके अवलंबनकी अवश्यकता है। व्यवहार रत्नत्रयको धारणकर व्यवहारमार्गके आचरणमें निष्णात होनेपर निश्चयार्थको साधन करना चाहिये, जिससे निश्चलसिद्धि होती है।

हे रविकीर्ति! व्यवहारमार्गसे निश्चयमार्गकी सिद्धि करलेनी चाहिये और उस विशुद्ध निश्चयमार्गसे आत्मसिद्धिको साधलेनी चाहिये, यही आत्मकल्याणका राजमार्ग है। यह चित्त हवाके समान अत्यंत चंचल है, दुनियामें सर्वत्र वह विहार करता है। ऐसे चित्तको निरोध कर तत्त्व-विचारमें लगालेना चाहिये, फिर उन तत्वोंसे फिराकर अपने आत्माकी ओर लगाना चाहिये।

मनको यथेच्छसंचार करने दिया जाय तो वह चाहे जिधर चला जाता है। यदि रोकें तो रुक भी जाता है। इसलिए ऐसे चंचल मनको तत्वविचारमें लगाना एवं अपनेमें स्थिर करना यह विवेकियोंका कर्तव्य है।

रविकीर्ति! लोकमें घोरतपश्चर्या करनेसे क्या प्रयोजन? अनेक शास्त्रोंके पठनसे क्या मतलब? इस चपलचित्तको जबतक स्थिर नहीं करते हैं तबतक उस तपश्चर्या व शास्त्रपठनका कोई प्रयोजन नहीं है। जो व्यक्ति उस चंचलचित्तको रोककर अपने आत्मविचारमें लगाता है वही वास्तवमें तपस्वी है, एवं शास्त्रके ज्ञाता है।

मनके विकल्प, इंद्रियोंके विषय कषायोंको उत्पन्न करते हैं एवं स्वयं अलग होते हैं, इससे योगोंके निमित्तसे आत्मप्रदेशका परिस्पंद होता है। एवं आस्रव बंध होते हैं, इसलिए मन ही कर्मोंके लिए घर है।

इस मनको आत्मामें न लगाकर परपदार्थोंमें लगावें तो उससे कर्मबंध होता है, वह जिस प्रकार एक एक पदार्थका विचार करता है उसी प्रकार नवीन नवीन कर्मोंका बंध होता है। उसे रोककर आत्मामें लगाने पर कर्मकी एकदम निर्जरा होती है।

इस दुष्टमनके स्वेच्छविहारसे कर्मबंध होता है। यह आत्मा आठ कर्मोंके जालमें फंसता है। उससे संसारकी वृद्धि होती है। इसलिए उस दुष्ट मनको ही जीतना चाहिए।

चतुरंगके खेलमें राजाको ही बांधने पर जिस प्रकार खेल खतम हो जाता है उसी प्रकार इस संचरणशील मनको ही बांधनेपर आस्रव नहीं, बंध नहीं, फिर अपने आप संवर और निर्जरा होती है।

प्राणावादपूर्व नामके महाशास्त्रको पठनकर कोई दशवायुवोंको वशमें कर लेते हैं, एवं उससे हरिणके समान चंचलवेगसे युक्त चित्तको रोककर आत्मामें लगा देते हैं। और कोई इस प्राणायामके अभ्यासके विना ही इस चंचलमनको स्थिर कर आत्मामें लगाते हैं एवं आत्मानुभव करते हैं। इस प्रकार मनका अनुभव दो प्रकारसे हैं।

प्राणियोंके चित्तका दो विकल्प हैं, एक मृदुचित्त और दूसरा कठिन चित्त। मृदुचित्तके लिए प्राणायामयोगकी आवश्यकता नहीं है। और कठिनचित्तको वायुयोगसे मृदु बनाकर आत्मामें लगाना चाहिए। हे रविकीर्ति! यह ब्रह्मयोग है। एवं ब्रह्मयोगका मूल है। नाभि से लेकर उस वायुको जिह्वाके ऊपर स्थित ब्रह्मरंध्रको चढावे तो उस परब्रह्मका दर्शन होता है। उस प्राणायाममें कला, नाद, बिंदु इत्यादि अनेक विधान हैं। उन को उक्त विषयक शास्त्रोंसे जान लेना! यहांपर हम इतना ही कहते हैं कि अनेक उपायोंसे मनको रोक कर आत्मामें लगानेपर आत्मसिद्धि होती है।

ध्यानके विना कर्मकी निर्जरा नहीं हो सकती है, सहज ही प्रश्न उठता है कि वह ध्यान क्या है ? चित्तके अनेक विकल्पोंको छोडकर इस मनका आत्मामें संधान होना उसे ध्यान कहते हैं।

बोल, चाल, दृष्टि, शरीरकी चेष्टा आदिको रोकते हुए लेपकी पुतली के समान निश्चल बैठकर इस चंचल मनको आत्मविचारमें लगाना उसे सर्वजन ध्यान कहते हैं।

अनेक प्रकारसे तत्वचिंतवन करना वह स्वाध्याय है। एक ही विचार में उस मनको लगाना वह ध्यान है। उस ध्यानमें भी धर्म्य व शुक्लके भेदसे दो विकल्प हैं।

आंखमीचकर मनकी एकाग्रतासे ध्यान किया जाता है जब आत्माकी कांति दिखती है और अदृश्य होती है एवं अल्पसुखका अनुभव कराता है, उसे धर्म्यध्यान कहते हैं।

कभी एकदम देहभरकर प्रकाश दिखता है एवं तदनंतर हृदय व मुखमें दिखता है, इस प्रकार कुछ अधिक प्रकाशको लिए हुए वह परब्रह्मको प्राप्त करनेके लिए बीजरूप वह धर्मयोग है।

जैसे जैसे ध्यानका अभ्यास बढता है वह प्रकाश दिन प्रतिदिन बढता ही रहता है एवं कर्मरज आत्मप्रदेशसे निकल जाते हैं। मनमें सुज्ञानकी मात्रा बढती है। एवं सुखके अनुभव में भी वृद्धि होती है।

उस सुखको वह लोकके सामने बोलकर बतला नहीं सकता है। केवल उसको स्वतः अनुभव कर खूब तृप्त हो जाता है। बोल चालकी इस जगकी सर्वचेष्टायें उसे जड मालुम होती हैं।

उसे सर्वलोक पागलके समान मालुम होता है। वह लोगोंकी दृष्टिमें पागलके समान मालुम देता है। वह आत्मयोगी कभी मौनसे रहता है, फिर कभी बोलकर मूकके समान हो जाता है, उसकी वृत्ति विचित्र है।

एकांतकी अपेक्षा करनेवाली वृत्तियोंकी वह अपेक्षा नहीं करता है, परंतु वह एकांगी रहता है। एक वार लोकके अग्रभागमें पहुंचता है

अर्थात् सिद्धलोक व सिद्धात्माओंका विचार करता है, फिर अपने आत्मलोकमें संचरण करता है।

अपनी आत्माको स्वतः आप देखकर अपने सुखका अनुभव करता है एवं उससे उत्पन्न हर्षसे फूलता है, हसता है, दूसरोंको नहीं कहता है। यह धर्मयोगको साधन करनेवालेके लक्षण हैं।

वह धर्मयोग यदि साध्य हुआ तो भव्योंके हितके लिए कुछ उपदेश देता है, यदि भव्योंने उपदेशको अनंदसे सुना तो उसे कोई आनंद नहीं है, और नहीं सुना तो कोई दुःख भी उसे नहीं है।

स्वतः जो कुछ भी अनुभव करता है कभी उस मिश्रसुखको कृतिके रूपमें लोकके सामने रखता है। एवं प्रत्यक्ष जो कुछ भी देखा उसे कभी उपदेशमें बोल कर बता देता है। इस प्रकार कोई २ आत्मकल्याणके साथ लोकोपकार भी करते हैं, परंतु कोई इस झगडेमें नहीं पडते हैं। उस धर्मयोगके बलसे अपने कर्मके संवर, और निर्जरा करते हुए आगे बढते हैं, हे भव्य! यह धर्म ध्यान है।

दशविध धर्मके भेदोंसे एवं चार प्रकारके (आज्ञाविचय, अपायविचय विपाकविचय, संस्थानविचय) ध्यानके भेदोंसे उस ध्यानका वर्णन किया जाता है, वह सब व्यवहार धर्म है। इस चित्तको आत्मामें लगा देना वह निश्चय–उत्तम–धर्म योग है।

इस चर्मदृष्टिको बंदकर आत्मसूर्यको देखने पर वह सूर्य मेघ मंडलके अंदर उज्वल रूपसे जिस प्रकार दिखता है उस प्रकार दिखता है एवं साथमें सुज्ञान व सुख का विशेष अनुभव कराता है वह शुक्लयोग है।

ज्ञान, प्रकाश, सुख, कुछ अल्पप्रमाणमें दिखते हुए अदृश्य होते हुए जो आत्मानुभव होता है वह धर्मयोग है। और वही सुज्ञान, प्रकाश व सुखकी विशालरूपसे दिखते हुए स्थिरताकी जिसमें प्राप्त होते हैं वह शुक्लयोग है।

इस शरीरमें कोई २ विशेष स्थानको पाकर प्रकाशका परिज्ञान होना वह धर्मयोग है। चांदनीकी पुतलीके समान यह आत्मा सर्वांगमें जब दिखता है वह शुक्लयोग है।

हवामें स्थित दीपकके समान हिलते हुए चंचलरूपसे जिसमें आत्माका दर्शन होता है वह धर्मयोग है। और हवासे रहित निश्चल दीपकके समान निष्कंपरूपसे आत्माका दर्शन होना वह शुक्लयोग है।

एकवार पुरुषाकारके रूपमें, फिर वही अदृश्य होकर, इस प्रकार जो प्रकाश दिखता है वह धर्मयोग है, परंतु वही पुरुषाकार अदृश्य न होकर शरीरमें, सर्वांगमें प्रकाशरूप में ठहर जाय उसे शुक्लयोग कहते हैं।

चंद्रकी कला जिस प्रकार क्रमसे धीरे २ बढती जाती है उसी प्रकार धर्मध्यानमें धीरे २ आत्मानुभव बढता है। प्रातःकालका सूर्य तेजः पुंज होते हुए मध्यान्हमें जिस प्रकार अपने प्रतापको लोकमें व्यक्त करता है, उस प्रकार शुक्लध्यान इस आत्माको प्रभावित करता है।

बरसातका पानी जिस प्रकार इस जमीनको कोरता है उस प्रकार यह धर्मयोग कर्मको जर्जरित करता है। नदीका जल जिस प्रकार इस जमीन को कोरता है उस प्रकार यह शुक्लयोग कर्मसंकुलको निर्जरित करता है।

मड अर्थात् तीक्ष्णधारसे युक्त नहीं है ऐसा फरसा जिस प्रकार लकडीको काटता है उस प्रकार कर्मोंको धर्मयोग काटता है। तीक्ष्ण-धारसे युक्त फरसेके समान शुक्लयोग कर्मोंको काटता है।

विशेष क्या ? एक अल्पकांति है, दूसरी महाकांति है। इतना ही अंतर है। विचार करने पर वह दोनों एक ही है। क्यों कि उन दोनोंको आत्माके सिवाय दूसरा कोई आधार नहीं है।

सिंहके बच्चेको बालसिंह कहते हैं, बडा होनेपर उसे ही सिंहके नामसे कहते, हैं, परंतु बालसिंह ही सिंह बन गया न ? इसी प्रकार ध्यानके बाल्यकालमें वह ध्यान धर्मध्यान कहलाता है और पूर्णताको

प्राप्त होनेपर उसे ही शुक्लध्यान कहते हैं। वह भवगजके समूहको नाश करनेके लिए समर्थ है।

व्यंजनार्थको लेकर जब उस ध्यानका चार भेदसे विभंजन होता है वह व्यवहार है। उन विकल्पोंको हटाकर आत्मामें ही मग्न हो जाना निरंजन, निश्चय शुक्लध्यान है। धर्मध्यान बहुशास्त्री [विशेष विद्वन्] अल्पशास्त्री मुनि, श्रावक सबको होता है। परंतु शुक्लध्यान तो विशिष्ट ज्ञानी या अल्पज्ञानी योगीको ही हो सकता है, गृहस्थोंको नहीं हो सकता है।

आजसे लेकर कलिकालके अंततक भी धर्मयोग तो रहता ही है। परंतु शुक्लध्यान आजसे कई कालतक रहेगा। परंतु कलिकालमें इस (भरत भूमिमें) शुक्लध्यानकी प्राप्ति नहीं हो सकती है।

धर्मध्यानसे विकलनिर्जरा होती है, और शुक्लध्यानसे सकल निर्जरा होती है। विकलनिर्जरासे देवलोककी संपत्ति मिलती है और सकल-निर्जरासे मोक्षसाम्राज्यका वैभव मिलता है।

एक ही जन्ममें धर्मयोगको पाकर पुनश्च शुक्लयोगमें पहुंचकर कोई भव्य मुक्त होते हैं। और कोई धर्मयोगसे आगे न बढकर स्वर्गमें पहुंचते हैं व सुखसे जीवन व्यतीत करते हैं।

धर्मयोगके लिए वह काल, यह काल वगैरेकी आवश्यकता नहीं है। वह कभी भी अनुभव किया जा सकता है, जो निर्मल चित्तसे उस धर्मयोगका अनुभव करते हैं वे लोकांतिक, सौधर्मेंद्र आदि पदवीको पाकर दूसरे भवसे निश्चयसे मुक्तिको प्राप्त करते हैं।

व्यवहारधर्मका जो अनुभव करते हैं उनको स्वर्गसंपत्ति तो नियमसे मिलेगी! इसमें कोई शक नहीं है। भवनाश अर्थात् मोक्षप्राप्तिका कोई नियम नहीं है। आत्मानुभव ही उसके लिए नियम है। आत्मानुभव होनेके बाद नियमसे मोक्षकी प्राप्ति होगी।

आज निश्चयधर्मयोगकी प्राप्ति नहीं हुई तो क्या हुआ। अपने चित्तमें उसकी श्रद्धाके साथ दुश्चरितका त्याग करते हुए शुभाचरण करें तो कल निश्चयधर्मयोगको अवश्य प्राप्त करेगा।

संसारमें अविवेकी मूढात्माको वह निश्चयधर्मयोग प्राप्त नहीं हो सकता है, जो कि स्वतः उस निश्चयधर्मयोगसे शून्य रहता है। एवं निश्चयधर्मको धारण करनेवाले सज्जनोंको वह वृश्चिकके समान रहता है एवं उनकी निंदा करता है। ऐसे दुश्चितको वह धर्मयोग क्योंकर प्राप्त हो सकता है ?

भव्योंमें दो भेद है। एक सारभव्य दूसरा दूरभव्य। सारभव्य [आसन्नभव्य] उस आत्माको ध्यानमें देखते है। परंतु दूरभव्योंको उस आत्माका दर्शन नहीं होता है। तथापि वे सारभव्योंकी वृत्तिके प्रति अनुराग को व्यक्त करते हैं। इसलिए वे कल आत्मसिद्धिको प्राप्त करते हैं।

सारभव्य आत्माका दर्शन करते हैं, तब दूरभव्य प्रसन्न होते हैं। उस समय अभव्य उनकी निंदा करते हैं, उनसे द्वेष करते हैं। फलतः वे नरकगतिमें पहुंच जाते हैं। कभी व्यवहारका विषय उनके सामने आवे तो बडा उत्साह दिखाते हैं। परंतु सुविशुद्ध निश्चयनयका विषय उनके सामने आवे तो चुपचापके निकल जाते हैं, उसका तिरस्कार करते हैं।

स्वतः उन अभव्योंको आत्मयोग प्राप्त नहीं हो सकता है। जो स्वात्मानुभव करते हैं उनको देखनेपर उनके हृदयमें क्रोधोद्रेक होता है। उन भव्योंकी निंदा करते हैं, यदि उनकी निंदा न करें तो उनको ध्रुव व अविनाशी संसार कैसे प्राप्त हो सकता है ? वे अभव्य द्वादशांग शास्त्रोंमें एकादशांगतक पठन करते हैं। परिग्रहोंको छोडकर निर्ग्रंथ तपस्वी भी होते हैं। परंतु बाह्याचरणमें ही रहते हैं।

शरीरको नग्न करना यह देहनिर्वाण है। शरीरके अंदर स्थित आत्माको शरीररूपी थैलेसे अलग कर देखना आत्मनिर्वाण है। केवल

बाह्य नग्नतासे क्या प्रयोजन ? देहनग्नताके साथ आत्मनग्नताकी परम आवश्यकता है ।

मूर्तिनिर्वाण अर्थात् देहनिर्वाणके साथ हंसनिर्वाण अर्थात् आत्म निर्वाणको ग्रहण करें तो मुक्तिकी प्राप्ति होती है । वे घूर्त अभव्य मूर्ति-निर्वाणको स्वीकार करते हैं, हंसनिर्वाणको मानते नहीं है ।

अंदरके कषायोंका त्याग न कर बाहर सब कुछ छोडें तो क्या प्रयोजन है ? सर्प अपनी काचळीका परित्याग करें तो क्या वह विषरहित होजाता हैं ? आत्मसिद्धिके लिए अंदर तिळमात्र भी रागद्वेष मोहका अंश नहीं होना चाहिये एवं स्वयं आत्मा आत्मामें लीन होजावे ।

इस प्रकारके उपदेशको अभव्य नहीं मानते हैं । वे ध्यानकी अनेक प्रकारसे निंदा करते हैं । उसकी खिल्ली उडाते हैं । जो ध्यान करते हैं, उनकी हसी करते हैं, " ये ध्यान क्या करते हैं, कैसे करते हैं, आत्मा आत्मा कहां है ? " इत्यादि प्रकारसे विवाद करते हैं ।

वे अभव्य ' ध्यानसिद्धि स्वतःको नहीं है, ' इस मात्सर्यसे " इसे आत्मध्यान नहीं हो सकता है, उसे आत्मध्यान नहीं होता है, यह काल उचित नहीं है, वह काल चाहिए, उसके लिए अमुक सामग्री चाहिए, तमुक चाहिये, आपका ध्यान, हमारा ध्यान अलग है " इत्यादि अनेक प्रकारसे बहानेबाजी करते हैं ।

वे अभव्य शरीरको कष्ट देते हैं, पढाते हैं, पढते हैं । अनेक कष्ट सहन करते हैं । इन सब बातोंके फलसे संसारमें कुछ सुखका अनुभव करते हैं । परंतु मुक्तिसुखको वे कभी प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।

बीचमें ही रविकीर्तिराजने प्रश्न किया कि भगवन् ! एक प्रार्थना है । "आत्माको आत्माका दर्शन नहीं हुआ तो मुक्ति नहीं होती है, ऐसा आपने कहा । यह समझमें नहीं आया । सदा काल आपकी भक्तिमें जो अपना समय व्यतीत करते हैं उनको आत्मसिद्धि होने में आपत्ति क्या है ?

भव्य ! सुनो ! भगवंतने फिरसे निरूपण किया । हमारे प्रति जो भक्ति है वह मुक्तिका कारण जरूर है। परंतु उस भक्तिके लिए युक्तिकी आवश्यकता है। हमारे निरूपणको सुनकर उसके अनुसार चलना, वही हमारी भक्ति है । अपनी इच्छानुसार भक्ति करना वह मूर्खभक्ति है ।

' स्वामिन् ! वह स्वेच्छाचारपूर्ण भक्ति कैसी है ? अपनी आत्माके विचारसे युक्त भक्ति स्वेच्छापूर्ण कही जा सकती है। परंतु मुक्तिको जिनेंद्र ही शरण है इस प्रकार आपकी भक्ति करें तो स्वेच्छापूर्ण भक्ति कैसे हो सकती है ? " इस प्रकार पुनश्च रविकीर्तिने विनयसे पूछा ।

" हे रविकीर्ति ! ' तुम्हारा आत्मयोग ही हमारी भक्ति है ' यह तुम जानते हुए भी प्रश्न कर रहे हो, सब विषय स्पष्ट रूपसे कहता हूं। सुनो ! युक्तिको जानकर जो जो भक्ति करते हैं वे मुक्तिको नियमसे प्राप्त करते हैं। युक्तिरहित भक्ति भवकी वृद्धि करती है। इसलिए भक्तिके रहस्यको जानकर भक्ति करनी चाहिए " इस प्रकार आदि प्रभुने निरूपण किया ।

पुनश्च रविकीर्तिराजने हाथ जोडकर विनयसे प्रार्थना की कि प्रभो ! हम मंदमति अज्ञानी क्या जाने कि वह युक्तिसहित भक्ति क्या है ? और युक्तिरहित भक्ति क्या है ? हे सर्वज्ञ ! उसके स्वरूपका निरूपण कीजियेगा।

" तब हे भव्य ! सुनो ! " इस प्रकार भगवंतने अपने गंभीर दिव्यनिनादसे निरूपण किया ।

हे भव्य ! वह भक्ति भेद और अभेदके भेदसे दो भेदोंमें विभक्त है। उनके रहस्यको जानकर भक्ति करें तो मुक्ति होती है ।

यहां समवसरणमें हम रहते हैं, सिद्ध परमेष्ठी लोकाग्रभागमें रहते हैं, इत्यादि प्रकारसे अपनी आत्मासे हमें व सिद्ध परमेष्ठियोंको अलग रखकर विचार करना, पूजा करना, यह भेदभक्ति है ।

हमें व सिद्ध परमेष्ठियोंको इधर उधर न रखकर अपनी आत्मामें ही रखकर भावपूजा करना वह परब्रम्हाकी अभेदभक्ति है। हमें अलग रखकर देखना वह भेदभक्ति है। भक्तिके साथ अपनी आत्मामें ही

अभिन्नरूपसे हमें देखना वह कर्मोंको ध्वंस करनेमें समर्थ अभेदभक्ति है। लेप, कांसा, पीतल आदिके द्वारा हमारी मूर्ति बनाकर उपासना करना वह भेदभक्ति है। आत्मामें विराजमानकर हमें देखना वह हमारे पसंदकी अभेदभक्ति है।

सिद्ध व अरिहंतके समान ही मेरी आत्मा भी परिशुद्ध है, इस प्रकार अपनी आत्माको देखना वही सिद्धभक्ति है। वही हमारी भक्ति है। तभी सिद्ध व हम वहां निवास करते हैं।

भेदभक्तिको अनेक सज्जन करते हैं। परंतु अभेदभक्तिको नहीं कर सकते हैं। भेदभक्तिको पहिले अभ्यास कर बादमें अभेदभक्तिका अवलंबन करना चाहिए।

भेदभक्तिको सभी अभव्य भी कर सकते हैं, परन्तु अभेदभक्ति तो उनके लिए असाध्य है। मोक्षसाम्राज्यको मिलादेनेवाली वह भक्ति अभागियोंको क्यों कर प्राप्त हो सकती है ?

स्वयं भक्ति न कर सके तो क्या हुआ ? जो भक्ति करते हैं उनके प्रति मनसे प्रसन्न होवे एवं अनुमोदना देवें तो फल वह भक्ति प्राप्त हो सकती है। परंतु उनको भक्ति सिद्ध होती नहीं। और दूसरोंकी भक्तिको देखकर प्रसन्न भी नहीं होते हैं। इसलिए वे मुक्तिसे दूर रहते हैं।

भिन्नतासे युक्त भक्ति ही भेदभक्ति है, वह आत्माको उस भक्तिसे भिन्न करता है। और भेदरहित भक्ति है, वह अभेदभक्ति है, वह आत्मासे अभिन्न ही है।

इसके लिए एक दृष्टांत कहेंगे सुनो ! गुरुके घरमें जाकर उनकी पूजा करना यह गुरुभक्ति है। परंतु गुरुको अपने घरमें बुलाकर पूजा करना वह विशिष्ट गुरुभक्ति है।

भक्तिमें श्रेष्ठ अभेदभक्ति है। सर्व संपत्तियोमें श्रेष्ठ मुक्तिसंपत्ति है। मुक्तिके योग्य भक्ति करना आवश्यक है, यही युक्तिसहित भक्ति है, इसे अच्छी तरह जानना। भिन्नभक्ति अर्थात् भेदभक्तिका फल स्वर्ग संपदाकी

प्राप्ति होना है, परंतु अभेदभक्तिका फल तो मुक्तिसाम्राज्यको प्राप्त करना है। कभी भिन्न भक्तिसे स्वर्गमें भी पहुंचे तो पुनः स्वर्ग सुखको अनुभव कर वह दूसरे जन्मसे मुक्तिको जायगा। यह मेरी आज्ञा है, इसे श्रद्धान करो। भेदरत्नत्रय, व्यवहार रत्नत्रय, शुभयोग, भेदभक्ति इन सबका अर्थ एक ही है। अभेद रत्नत्रय, निश्चय, शुद्धोपयोग, अभेदभक्ति इन सबका एक अर्थ है।

ध्यानके अभ्यास कालमें चित्तके चांचल्यको दूर करने के लिए शुभ योगका आचरण करना आवश्यक है, बादमें जब चित्तक्षोभ दूर होनेके बाद आत्मामें स्थिर होजाना उसे शुद्धोपयोग कहते हैं।

चैतन्यरहित शिला आदिमें मेरा उद्योत करें तो सामान्य भक्ति है, चैतन्यसहित आत्मामें रखकर मेरी जो प्रतिष्ठा की जाती है वह विशेषभक्ति है।

रविकीर्तिकुमारने बीचमें ही एक प्रश्न किया। भगवन्! पाषाण अचेतन स्वरूप है। यह सत्य है। तथापि उसमें मलादिक दूषण नहीं हैं। परंतु जो अनेक मलदूषणोंसे युक्त है, ऐसे देहमें आपको स्थापन करना वह भूषण कैसे हो सकता है?।

उत्तरमें भगवंतने फरमाया कि भव्य! यह देह अपवित्र जरूर है। परंतु उस देहमें हमारी कल्पना करनेकी जरूरत नहीं है। देहमें जो शुद्ध आत्मा है उसमें हमारे रूपकी कल्पना करो। समझे?

पुनश्च रविकीर्तिने कहा कि स्वामिन्! यह समझ गया। अंदर वह आत्मा परिशुद्ध है, यह सत्य है। तथापि मांसास्थि, चर्मरक्त व मलसे पूर्ण अपवित्र देहके संसर्गदोषके विना आपकी स्थापना उसमें हम कैसे कर सकते हैं? कृपया समझाकर कहिये।

प्रभुने कहा कि भव्य! इतना जल्दी भूल गये? इससे पहिले ही कहा था कि गायके स्तनभागमें स्थित दूधके समान शरीरमें स्थित आत्मा परिशुद्ध है। शरीरके अंदर रहनेपर भी वह आत्मा शरीरको

स्पर्श न करके रहता है। इसलिए वह पवित्र है। उसी स्थानमें हमारी स्थापना करो। गौके गर्भमें स्थित गोरोचन लोकमें पावन है न ? जीव शरीरमें रहा तो क्या हुआ ? वह निर्मलस्वरूपी है, उसे प्रतिनित्य देखनेका यत्न करो।

मृगकी नाभिमे रहने मात्रसे क्या ? कस्तूरी तो लोकमें महासेव्य पदार्थ माना जाता है। इसी प्रकार इस चर्मास्थिमय शरीरमें रहनेपर भी आत्मा स्वयं पवित्र है। सीपमें रहनेपर भी मोती जिस प्रकार पवित्र है, उसी प्रकार रक्त मांसके शरीरमें रहनेपर भी विरक्त जीवात्मा पवित्र है। इसे श्रद्धान करो। इसलिए जिस प्रकार दूध, मोती, कस्तूरी आदि पवित्र हैं, उसी प्रकार यह मन ही जिसका शरीर है वह आत्मा भी पवित्र है। इस विषयमें विचार करनेकी क्या आवश्यकता है ?

अज्ञानीकी दृष्टिमें यह आत्मा अपवित्र है। सत्य है ! परंतु आत्मज्ञानी सुज्ञानीकी दृष्टिमें वह पवित्र है। अज्ञान भावनासे अज्ञान होता है, सुज्ञानसे सुज्ञान होता है।

जबतक इस आत्माको बद्धके रूपमें देखता है तबतक वह आत्मा भवबद्ध ही है। जबसे इसे शुद्धके रूपमें देखने लगता है, तबसे वह मोक्षमार्गका पथिक है।

' शरीर ही मैं हूं ' ऐसा अथवा शरीरको ही आत्मा समझनेवाला बहिरात्मा है। आत्मा और शरीरको भिन्न समझनेवाला अंतरात्मा है। शरीररहित आत्मा परमात्मा है। आत्माका दर्शन जिस समय होता है, उस समय सभी परमात्मा हैं।

बहिरात्मा बद्ध है, परमात्मा शुद्ध है, अंतरात्मा अपने हितमें लगा हुआ है। वह बाह्यचिंतामें जब रहता है तब बद्ध है। अपने आत्मचिंतवनमें जब मग्न होता है तब शुद्ध है।

अपने आत्माको अल्प समझनेवाला स्वयं अल्प है। अपने आत्माको श्रेष्ठ समझकर आदर करनेवाला अल्प नहीं है, वह मेरे समान लोकपूजित है। इसे मेरी आज्ञा समझकर श्रद्धान करो।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र, और तपके भेदसे चार विकल्प आचारका व्यवहारसे होनेपर भी निश्चयसे परमात्मयोगमें ही वे सब अंतर्भूत होते हैं। यह निश्चय मोक्षमार्ग है। मूल गुण, उत्तरगुण आदिका विकल्प सभी व्यवहार हैं। मूलगुण तो अनंतज्ञानादिक आठ हैं और मेरे स्वरूपमें हैं। इस प्रकार समझकर आत्मामें आराम करना यह निश्चय है। हे भव्य! जो व्यक्ति सर्व विकल्पोंको छोडकर ध्यानमें मग्न होते हुए मुझे देखता है वही देववंदना है, अनेक व्रतभावना है।

वायुवेगसे जानेवाले इस चित्तको आत्ममार्गमें स्थिर करना यही घोर तपश्चर्या है। उग्र तपश्चर्या है। श्रेष्ठ तपश्चर्या है। इसे विश्वास करो।

अध्यात्मको जानकर चित्तसाध्यको करते हुए जो अपने आत्मामें ठहर जाना है, वही स्वाध्याय है, वही पंचाचार है। वही महाध्यान है। जप है, तप है।

पारेके समान इधर उधर जानेवाले चित्तको लाकर आत्मामें संधान करना वही द्वादशांग शास्त्राध्ययन है। वही चतुर्दशपूर्वाभ्यास है।

साम्यभावनासे चित्तको रोककर आत्मगम्य करना वही सम्यक्त्व है, सम्यग्ज्ञान है, सम्यक्चारित्र है और साम्यतप है।

भिन्न भिन्न स्थानमें पलायन करनेवाले चित्तको आत्मामें अभिन्न रूपसे लगा देना वही मेरी मुद्रा है, वही तीर्थवंदना है, और वही मेरी उपासना है, इसे श्रद्धान करो।

दुर्जयचित्तको जीतकर, सर्व विकल्पोंको वर्जित करते हुए जो स्वयंको देखना है वही निर्जरा है, संवर है, वही परमात्माकी ऊर्जित मुक्ति है।

दाक्षिण्य (लिहाज) छोडकर चित्तको दबाते हुए आत्मसाक्षीसे अंदर देखना वह मोक्षपद्धति है, वही मोक्षसंपत्ति है। विशेष क्या? वही मोक्ष है, इसे विश्वास करो, विश्वास करो।

हे रविकीर्ति! यह आत्मचिंतवन परमरहस्यपूर्ण है, एवं मुझे प्राप्त करनेके लिए सन्निकट मार्ग है। जो इस दुष्टमनको जीतते हैं उन शिष्योंको इसका अनुभव हो सकता है।

'प्रभो! एक शंका है,' बीचमें ही रविकीर्तिकुमारने कहा।

जब इस परमात्माको इतनी अलौकिक सामर्थ्य है फिर वह इस संकुचित शरीरमें फंसकर क्यों रहता है? जन्म और मरणके संकटोंको क्यों अनुभव करता है? श्रेष्ठ मुक्तिमें क्यों नहीं रहता है?।

भगवंतने उत्तर दिया कि भव्य! वह अतुलसामर्थ्यसे युक्त है, यह सत्य है, तथापि अपनी सामर्थ्यको न जानकर बिगड गया। रागद्वेषको छोडकर अपने आपको देखें तो यह बहुत सुखका अनुभव करता है।

वृक्षको जलानेकी सामर्थ्य अग्निमें है, परंतु वह आग वृक्षमें ही छिपी रहती है। जब दो वृक्षोंका परस्पर संघर्षण होता है तब वही अग्नि उसी वृक्षको जला देती है। ठीक इसी प्रकार कर्मको जलानेकी सामर्थ्य आत्मामें है, परंतु वह कर्मके अंदर ही छिपा हुआ है। कर्मको जान कर स्वतः अपनेको देखें तो उसी कर्मको वह जला देता है।

आत्मामें अनंतशक्ति है, परंतु वह शक्तिरूपमें ही विद्यमान है। उसे व्यक्तिके रूपमें लानेकी आवश्यकता है। शक्तिको व्यक्तिके रूपमें लानेके लिए विरक्तिसे युक्त ध्यान ही समर्थ है।

अंकुर तो बीजके अंदर मौजूद है। भूमिका स्पर्श न होनेपर वह वृक्ष कैसे बन सकता है?। पंकयुक्त भूमि (कीचडसे युक्त जमीन) के संसर्गसे वही बीज अंकुरित होकर वृक्ष बनजाता है।

ज्ञानसामर्थ्य इस शरीरमें स्थित आत्मामें विद्यमान है, तथापि ध्यानके बिना वह प्रकट नहीं हो सकती है। उसे आनंद रसके सुध्यानमें रखनेपर तीन लोकमें ही वह व्याप्त हो जाता है।

घनमूलिकासारको (नवसादर) सुवर्ण शोधक सांचेमें (मूसमें) डालकर अग्निसे उस अशुद्ध सुवर्णको तपानेपर किट्टकालिमादि दोषसे रहित शुद्ध सुवर्ण बन जाता है, उसी प्रकार आत्मशोधन करना चाहिये।

शरीर सुवर्णशोधक सांचा (मूस) है। रत्नत्रय यहांपर नवसादर (सुहागा) है, और सुध्यान ही अग्नि है। इन सबके मिलनेपर कर्मका विध्वंस होता है, और वह आत्मा शुद्धसुवर्णके समान उज्वल होता है।

हलके सोनेको शुद्ध जहां किया जाता है वहां वह नवसादर, मूस अग्नि, किट्ट, कालिमा, आदि सब अलग अलग ही हैं। और वह सिद्ध [शुद्ध] करनेवाला अलग ही है। परंतु यह आत्मशोधनकार्य उससे विचित्र है, यह उस सुवर्णपुटके समान नहीं है।

" सिद्धोऽहम् ! सोऽहम् " इत्यादि रूपसे जो उस आत्मशोधनमें तत्पर हैं उनको समझानेके लिए निरूपण करते हैं। अच्छी तरह सुनो ! और समझो।

आत्मपुटकार्यमें वह मूस, किट्ट, कालिमा, यह आत्मासे भिन्न हैं। बाकी सुवर्ण, औषधि, और शोधकसिद्ध सभी आत्मा स्वयं है। इस विषय पर विशेष विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है, भव्य ! यह वस्तुस्वभाव है। समस्त तत्वोंमें यह आत्मतत्व प्रधानतत्व है, उसका दर्शन होनेपर अन्यविकल्प हृदयमें उत्पन्न नहीं होते हैं।

निक्षेप, नय, प्रमाण यह सब आत्मपरीक्षणके कालमें रहते हैं, सर्व पक्षको छोडकर आत्मनिरीक्षणपर जब यह मग्न हो जाता है तब उनकी आवश्यकता नहीं है।

मदगज यदि खो जाय तो उसके पादके चिन्होंको देखते हुए उसे ढूंढते हैं। परंतु सामने ही वह मदगज दिखे तो फिर उन चिन्होंकी आवश्यकता नहीं रहती है। अनेक शास्त्रोंका अध्ययन, मनन आदि आत्मान्वेषणके लिए मार्ग हैं, ध्यानके बलसे आत्माको देखनेके बाद अनेक विकल्प व भ्रांतिकी क्या आवश्यकता है ?

आत्मसंपर्कमें जो रहते हैं उनको तर्कपुराणादिक आगम रुचते नहीं हैं। अर्कके समीप जो रहते हैं वे दीपकको क्यों पसंद करते हैं ? क्या राजशर्करासे भी खलकी कभी कीमत अधिक हो सकती है ?

हे भव्य ! यह मेरी पसंदकी चीज है। सिद्ध भी इसे पसंद करते हैं, मैं हूं सो यह है, यह है सो मैं हूं। इसलिए तुम इसे विश्वास करो। पसंद करो। निरीक्षण करो। यही मेरी आज्ञा है।

पहिले जितने भी सिद्ध मुक्त हुए हैं वे सब इसी आचरणसे मुक्त हुए हैं। और इमें व आगे होनेवाले सिद्धोंको भी यही मुक्तिका राजमार्ग है। यही पद्धति है। इस आज्ञाको तुम दृढताके साथ पालन करो।

हे भव्य ! आत्मसिद्धिके लिए और एक कलाके ज्ञानकी आवश्यकता है। उसे भी जानलेना चाहिये। इस लोकमें कार्माणवर्गणायें [कर्मरूप बनने योग्य पुद्गल परमाणु] सर्वत्र भरी हुई हैं। उन पुद्गलपरमाणुरूपी समुद्रके बीचमें मछलियोंके समान यह असंख्यात जीव डुबकी लगा रहे हैं।

राग द्वेष, मोह आदियोंके द्वारा उन परमाणुवोंका आत्माके साथ संबंध होता है। परस्पर संबंध होकर वे ही कार्माणरज आठ कर्मोंके रूपको धारण करते हैं। उन कर्मोंके बंधनको तोडना सरल बात नहीं है।

उस बंधनको ढीला करनेके लिए यह आत्मा स्वयं ही समर्थ है। एक की गांठ दूसरा खोलकर छुडाना चाहें तो वह असंभव है। स्वयं स्वयंके आत्मापर मग्न होकर यदि उस गांठको खोलना चाहे तो आत्मा खोल सकता है। मैं तुम्हारी गांठको खोलता हूं यह जो कहा जाता है यही तो मोह है, उससे तो बंधन ढीला न होकर पुनः मजबूत हो जाता है। इसलिये किसीके बंधनको खोलनेके लिये, कोई जावें तो वह मोहके कारणसे उलटा बंधनसे बद्ध होता है। एक गांठको खोलनेके लिए जाकर वह तीन गांठसे बद्ध होता है। इसलिए विवेकियोंको उचित है कि वे कभी ऐसा प्रयत्न न करें। इसलिए आत्मकल्याणेच्छु भव्यको उचित है कि वह अनेक विषयोंको जानकर आत्मयोगमें स्थिर हो जावे, तभी उसे सुख मिल सकता है। अणुमात्र भी भाव कर्मोंको अपनाना उचित नहीं है, ध्यानमें मग्न होना ही आत्माका धर्म है। तुम भी ध्यानी बनो।

हे रविकीर्ति ! तुम्हे, तुम्हारे सहोदरोंको, एवं तुम्हारे पिताको अब संसार दूर नहीं है। इसी भवमें मुक्तिकी प्राप्ति होगी। इस प्रकार आदि प्रभुने अपने अमृतवाणीसे फरमाया।

इस बातको सुनते ही रविकीर्तिके मुखमें हंसीकी रेखा उत्पन्न हुई, आनंदसे वह फूला न समाया। स्वामिन्! मेरे हृदयकी शंका दूर हुई, भक्तिका भेद अब ठीक समझमें आगया। आपके चरणोंके दर्शनसे मेरा जीवन सफल हुआ, इस प्रकार कहते हुए बडी भक्तिसे भगवंतके चरणोंमें साष्टांग नमस्कार किया व पुनः हर्षातिरेकसे कहने लगा कि भगवन्! मैं जीत गया, मैं जीतगया!!

चिद्रूपको जिन समझकर उपासना करना यह उत्तम भक्ति है। उस चिद्रूपको न देखकर इस क्षुद्रशरीरको ही जिन समझना यह कौनसी भक्ति है।

कदाचित् शिलामयमूर्तिको किसी अपेक्षासे जिन कह सकते हैं। शुद्धात्मकलाको तो जिन कहना ही चाहिये, मलपूर्ण शरीरको वस्त्रा-भूषणोंसे अलंकृत कर उसे जिन कहना व पूजना वह तो मूर्खभक्ति है।

हंसमुद्राको पसंद करनेसे यह देहमुद्रा आत्मसिद्धिमें सहकारी होती है। हंसमुद्राको छोडकर देहमुद्राको ही ग्रहण करें तो उसका उपयोग क्या होसकता है? प्रभो! युक्तिरहित भक्तिकी हमें आवश्यकता नहीं है! हमें तो युक्तियुक्त भक्तिकी आवश्यकता है। वह युक्तियुक्तभक्ति अर्थात् मुक्तिपथ आपके द्वारा व्यक्त हुआ। इसलिए आपकी भक्ति तो अलौकिक फलको प्रदान करनेवाली है। हम धन्य हैं!!

स्वामिन्! आपने पिताजीको [चक्रवर्ति] एक दफे इसी प्रकार तत्वोपदेश दिया था। उस समय उनके साथ मैं भी आया था। वह उपदेश अभीतक मेरे हृदयमें अंकित है। आज वह द्विगुणित हुआ। आज हम सब बुद्धिविक्रम बन गये। प्रभो! कर्मकर्दममें जो फंसे हुए हैं, उनको ऊपर उठाकर धर्मजलसे धोनेमें एवं उन्हें निर्मल करनेमें समर्थ आपके सिवाय दयानिधि दूसरे कौन हैं।

विषय [पंचेंद्रिय] के मदरूपी विषका वेग जिनको चढ जाता हैं, उनको तुषमषमात्र—बोधमंत्रसे जागृत कर विषको दूर करनेवाले एवं शांत करनेवाले आप परमनिर्विषरूप हैं।

आठकर्मरूपी आठ सर्पोंके गलेमें फसे हुए जीवोंको बचाकर उनको मुक्तिपथमें पहुंचानेवाले लोकबंधु आपके सिवाय दूसरे कौन हो सकते हैं।

भवरूपी समुद्रमें यमरूपी मगरके मुखमें जो हम फंसे हुए थे उनको उठाकर मोक्षपथमें लगानेमें दक्ष आप ही हैं। और कोई नहीं है।

स्वामिन्! हम बच गये। आपके पादकमलोंके दर्शनसे आत्मसिद्धिका मार्ग भी सरल हुआ है। इससे अधिकलाभकी हमें आवश्यकता नहीं है। अब हमारे मार्गको हम ही सोच लेते हैं।

तदनंतर रविकीर्तिने अपने भाईयोंसे कहा कि शत्रुंजय! महाजय! अरिंजय! आप सबने भगवंतके दिव्यवाक्यको सुन लिया? रतिवीर्य आदि सभी भाईयोंने सुना? तब उन भाईयोंने विनयसे कहा कि भाई! सुननेमें समर्थ आप हैं, आत्मसिद्धिको कहनेमें समर्थ महाप्रभु हैं। हम लोग सुनना क्या जाने, आप जो कहेंगे उसे हम सुनना जानते हैं। उससे अधिक हम कुछ भी नहीं जानते हैं। भाई! क्या ही अच्छा निरूपण हुआ। भगवंतका यह दिव्य तत्वोपदेश क्या, कर्मरूप भूमिके अंदर छिपी हुई परमात्मनिधिको दिखानेवाला यह दिव्यांजन है। वह परमात्माका दिव्यवाक्य क्या? देहकूपपापांधकारमें मग्न परमात्माके स्वरूपको दिखानेवाला रत्नदीप है। कलिलहर भगवंतका तत्वोपदेश क्या? भवरूपी संतापसे संतप्त प्राणियोंको गुलाबजलकी नदीके समान है। हमारे शरीरमें ही हमें परमात्माका दर्शन हुआ। अगाधभवसमुद्र हमें चुल्लूभर पानीके समान मालुम हो रहा है। भगवन्! हम अब इस फंदेमें पडे नहीं रह सकते हैं।

बडे भाई जिस प्रकार चलता है उसी प्रकार घरभरकी चाल होती है। इसलिए भाई! आप जो कहेंगे वही हमारा निश्चय है। हमारा उद्धार करो।

रविकीर्तिराजने कहा कि ठीक है। अब अपन सब कैलासनाथ प्रभुके हाथसे दीक्षा लेवें। यही आगेका मार्ग है। तब सबने एकस्वरसे सम्मति दी।

भगवंतकी पूजा कर नंतर दीक्षा लेंगे,इस विचारसे वे सबसे पहिले भगवंतकी पूजामें लवलीन हुए। इस प्रकार व्यवहार व निश्चयमार्गको जानकर वे भरतकुमार आगेकी तैयारी करने लगे।

वे सुकुमार धन्य हैं जिनके हृदयमें ऐसे बाल्यकालमें भी विरक्तिका उदय हुआ। ऐसे सुपुत्रोंको पानेवाले भरतेश्वर भी धन्य हैं जिनकी सदा इस प्रकार की भावना रहती है कि:—

" हे परमात्मन्! आप सकलविकल्पवर्जित हो! विश्वतत्व दीपक हो, दिव्यसुज्ञानस्वरूपी हो, अकलंक हो, त्रिभुवनके लिए दर्पणके समान हो, इसलिए मेरे हृदयमें सदा निवास करो।

हे सिद्धात्मन्! आप मोक्ष मार्ग हैं, मोक्षकारण हैं, साक्षात् मोक्षरूप हैं, मोक्षसुख हैं, मोक्षसंपत्स्वरूप हैं। हे निरंजनसिद्ध! मुझे सन्मतिप्रदान कीजिये "

इसी भावनाका फल है कि उन्हे ऐसे लोकविजयी पुत्र प्राप्त होते हैं।

इति मोक्षमार्ग संधिः।

—×—

अथ दीक्षासंधिः।

भगवन्! भरतचक्रवर्तिके पुत्रोंके भव्यविनयका क्या वर्णन करूं? भगवंतके मुखसे प्रत्यक्ष उपदेशको सुननेपर भी दीक्षाकी याचना नहीं की। अपितु भगवंतकी पूजाके लिए वे तैयार हुए।

यद्यपि वे विवेकी इस बातको अच्छी तरह जानते थे कि भगवान् आदिप्रभु पूजाके भूखे नहीं हैं। तथापि मंगलार्थ उन्होंने पूजा की। अच्छे कार्यके प्रारंभमें पहिले मंगलाचरण करना आवश्यक है। इस व्यवहारको एकदम नहीं छोडना चाहिए। इसी विचारसे उन्होंने ज की।

कुछ मिनटोंमें ही वे स्नानकर पूजाके योग्य श्रृंगारसे युक्त भये एवं पूजासामग्री लेकर देवेंद्रकी अनुमतिसे पूजा करने लगे। कोई उनमें स्वयं

पूजा कर रहे हैं तो कोई पूजामें परिचारकवृत्तिका कार्य कर रहे हैं। अर्थात् सामग्री वगैरे तैयार कर दे रहे हैं। कोई उसीमें अनुमोदना देकर आनंदित हो रहे हैं। उनकी भक्तिका क्या वर्णन करें?

ओंकारपूर्वक मंत्रोच्चारण करते हुए ह्रींकार, अर्हंकारके साथ हूंकार की सूचनासे जलपात्रके जलको झेंकारके शद्बसे अर्पण करने लगे। दोनों हाथोंसे सुवर्णकलशको उठाकर मंत्रसाक्षीसे भगवंतके चरणोंमें जलधारा दे रहे हैं। उस समय वहां उपस्थित देवगण जयजयकार शद्ब कर रहे थे। सुरभेरी, शंख, वाद्य आदि लेकर साडेबारह करोड तरहके बाजे उस समय बजने लगे थे। विविध प्रकारसे उनके जब शद्ब हो रहे थे, मालूम हो रहा था कि समुद्रका ही घोष हो। गंधगजारि अर्थात् सिंहके ऊपर जो कमलासन था उसके सुगंधसे संयुक्त भगवंतके चरणोंमें उन भरतकुमारोंनें दिव्यगंधका समर्पण किया जिस समय गंधर्व जातिके देव जयजयकार शद्ब कर रहे थे।

अक्षयमहिमासे युक्त, विमलाक्ष, विजिताक्ष श्री भगवंतके चरणोंमें जब उन्होंनें भक्तिसे अक्षताका समर्पण किया तब सिद्धयक्षजातिके देव जयजयकार शद्ब कर रहे थे। पुष्पबाण कामदेवके समान सुंदर रूपको धारण करनेवाले वे कुमार कोटिसूर्यचंद्रोंके प्रकाशको धारण करनेवाले भगवंतको पुष्पका जब समर्पण कर रहे थे तब उनका वपुःपुलकित [शरीररोमांच] हो रहा था अर्थात् अत्यधिक आनंदित होते थे। परसंगसे विरहित होकर आत्मानंदमें लीन होनेवाले भगवंतको वे अनुरागसे परमान्न नैवेद्यको नवीन सुवर्णपात्रसे समर्पण कर रहे हैं। सूर्यको दीपक दिखानेके समान तीनलोकके सूर्यकी कर्पूरदीपकसे आरति वे कुमार कर रहे हैं, उस समय आर्यजन जयजयकार कर रहे हैं। भगवंतको वे धूपका अर्पण कर रहे हैं। उस धूपका धूम कृष्णवर्ण विरहित कांतिसे युक्त होकर आकाशप्रदेशमें जिस समय जा रहा था, उस समय सुगंधसे युक्त इंद्रधनुषके समान मालुम हो रहा था। स्वामिन्!

विफल होनेवाला यह जन्म आपके दर्शनसे सफल भया। इसलिये कर्म-नाटक अफल हो, एवं मुक्ति सफल हो। इस प्रकार कहते हुए उत्तम फलको समर्पण करने लगे। उत्तम रत्नदीप, सुवर्ण व रत्ननिर्मित उत्तम-फलोंसे युक्त मेरुपर्वतके समान उन्नत अर्घ्यसे भगवंतकी पूजा की।

संतापको पानेवाले समस्त प्राणियोंके दुःखकी शांति हो इस विचारसे भगवंतके चरणोंमें शांतिधारा की। वह शांतिधारा नहीं थी, अपितु मुक्ति-कांताके साथ पाणिग्रहण होते समय कीजानेवाली जलधारा थी। एवं चांदी सोना आदिसे निर्मित उत्तमपुष्पोंसे भगवंतकी पुष्पांजलि की। साथ ही मोती, माणिक, नील, गोमेधिक हीरा, वैडूर्य, पुष्यराग आदि उत्तमोत्तमरत्नोंको भगवंतके चरणोंमें समर्पण किया।

अब वाद्यघोष [बाजेका शब्द] बंद हो गया। विद्यानंद वे कुमार प्रभुके सामने खडे होकर स्तुति करनेके लिए उद्युक्त हुए।

भगवन् ! अद्य वयं सुखिनो भूम—
जयजय जातिजरातंक मृत्युसंचयदूर दुःखसंहार !
जयजय निश्चिंत शांत निर्लेप ! भवदीय पावन चरण वर शरण
पापांधकारविद्रावण मदनदर्पापहरण भवमथन !
कोपाग्नि शीतल जलधर ! संसार संताप निवारक
कर्ममहारण्यदावाग्नि ! दशविधधर्मोद्धार सुसार !
धर्माधर्मस्वरूपं दर्शय ! कर्म निर्मूलसे निर्मल पदसारकर

हे महादेव ! यह जगत् अत्यंत विशाल है। उस जगत्से भी विशाल आकाश है। उससे भी बढकर विशाल आपका ज्ञान है। आप की स्तुति हम क्या कर सकते हैं ?

कल्पवृक्षसे प्राप्त दिव्यान्नके सुखसे भी बढकर निरुपम निजसुखको अनुभव करनेवाले आपको सामान्य वृक्षके फल व भक्ष्योंको हम अर्पण कर प्रसन्न होते हैं यही हम बालकोंकी चंचलभक्ति है।

स्वामिन्! ध्यानमें आत्माके अंदर आपको लाकर भावशुद्धिके साथ ज्ञान-पूजा जबतक हम नहीं कर सकते हैं, तबतक आपकी इन फलोंसे पूजा करेंगे।

पुनः पुनः साष्टांग नमस्कार करते हुए हाथ जोडकर स्तुति करते हैं। भक्तिसे हर्षित होते हुए भगवंतकी प्रदक्षिणा दे रहे हैं।

हेमगिरीको प्रदक्षिणा देते हुए आनेवाली सोमसूर्यकी सेनाके समान वे हेमवर्णके कुमार भगवंतको प्रदक्षिणा दे रहे हैं, उनकी भक्तिका वर्णन क्या करना है ?। भगवंतकी शरीरकांति वहांपर सर्वत्र व्याप्त हो गई है। उस बीचमें ये कुमार जा रहे थे। मालुम हो रहा था कि ये कांतिके तीर्थमें ही जा रहे हैं।

अत्यंत ठण्डे धूपके मार्गमें चलनेके समान तथा ठण्डे प्रकाशको धारण करनेवाले दीपकके प्रकाशमें चलनेके समान वे कुमार वहांपर प्रदक्षिणा दे रहे हैं।

रत्नसुवर्णके द्वारा निर्मित गंधकुटिमें रत्नगर्भ वे कुमार जिनरत्नोंके बीच रत्नदीपके समान जा रहे हैं, उस शोभाका क्या वर्णन करें ?

जिनेंद्रभगवंतके सिंहासनके चारों ओर विराजमान हजारों केवलियोंकी वंदना करते हुए वे विनयरत्नकुमार रविकीर्तिराजको आगे रखकर जा रहे हैं, उनकी भक्तिका क्या वर्णन करें ?

उन केवलियोंमें अनेक केवली रविकीर्तिराजके पूर्वपरिचयके थे। इसलिये अपने भाईयोंको भी परिचय देनेके उद्देशसे रविकीर्ति कुमारने उनको इस क्रमसे नमोस्तु किया।

उन महायोगियोंके बीच सबसे पहिले एक योगिराजको रविकीर्ति राजने देखा, जो कि अपनी कांतिसे सूर्यचंद्रको भी तिरस्कृत कर रहे हैं। उनको देखकर कुमारने कहा कि 'मैं स्वामी अकंपकेवलीको नमस्कार करता हूं, सभी भाई उसी समय समझ गये कि यह वाराणसी राज्यके अधिपति राजा अकंप है। उन्होंने राज्यवैभवको त्यागकर तपश्चर्या की, व केवलज्ञानको प्राप्त किया। साथमें सबने अकंपकेवलीकी वंदना की।

युवराज अर्ककीर्तिको अपनी कन्या दी व राज्यको अपने पुत्रको दिया एवं स्वयं तपोराज्यके आश्रयमें आकर केवली हुए। धन्य है! इससे बढकर हमें दृष्टांतकी क्या आवश्यकता है? इस प्रकार विचार करते हुए वे कुमार आगे बढ रहे थे कि इतनेमें वहांपर उस जिनसमूहमें दो योगिराज देखनेमें आये। मालुम होता था कि स्वयं चंद्र और सूर्य ही जिनरूपको लेकर वहांपर उपस्थित हैं।

रविकीर्तिकुमारने कहा कि सोमप्रभ जिन जयवंत रहे। श्रेयांसस्वामीको नमोस्तु। इस वचनसे वे सब कुमार इन केवलियोंसे परिचित हुए। हस्तिनापुरके राजा सोमप्रभ व श्रेयांस सहोदर हैं। उन्होंने अपनी सर्व राज्यसंपत्तिको मेघेश्वरके (जयकुमार) हवालाकर दीक्षा ली एवं आज इस वैभवको प्राप्त किया। जिन! जिन! धन्य है, जिनदीक्षा कोई सामान्य चीज नहीं है। वह तो लोकपावन है। इस प्रकार कहते हुए उन दोनों केवलियोंको भक्तिसे प्रणाम किया व आगे बढे! आगे बढनेपर अत्यंत कांतियुक्त दो केवलियोंका दर्शन हुआ। रविकीर्ति कुमारने कहा कि कच्छ व महाकच्छ जिनकी मैं भक्तिसे वंदना करता हूं। ये तो दोनों चक्रवर्ति भरतके खास मामा हैं। और अपने राज्यसे मोहको त्यागकर यहां केवली हुए हैं; धन्य हैं, इस प्रकार विचार करते हुए वे आगे बढे। वहांपर उन्होंने जिस केवलीका दर्शन किया वह वहां उपस्थित सर्व केवलियोंसे शरीरसे हृष्टपुष्ट दीर्घकाय था, और सुंदर था, विशेष क्या, उस समयका कामदेव ही था। रत्नपर्वत ही आकर जिन रूपमें खडा हो इस प्रकार लोगोंको आश्चर्यमें डाल रहा था। रविकीर्ति राजने भक्तिसे कहा कि भगवान् बाहुबलि स्वामीके चरणोंमें नमस्कार हो। सर्व कुमारोंने आश्चर्य व भक्तिके साथ उनकी वंदना की।

आगे बढनेपर और भी अनेक केवली मिले, जिनमें इन कुमारोंके कई काका भी थे, जो भरतेशके सहोदर हैं। परन्तु हम भरतचक्रवर्तिको नमस्कार नहीं करेंगे, इस विचारसे अपने २ राज्यको छोडकर

दीक्षित हुए। ऐसे सौ राजा हैं। उनमेंसे कईयोंको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई थी। उन केवलियोंकी उन्होंने भक्तिसे वंदना की। और मनमें विचार करते हुए आगे बढे कि जब हमारे इस पितृसमुदायने दीक्षा लेकर कर्मनाश किया तो क्या हमारा कर्तव्य नहीं है कि हम भी उनके समान ही होवें ?।

अंदरके लक्ष्मीमंडपमें आनंदके साथ तीन प्रदक्षिणा देकर बाहरके लक्ष्मी मंडपमें आये। वहांपर १२ सभाओंकी व्यवस्था है। वहांपर सबसे पहिली सभा आचार्यसभा कहलाती हैं। वे कुमार बहुत आनंदके साथ उस सभामें प्रविष्ट हुए। उस ऋषिकोष्ठकमें हजारों मुनिजन हैं। तथापि उनमें ८४ मुख्य हैं, वे गणनायक कहलाते हैं। उनमें भी मुख्य वृषभसेन नामक गणधर थे, उनको कुमारोंने बहुत भक्तिके साथ नमस्कार किया। सार्वभौम चक्रवर्ति भरतके तो वे छोटे भाई हैं, परन्तु शेष सौ अनुजोंके लिए तो बडे भाई हैं। और सर्वज्ञ भगवान् आदि प्रभुके वे प्रधान मंत्री हैं, ऐसे अपूर्वयोगी वृषभसेन गणधरको उन्होंने भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। वहांपर उपस्थित गणधरोंको क्रमसे नमस्कार करते हुए वे कुमार आगे बढे। इतनेमें वहांपर उन्होंने अनेक तत्वचर्चामें चित्त विशुद्धि करनेवाले २१ वें गणधरको देखा। उनके सामने वे कुमार खडे होकर कहने लगे कि हे मेघेश्वरयोगि ! आप विचित्र महापुरुष हैं, आप जयवंत रहे ! इसी प्रकार विजय, जयंतयोगी जो मेघेश्वर [जयकुमार] के सहोदर हैं, की भी भक्तिसे वंदना की, और कहने लगे कि दीक्षाकार्यका दिग्विजय हमें हो गया। अब हमारा निश्चय होगया है। उस समय वे कुमार आनंदसे फूले न समा रहे थे।

मुनि समुदायकी वंदना कर वे कुमार अनिमिषराज देवेंद्रके पास आये व बहुत विनयके साथ उन्होंने अपने अनुभवको देवेंद्रसे व्यक्त किया। देवराज ! हमारे निवेदनको सुनो, उन कुमारोंने प्रार्थना की " आप अपने स्वामीसे निवेदन कर हमें दीक्षा दिलावें, इससे तुम्हें

सातिशय पुण्य मिलेगा। वह पुण्य आगे तुम्हे मुक्ति दिला देगा, हम लोगोंने भगवंतका कभी दर्शन नहीं किया, उनसे दीक्षाके लिए विनंती करनेका क्रम भी हमें मालुम नहीं है। इसलिए हे ऊर्ध्वलोकके अधिपति! मौनसे हमें देखते हुए क्यों खडे हो! चलो, प्रभुको कहो"। तब देवेंद्रने उत्तर दिया कि कुमार! आप लोगोंका अनुभव, विचार, परमात्माके ज्ञानको भरपूर व्यक्त कर रहा है। इसलिए मुझे आप लोग क्यों पूछ रहे हैं। आप लोग जो भी करेंगे उसमें मेरी सम्मति है। जाईयेगा। तदनंतर वे कुमार वहांसे आगे बढे, और गणधरोंके अधिपति वृषभसेनाचार्यको पुनश्च वंदनाकर कहने लगे कि मुनिनाथ! कृपया जिननाथसे हमें दीक्षा दिलाईये, तब वृषभसेनस्वामीने कहा कि कुमार! आप लोगोंका पुण्य ही आप लोगोंके साथमें आकर दीक्षा दिला रहा है, फिर आप लोग इधर उधरकी अपेक्षा क्यों करते हैं। जावो, आप लोग स्वयं त्रिलोकपतिसे दीक्षाकी याचना करना, वे बराबर दीक्षा देंगे। साथमें यह भी कहा कि हमारी अनुमति है, वही यहां द्वादशगणको भी सम्मत है, लोकके लिए पुण्यकारण है, आप लोग जावो, अपना काम करो। इस प्रकार कहकर गणनायक वृषभसेनाचार्यने उनको आगे रवाना किया। गणकी अनुमतिसे आगे बढकर वे भगवान् आदिप्रभुके सामने खडे हुए व करबद्ध होकर विनयसे प्रार्थना करने लगे हे फणिसुरनरलोकगतिके एवं विश्वके समस्तजीवोंको रक्षण करनेवाले हे प्रभो! हमारे निवेदनकी ओर अनुग्रह कीजिये।

भगवन्! अनादिकालसे इस भयंकर भवसागरमें फिरते फिरते थक गये हैं। हैरान होगये। अब हमारे कष्टोंको अर्ज करनेके लिए आप दयानिधिके पास आये हैं। स्वामिन्! आपके दर्शनके पहिले हम बहुत दुःखी थे। परंतु आपके दर्शन होनेके बाद हमें कोई दुःख नहीं रहा। इस बातको हम अच्छीतरह जानते हैं। इसलिए हमारी प्रार्थनाको अवश्य सुननेकी कृपा करें।

भगवन् ! कालको भगाकर, कामको लात मारकर, दुष्कर्मजालको नष्ट कर, हम मुक्तिराज्यकी ओर जाना चाहते हैं। इसलिए हमें जिन-दीक्षाको प्रदान करें। दीक्षा देनेपर मनको दंडितकर आत्मामें रक्खेंगे एवं ध्यान दंडसे कर्मोंको खंड खंडकर दिखायेंगे आप देखिये तो सही। अर्हन् ! हम गरीब व छोटे जरूर हैं, परन्तु आपकी दीक्षाको हस्तगत करनेके बाद हमारे बराबरी करनेवाले लोकमें कौन हैं ? उसे बातोंसे क्यों बताना चाहिए। आप दीक्षा दीजिये, तदनंतर देखिये हम क्या करते हैं ?।

प्रभो ! इस आत्मप्रदेशमें व्याप्त कर्मोंको जलाकर कोटिसूर्यचंद्रोंके प्रकाशको पाकर, यदि आपके समान लोकमें हम लोकपूजित न बनें तो आपके पुत्रके पुत्र हम कैसे कहला सकते हैं ?. जरा देखिये तो सही।

हमारे पिता छह खंडके विजयी हुए। हमारे दादा [आदिप्रभु] त्रेसठ कर्मोंके विजयी हुए। फिर हमें तीन लोकके कर्मकी क्या परवाह है। आप दीक्षा दीजिये, फिर देखिये। भगवन् ! मोक्षके लिए ध्यानकी परम आवश्यकता है। ध्यानके लिए जिनदीक्षा ही बाह्यसाधन है। इसलिए " स्वामिन् ! दीक्षां देहि ! दीक्षां देहि ! " इस प्रकार कहते हुए सबने साष्टांग नमस्कार किया।

भक्तिसे बद्ध दीर्घबाहु, विस्तारित पाद, भूमिको स्पर्श करते हुए ललाट प्रदेश, एकाग्रतासे जगदीशके सामने पडे हुए वे कुमार उस समय सोनेकी पुतलीके समान मालुम होते थे।

" अस्तु भव्याः समुत्तिष्ठत " आदिप्रभुने निरूपण किया। तब वे कुमार उठकर खडे हुए। वहां उपस्थित असंख्य देवगण जयजयकार करने लगे। देवदुंदुभि बजने लगी। देवांगनायें मंगलगान करने लगीं। समयको जानकर वृषमसेनयोगी व देवेंद्र वहांपर उपस्थित हुए। नील-रत्नकी फरसीके ऊपर मोतीकी अक्षतावोंसे निर्मित स्वस्तिकके ऊपर उन सौ कुमारोंको पूर्व व उत्तरमुखसे बैठाल दिया, वे बहुत आतुरताके साथ

वहां बैठ गये। उनके हाथमें रत्नत्रययंत्रको स्वस्तिकके ऊपर रखकर उसके ऊपर पुष्पफलाक्षतादि मंगलद्रव्योंको विन्यस्त किया, इतनेमें हल्ला गुल्ला बंद होगया, अब दीक्षाविधि होनेवाली है। वे सुकुमार भगवान्के प्रति ही बहुत भक्तिसे देख रहे थे। इतनेमें मेघपटलसे जिस प्रकार जल बरसता है उसी प्रकार भगवंतके मुखकमलसे दिव्यध्वनिका उदय हुआ।

वे कुमार भवके मूल, भवनाशके मूल कारण एवं मोक्षसिद्धिके साध्यसाधनको कान देकर सुन रहे थे, भगवान् विस्तारसे निरूपण कर रहे थे। हे भव्य! मोक्षमार्गसंधिमें विस्तारसे जिसका कथन किया जा चुका है, वही मोक्षका उपाय है। परिग्रहका सर्वथा त्याग करना ही जिनदीक्षा है। बाह्यपरिग्रह दस प्रकारके हैं। अंतरंग परिग्रह चौदह प्रकारके हैं। ये चौवीस परिग्रह आत्माके साथ लगे हुए हैं। इन चौवीस परिग्रहोंका परित्याग करना ही जिनदीक्षा है। क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण, दासी दास, पशु, वस्त्र, बरतन इन बाह्य परिग्रहोंसे मोहका त्याग करना चाहिए। इसी प्रकार रागद्वेष मोह हास्यादिक चौदह अंतरंग परिग्रहोंका भी त्याग करना चाहिए। जो अत्यंत दरिद्र हैं उनके पास बाह्यपरिग्रह कुछ भी नहीं रहते हैं, तथापि अंतरंग परिग्रहोंको त्याग किये विना कोई उपयोग नहीं है। अंतरंग परिग्रहोंके त्याग करनेपर कर्म भी आत्माका त्याग करता है। इसलिए बाह्य परिग्रहका त्याग ही त्याग है, ऐसा न समझना चाहिए। बाह्य-परिग्रहके त्यागसे जो आत्मविशुद्धि होती है, उसके बलसे अंतरंग मोह रागादिकका परित्याग करें जिससे ध्यानकी व सुखकी सिद्धि होती है।

इस आत्मासे शरीरकी भिन्नता है, इस बातको दृढ करनेके लिए मुनिको केशलोच व इंद्रियोंके दमनके लिए एकभुक्तिकी आवश्यकता है। शरीरशुद्धिके लिए कमंडलु व जीवरक्षाके लिए पिंछकी आवश्यकता है। एवं अपने ज्ञानकी वृद्धिके लिए आचारसूत्रकी आवश्यकता है। यह योगियोंके उपकरण हैं।

शास्त्रोंमें वर्णित मूलगुण, उत्तरगुणादि ध्यानके लिए बाह्य सहकारि हैं। यह सब ध्यानकी सिद्धिके लिए आवश्यक हैं।

इस प्रकार गंभीरनिनादसे निरूपण करते हुए भगवंतने यह भी कहा कि अब अधिक उपदेशकी जरूरत नहीं है। अब अपने शरीरके अलंकारोंका परित्याग कीजिये। राजवेषको छोडकर तापसी वेषको ग्रहण कीजिए।

सर्व पुत्रोंने ' इच्छामि, इच्छामि ' कहते हुए हाथके फलाक्षतको भगवंतके पादमूलमें अर्पण करनेके लिए पासमें खडे हुए देवोंके हाथमें दे दिया। अपने शरीरके वस्त्रको उन्होंने उतारकर फेंका। इसी प्रकार कंठहार, कर्णाभरण, सुवर्णमुद्रिका, कटीसूत्र, रत्नमुद्रिका आदि सर्वाभरणोंको उतार दिया। तिलक, यज्ञोपवीत, आदिका भी त्याग किया। यह विचार करते हुए कि हम कौन हैं यह शरीर कौन है, अपने केशपाशको अपने हाथसे लुंचन करते हुए वहां रखने लगे। वे केशपाशको संक्लेशपाश, दुर्मोहपाश, आशापाश व मायापाशके समान फाडने लगे। विशेष क्या ? जन्मके समयके समान वे जातरूपधर बने। शरीरका आवरण दूर होते ही शरीरमें नवीन कांति उत्पन्न होगई। जिस प्रकार कि माणिकको जलानेपर उसमें रंग चढता है।

कांति व शांति दोनोंमें वे कुमार जातरूपधर बने। कांति अब तो पहिलेसे भी बहुत बढ गई है। वे बहुत ही भाग्यशाली हैं।

भगवान् आदिप्रभु दीक्षागुरु हैं। कैलासपर्वत दीक्षाक्षेत्र है। देवेंद्र व गणधर दीक्षाकार्यमें सहायक हैं। ऐसा वैभव लोकमें किसे प्राप्त होसकता है।

स्वस्तिकके ऊपरसे उठकर सभी कुमार आदिप्रभुके चरणोंमें पहुंचे व भक्तिसे नमस्कार करने लगे, तब वीतरागने आशिर्वाद दिया कि ' आत्मसिद्धिरेवास्तु '। इस समय देवगण आकाश प्रदेशमें खडे होकर पुष्पवृष्टि करने लगे। एवं जयजयकार करने लगे। इसी समय करोडों बाजे बजने लगे। एवं मंगलगान करने लगे। वृषभसेन गणधरने

उपकरणोंको वृषभनाथ स्वामीके सामने रखा तो नूतन ऋषियोने वृषभनाथाय नमः स्वाहा कहते हुए ग्रहण किया। उनके हाथमें पिंछ तो बिजलीके गुच्छके समान मालुम होरहे थे। इसी प्रकार स्फटिकके द्वारा निर्मित कमंडलुको भी उन्होंने ग्रहण किया। एवं बालवयके वे सौ मुनि वहांसे आगे बढे। वृषभसेनाचार्यके साथ वे जब आगे बढ रहे थे, तब वहां सभी जयजयकार करने लगे। मालुम हो रहा था कि समुद्र ही उमडकर घोषित कर रहा हो।

'रविकीर्ति योगी आवो, गजसिंहयोगी आवो, दिविजेंद्रयोगी आवो' इस प्रकार कहते हुए योगिजन उनको अपनी सभामें बुला रहे थे। उन्होंने भी उनके बीचमें आसन ग्रहण किया। देवेंद्र शची महादेवीके साथ आये व उन्होंने उन नूतनयोगियोंको बहुत भक्तिके साथ नमस्कार किया। उन योगियोंने भी "धर्मवृद्धिरस्तु" कहा। देवेंद्र भी मनमें यह कहते हुए गया कि स्वामिन्! आप लोगोंके आशिर्वादसे वृद्धिमें कोई अंतर नहीं होगा। अवश्य इसकी सिद्धि होगी। इसी प्रकार यक्ष, सुर, गरुड, गंधर्व, नक्षत्र, देव, मनुष्य आदि सबने आकर उन योगियोंको नमस्कार किया।

मुनिकुमारोंने जिन वस्त्राभरण केश आदिका परित्याग किया था उनको देवगणोंने बहुत वैभवके साथ समुद्रमें पहुंचाया जाते समय उनके वैराग्यकी भूरि भूरि प्रशंसा हो रही थी।

बाल्यकालमें सौंदर्ययुक्त शरीरको पाकर एकदम मोहका परित्याग करनेवाले कौन हैं? इस प्रकार जगह जगह खडे हुए देवगण प्रशंसा कर रहे थे।

हजार सुवर्णमुद्रा मिली तो बस, खर्चकर खाकर मरते हैं, परंतु संसार नहीं छोडते हैं। भूवलयको एक छत्राधिपत्यसे पालनेवाले सम्राट्के पुत्र इस प्रकार परिग्रहग्रहोंका परित्याग करें, यह क्या कम बात है?

मूछें सफेद होजाय तो उसे कलप वगैरे लगाकर पुनः काले दिखानेका लोगोंको शौक रहता है। परंतु अच्छी तरह मूछ आनेके पहिले ही संसारको छोडनेवाले अतिथि इन कुमारोंके समान दूसरे कौन हो सकते हैं।

दांत न हों तो तांबूलको खलबत्तेमें कूटकर तो जरूर खाते हैं। परंतु छोडते नहीं है। इन कुमारोने इस बाल्य अवस्थामें संसारका परित्याग किया। आश्चर्य है!

अपने विकृत शरीरको तेल साबून, अत्तर वगैरेसे मलकर सुंदर बनानेके लिए प्रयत्न करनेवाले लोकमें बहुत हैं। परंतु सातिशय सौंदर्यको धारण करनेवाले शरीरोंको तपको प्रदान करनेवाले इन कुमारोंके समान लोकमें कितने हैं?

काले शरीरको पावडर मलकर सफेद करनेके लिए प्रयत्न करनेवाले लोकमें बहुत हैं। परंतु पुरुष भी मोहित हों ऐसे शरीरको धारण करनेवाले इन कुमारोंके समान दीक्षा लेनेवाले कौन हैं?

भरतचक्रवर्तिकी सेवा करनेका भाग्य मिले तो उससे बढकर दूसरा पुण्य नहीं है ऐसा समझनेवाले लोकमें बहुत हैं। परंतु खास भरतचक्रवर्तिके पुत्र होकर संपत्तिसे तिरस्कार करें, यह आश्चर्यकी बात है।

इन कुमारोंकी मोक्षप्राप्तिमें क्या कठिनता है? यह जरूर जल्दी ही मोक्षधाममें पधारेंगे इत्यादि प्रकारसे वहांपर देवगण उन कुमारोंकी प्रशंसा कर रहे थे, ये दीक्षित कुमार आत्मयोगमें मग्न थे।

भरतचक्रवर्ति महान् भाग्यशाली हैं। अखंडसाम्राज्यके अतुल वैभवको भोगते हुए सम्राट्को तिलमात्र भी चिंता या दुःख नहीं है। कारण वे सदा वस्तुस्वरूपको विचार करते रहते हैं। उनके कुमार भी पिताके समान ही परमभाग्यशाली हैं। नहीं तो, उद्यानवनमें क्रीडाके लिए पहुंचते क्या? वहींसे समवसरणमें जाते क्या! वहां तीर्थंकरयोगीके हस्तसे

दीक्षा लेते क्या ! यह सब अजब बातें हैं। इस प्रकारका योग बडे पुण्यशालियोंको ही प्राप्त होता है। भरतेश्वरने अनेक भवोंसे सातिशय पुण्यको अर्जन किया हैं। वे सदा चिंतवन करते हैं कि,

" हे चिदंबरपुरुष ! आप आगे पीछे, दाहिने बांए, बाहर अंदर, ऊपर नीचे आदि भेदविरहित होकर अमृतस्वरूप हैं। इसलिए हे सच्चिदानंद ! मेरे चित्तमें सदा निवास कीजिए।

हे सिद्धात्मन् ! आप स्वच्छ प्रकाशके तीर्थस्वरूप हैं चांदनीसे निर्मित बिंबके समान हो, इसलिए मुझे सदा सन्मति प्रदान कीजिए ।

इति दीक्षासंधिः ।

—०—

अथ कुमारवियोग संधिः ।

भरतके सौ कुंमार दीक्षित हुए। तदनंतर उनके सेवक बहुत दुःखके साथ वहांसे लौटे। उस समय उनको इतना दुःख हो रहा था कि जैसे किसी व्यापारीको समुद्रमें अपनी मालभरी जहाजके डूबनेसे दुःख होता हो। वह जिस प्रकार जहाजके डूबनेपर दुःखसे अपने गामको लौटता है, उसी प्रकार वे सेवक अत्यंत दुःखसे अयोध्याकी ओर जा रहे हैं। कैलासपर्वतसे नीचे उतरते ही उनका दुःख उद्रिक्त हो उठा। रास्तेमें मिलनेवाले अनेक ग्रामवासी उनको पूछ रहे हैं, ये सेवक दुःखभरी आवाजसे रोते रोते अपने स्वामियोंके वृत्तांतको कह रहे हैं। किसी प्रकार स्वयं रोते हुए सबको रुलाते हुए चक्रवर्तिके नगरकी ओर वे सेवक आये।

रविकीर्ति राजकुमारका सेवक अरविंद है। उसे ही सबने आगे किया। बाकी सब उसके पीछे २ चल रहे हैं। वे दुःखसे चलते समय पतियोंको खोए हुए ब्राह्मणस्त्रियोंके समान मालुम हो रहे थे। कला-

रहित चेहरा, पटुत्वरहित चाल, प्रवाहित अश्रु, मौनमुद्रासे युक्त मुख व उत्तरीय वस्त्रसे ढके हुए मस्तकसे युक्त होकर वे बहुत दुःखके साथ नगरमें प्रवेश कर रहे हैं। उनके बगलमें उन कुमारोंके पुस्तक, आयुध, वीणा वगैरे हैं। नगरवासी, जन आगे बढकर पूछ रहे हैं कि राजकुमार कहां हैं ? तो ये सेवक मूक बनकर जा रहे हैं। बुद्धिमान् लोग समझ गये कि राजकुमार सबके सब दीक्षा लेकर चले गये। वह कैसे ? इनके हाथमें जो खड्ग, कठारी, वीणा, वगैरे हैं, ये ही तो इस बातके लिए साक्षी हैं। नहीं तो ये सेवक तो अपने स्वामियोंको छोडकर कभी वापिस नहीं आ सकते हैं। हमारे सम्राट्के सुपुत्रोंको परबाधा भी नहीं है अर्थात् शत्रुओंको अस्त्रशस्त्रादिकसे उनका अपमरण नहीं हो सकता है। क्योंकि वे मोक्षगामी हैं। इनकी मुखमुद्रा ही कह रही है कि कुमारोंने दीक्षा ली है। सब लोगोंने इसी बातका निश्चय किया। कोई इस बातमें सम्मत हैं। कोई असम्मत हैं। तथापि सबने यह निश्चय किया, जब कि ये सेवक हमसे नहीं कहते हैं तो राजा भरतसे तो जरूर कहेंगे। चलो, हम वहींपर सुनेंगे। इस प्रकार कहते हुए सर्व नगरवासी उनके पीछे लगे।

उस समय चक्रवर्ति भरत एकदम बाहरके दीवानखानेमें बैठे हुए थे। उस समय सेवकोंने पहुंचकर अपने हाथके कठारी, खड्ग, वीणादिकको चक्रवर्तिके सामने रखा व साष्टांग नमस्कार किया।

वहां उपस्थित सभा आश्चर्यचकित हुई। सम्राट् भरत भी आश्चर्य दृष्टिसे देखने लगे। आंसुओंसे भरी हुई आंखोंको लेकर वे सेवक उठे। उपस्थित सर्वजन स्तब्ध हुए। हाथ जोडकर सेवकोंने प्रार्थना की कि स्वामिन् ! श्रीसंपन्न सौ कुमार दीक्षा लेकर चले गये।

इस बातको सुनते ही चक्रवर्तिके हृदयमें एकदम आघातसा होगया। वे अवाक् हुए, हाथका तांबूल नीचे गिर पडा। उस दरबारमें उपस्थित सर्व जन जोर जोरसे रोने लगे। तब सम्राट्ने हाथसे इशारा

कर सबको रोक दिया व अरविंदसे पुनः पूछने लगे। " क्या सच-मुचमें गये? अरविंद! बोलो तो सही!"। अरविंदने उत्तरमें निवेदन किया कि स्वामिन्! हम लोग अपनी आंखोंसे कैलासपर्वतमें दीक्षा लेते हुए देखकर आये। उन्होंने दीक्षा ली, इतना ही नहीं, देवेंद्रके नमस्कार करने पर ' धर्मवृद्धिरस्तु ' यह आशिर्वाद भी दिया।

देखते देखते बच्चोंके दीक्षा लेनेके समाचारको सुनकर सम्राट्का मुख एकदम मलिन हुआ, बोली बंद होगई। हृदय एकदम उडने लगा। दुःख का उद्रेक हो उठा।

नाकके ऊपर उंगली रखकर, मकुटको हिलाकर एक दीर्घ निश्वासको छोडा। उसी समय आंखोंसे आंसू भी उमड पडा, दुःखका वेग बढने लगा, उसे फिर भरतेश्वरने शांत करनेका यत्न किया। तुरंत मूर्छा आ रही थी, उसे भी रोकनेका यत्न किया। पुत्रोंका मोह जरूर दुःख उत्पन्न करता है। परन्तु हाथसे निकलनेके बाद अब क्या कर सकते हैं? अधिक दुःख करना यह विवेकशून्यता है। इस प्रकार विचार करते हुए उस दुःखको शांत करनेका यत्न किया। पहिले एक दफे आंखोंसे आंसू जरूर आया, फिर चित्तके स्थैर्यसे उसे रोक दिया। हृदयमें शोकाग्नि प्रज्वलित हो रही थी, परंतु शांतिजलसे उसे बुझाने लगे। भरतेश्वर उस समय विचार करने लगे कि आपत्तिके समय धैर्य, शोकानलके उद्रेकके समय विवेक व शांति, त्यक्त पदार्थोंमें हेयता, गृहीत विषयोंमें दृढता रहनी चाहिए, यही श्रेष्ठ-मनुष्यका कर्तव्य है। शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है, इस प्रकार भावना करनेवाले भावुकोंको स्वप्न में भी भ्रांतिका उदय नहीं हो सकता, यदि कदाचित् आवे तो उसी समय दूर हो जाती है। आत्मवेदीके पास दुःख जाते ही नहीं हैं। यदि उनके पास दुःख पहुंचा तो आत्माके दर्शन मात्रसे वह दुःख दूर भाग जाता है। आत्मभावनाके सामने अज्ञान क्या टिक सकता है? क्या गरुडके सामने सर्प टिक सकता है?

हृदयमें व्याप्त मोहांधकारको सुज्ञानसूर्यकी सामर्थ्यसे सम्राट्ने दूर किया एवं एक दो घडीके बाद हृदयको सांत्वना देकर फिर बोलने लगे।

जिन ! जिन ! जिन सिद्ध ! उनके साहसको गुरु हंसनाथ ही जानते हैं। क्या उनकी यह दीक्षा लेनेकी अवस्था है ? यह क्या दीक्षोचित दिन है ? आश्चर्य है। कोमल मूछें अभी बढी भी नहीं हैं। अंगके सर्व अवयव अभी पूर्ण भी नहीं हुए हैं। अभी जवान होने ही लगे हैं। इतनेमें ऐसा हुआ ? इन लोगोंने माताके हाथका भोजन किया है। अभीतक अपनी स्त्रियोंके हाथका भोजन नहीं किया है। उमरमें आगये हैं। अब शादी करनेके विचारमें ही था। इतनेमें ऐसा हुआ। आश्चर्य है। अपने भाईयोंके साथ ही खेल कूदमें इन्होंने दिन बिताया, अपनी बाईयोंके साथ एक रात भी नहीं बिताया। इनका विवाह कर अपनी आंखोंको तृप्त करनेके विचारमें था, इतनेमें ऐसा हुआ। आश्चर्य है। सुजयको छोडकर सुकांत नहीं रहता था। रिपुविजयके साथ हमेशा महाजयकुमार रहता था, इस प्रकार अनेक प्रकारसे अपने पुत्रोंका स्मरण करने लगे वीरंजय व शत्रुवीर्य, रतिवीर्य व रविकीर्ति पराक्रममें एकसे एक बढकर थे। उनके सदृश कौन हैं ? इस प्रकार अपने पुत्रोंका गुणस्मरण करने लगे। हाथीके सवारीमें राजमार्तंड, और घोडेकी सवारीमें विक्रमांक, और राजमंदर हाथी घोडे दोनोंकी सवारीमें श्रेष्ठ था। रथमें रत्नरथ, और पद्मरथकी बराबरी करनेवाले कौन हैं ? पृथ्वीमें मेरे पुत्र सर्वश्रेष्ठ हैं, ऐसा मैं समझ रहा था। परन्तु वे एक कथा बनाकर चले गये। अनेक व्रतविधानोंको आचरणकर, बच्चोंकी अपेक्षासे पंचनमस्कारमंत्रको जपते हुए आनंदके साथ जिन माताओंने उनको जन्म दिया, उनके दिलको शांतकर चले गये। आश्चर्य है ! रात्रिंदिन अर्हंत-देवकी आराधना कर, योगियोंकी पादपूजाकर जिन स्त्रियोंने पुत्र होनेकी हार्दिक कामना की, उनके हृदयको शांत किया ! हा ! इन स्त्रियोंके उपवास, व्रत आदिके प्रभावको सूचित करनेके लिए ही मानों ये पुत्र

भी शीघ्र ही चले गये। आश्चर्य! अति आश्चर्य!! उनका व्रत अच्छा हुआ। व्रतोंके फलसे योग्य पुत्र उत्पन्न हुए। परन्तु उन व्रतोंका फल माताओंको नहीं मिला, अपितु संतानको मिला, आश्चर्य है! स्त्रियोंके साथ संसारकर बादमें दीक्षा लेना उचित था, परंतु जब इन लोगोंने ऐसा न कर बाल्यकालमें ही दीक्षा ली तो कहना पडता है कि कहीं मातओंने दूध पिलाते समय ऐसा आशिर्वाद तो नहीं दिया कि तुम बाल्य कालमें ही समवसरणमें प्रवेश करो!

यह मेरे पुत्रोंका दोष नहीं है। मैने पूर्वभवमें जो कर्मोपार्जन किया हैं उसीका यह फल है। इसलिए व्यर्थ दुःख क्यों करना चाहिये? इस प्रकार विचार करते हुए अरविंदसे सम्राट्ने कहा! हे अरविंद! तुम अभी आकर मुझे कह रहे हो! पहिलेसे आकर कहना चाहिये था! ऐसा क्यों नहीं किया? उत्तरमें अरविंदने निवेदन किया कि स्वामिन्! हम लोग पहिले यहांपर कैसे आ सकते थे? हम लोगोंको वे किस चातुर्य से कैलासपर ले गये? उसे भी जरा सुननेकी कृपा कीजियेगा। "हमलोग पीछे रहे तो कहीं जाकर पिताजीको कहेंगे इस विचारसे हमलोगोंको बुलाकर आगे रक्खा, वे हमारे पीछेसे आ रहे थे" अरविंदने रोते रोते कहा! 'कहीं पार्श्वभागसे निकल गये तो पिताजीको जाकर कहेंगे इस विचारसे हमें उन सबके बीचमें रखकर चला रहे थे। हमारी चारों ओरसे हमें उन्होंने घेर लिया था" अरविंदने आंसू बहाते हुए कहा! "स्वामिन्! हम लोगोंने निश्चय किया कि आज तपश्चर्या करनेवालोंके साथ हम क्यों जावें? हम वापिस फिरने लगे तो हमें हाथ पकडकर खींच ले गये। बडे प्रेमसे हमारे साथ बोलने लगे। अपने हाथके आभरणको निकालकर हमारे हाथमें पहनाते हैं, और कहते हैं कि तुम्हे दे दिया, इस प्रकार जैसा बने तैसा हमें प्रसन्न करनेका यत्न करते हैं। हमारे साथ बहुत नरमाईसे बोलते हैं। कोप नहीं करते हैं। हमारी हालतको

देखकर हंसते हैं। अपनी बातको कहकर आगे बढते हैं। राजन्! हम सब सेवकोंके मुख दुःखसे काले होगये थे। परन्तु आश्चर्य है कि उन सबके मुख हर्षयुक्त होकर कांतिमान् हो रहे थे। 'स्वामिन्! इस बचपनमें ही आप लोग क्यों दीक्षा लेते हैं? कुछ दिन ठहर जाईये। इस प्रकार प्रार्थना करनेपर उस बातको भुलाकर दूसरे ही प्रसंगको छेड देते हैं व हमें धीरे २ आगे ले जाते हैं। हे सुरसेन! वरसेन! पुष्पक, करुविंद! आवो इत्यादि प्रकारसे हमें बुलाकर, एक कहानी कहेंगे, उसे सुनो इत्यादि रूपसे बोलते हुए जाते हैं। राजन्! उनके तंत्रको तो देखो! हे राम! रंजक! रत्न! सोम! होन्नल! होन्न! भीम! भीमांक! इत्यादि नाम लेकर हमें बुलाते थे। एवं कोई प्रसंग बोलते हुए हमें आगे ले जा रहे थे। और एक दूसरेको कहते थे कि भाई! तुम्हारा सेवक सुमुख बहुत अच्छा है। उसे सुनकर दूसरा भाई कहता था कि सभी सेवक अच्छे हैं। इस प्रकार हमारी प्रशंसा करने लगे थे। स्वामिन्! आपके सुकुमार हमसे कभी एक दो बातोंसे अधिक बोलते ही नहीं थे। परंतु आज न मालुम क्यों अगणित वाक्य बोल रहे थे। हम लोग उनके तंत्रको नहीं समझते थे, यह बात नहीं! जानकर भी हम क्या कर सकते थे? मालिकोंके कार्यमें हम लोग कैसे विघ्न कर सकते थे? सामने जो प्रजायें मिल रही थीं उनसे कहीं हम इनके मनकी बात कहेंगे इस विचारसे उन्होंने हमको कहा कि तुम लोगोंको पिताजीका शपथ है, किसीसे नहीं कहना। सो हम लोग मुंह बंदकर कैदियोंके समान जा रहे थे। स्वामिन्! सचमुचमें हम लोग यह सोच रहे थे कि चलो हमें क्या? भगवान् आदिप्रभु इन बच्चोंको दीक्षा क्यों देंगे। समझा बुझाकर इनको वापिस भेज देंगे। इसी भावनासे हम लोग गये। राजन्! आश्चर्य है कि भगवान्ने उन कुमारोंके इष्टकी ही पूर्ति कर दी!

हम लोग परमपापी हैं। स्वामिन्! हम परमपापी हैं। इस प्रकार कहते हुए रविकीर्तिसे वियुक्त अरविंद रविसे वियुक्त अरविंदके समान रोने

लगा। रोते २ अपने साथियोंकी ओर देखता है, वे सब ही रो रहे थे। सम्राट्ने कहा कि आप लोग इतना दुःख क्यों करते हैं ? शांत हो जावो। उत्तरमें उन्होंने कहा कि स्वामिन् ! जन्मदाताओंको भुलाते हुए हमारा उन्होंने पालन किया। हमारे मनकी इच्छाकी पूर्ति करते हुए सदा पोषण किया। लोकमें सर्वश्रेष्ठ हमारे स्वामी जब इस प्रकार हमें छोडकर चले गये तो दुःख कैसे रुक सकता है ?

भरतेश्वरने पुनः प्रश्न किया कि अरविंद ! कहो तो सही, उनको वैराग्य क्यों उत्पन्न हुआ ? तब अरविंदने कहा कि स्वामिन् ! हस्तिनापुरके राजा दीक्षित हुए समाचारसे ये सन्यस्त हुए अर्थात् दीक्षा लेनेके लिए उद्युक्त हुए। ' तब क्या रविकीर्तिकुमारने भी यह नहीं कहा कि कुछ दिनके बाद दीक्षा लेंगे ' । सम्राट्ने प्रश्न किया उत्तरमें अरविंदने कहा कि स्वामिन् तब तो सुनिये ! हमारी सबसे अधिक बिगाड करनेवाला तो वही कुमार है। उस रविकीर्तिकुमारने ही ध्यानकी खूब प्रशंसा की। दीक्षा की स्तुति की। मनुष्यजन्मकी निंदा की। उसकी बातसे सब कुमार प्रसन्न हुए, उसीसे तो हम लोगोंकी व इस देशकी आज यह दशा हुई।

भरतेश्वरने कहा कि अच्छा ! हम समझ गये। दीक्षा लेनेका जब विचार हुआ, तब पिताको पूछकर दीक्षा लेंगे। इस प्रकार क्या उनमें एकने भी मेरा स्मरण नहीं किया ? उत्तरमें अरविंदने कहा कि स्वामिन् ! कुछ कुमारोंने जरूर कहा कि पिताजीको पूछकर दीक्षा लेंगे, तब कुछ कहने लगे कि पिताजीको पूछनेसे हमारा काम बिघड जायगा। वे कभी सम्मति नहीं देंगे। इस प्रकार उनमें ही विचार चलने लगा। उनमें कोई २ कुमार कहने लगे कि पिताजी तो कदाचित् सम्मति दे देंगे। परंतु मातायें कभी नहीं देंगी। जब अपन दीक्षा लेनेके लिए जा रहे हैं तब उनको पूछनेकी जरूरत ही क्या है ? वे कौन हैं ? हम कौन हैं ? हमारा उनका संबंध ही क्या है ? इस प्रकार बोलते हुए आगे बढे।

उस बातको सुनकर भरतेश्वर हसते हुए कहने लगे कि अरे! वे तो हमारे अंतरंगको भी जानते हैं! बोलो! फिरसे बोलो! उन्होने क्या कहा! अरविंदने कहा कि स्वामिन्! वे कहते थे कि कदाचित् पिताजी एक दफे इनकार करेंगे तो फिर समझकर जाने देंगे, परंतु हमारी मातायें कभी नहीं जाने देंगी। वे तो मोक्षांतरायमें सहायक होजायंगी।

चक्रवर्त्ति भी आश्चर्यान्वित हुए। वयमें ये छोटे होनेपर भी आत्माभिप्रायमें ये छोटे नहीं हैं। इनमें इतना विवेक है, यह मैं पहिले नहीं जानता था। इस प्रकार भरतेश्वरने आश्चर्य व्यक्त किया।

वहां उपस्थित चक्रवर्तिके मित्रोंने कहा कि स्वामिन्! रत्नकी खानमें उत्पन्न रत्नोंको कांतिका मिलना क्या कोई कठिन है? आपके पुत्रोंको विवेक न हो तो आश्चर्य है। तब भरतेश्वरने कहा कि, नागर! दक्षिण! देखो तो सही! उनको जाने दो, जानेकी बात नहीं कहता हूं। परंतु जाते समय अखिल प्रपंचको जाननेका चातुर्य जो उनमें आया, इसके लिए मैं प्रसन्न हुआ। सेवकोंको न डांटते हुए ले जानेका प्रकार, मुझे व उनकी मातावोंको न पूछकर जानेका विचार देखनेपर चित्तमें आश्चर्य होता है।

स्वामिन्! युक्तिमें वे सामान्य होते तो इस उमरमें दीक्षा लेकर मोक्षके लिए प्रयत्न क्यों करते? उनकी कीर्ति सचमुचमें दिगंत व्यापी होगई है। इस प्रकार चक्रवर्तिके मित्रोंने उनकी प्रशंसा की।

उस समय मंत्रीने कहा कि अपने पिता प्रतिष्ठाके साथ षट्खंड राज्यका पालन करते हैं तो हम अमृतसाम्राज्यका अधिपति बनेंगे, इस विचारसे प्राज्य [उत्कृष्ट] तपको उन्होंने ग्रहण किया होगा।

अर्ककीर्ति दुःखके साथ कहने लगा कि पिताजी के सौ भाई उस दिन दीक्षा लेकर चले गये। आज मेरे सौ भाईयोंने दीक्षा लेकर मुझे दुःख पहुंचाया। हम लोग बडे हैं, हम लोगोंके दीक्षित होनेके बाद उनको दीक्षा लेनी चाहिए, यह रीत है। वे दुष्ट हैं। हमसे

आगे चले गये, यह न कहकर आश्चर्य है कि आप लोग उनकी प्रशंसा कर रहे हैं।

अर्ककीर्तिके शोकावेशको देखकर भरतेश्वरने सांत्वना दी कि बेटा! शांत रहो। मेरे भाईयोंके समान ये क्या अहंकारसे चले गये? उत्तम वैराग्यको धारण कर ये चले गये हैं, इसलिए दुःख करनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि मैं और तुम दोनों दुःख करें तो हमारी सेना व प्रजायें भी दुःखित होंगी। और अंतःपुरमें भी सब दुखी होंगे। इसलिए सहन करो। इसी प्रकार भरतेश्वरने अरविंद आदिको बुलाकर अनेक रत्नाभरणादि उपहारमें दिये व कहा कि आप लोग दुःख मत करो। युवराजके पास अब तुम लोग रहो। युवराज अर्ककीर्तिको भी कहा कि पहिलेके मालिकोने जिस प्रकार इनको प्रेमसे पाला पोसा, उसी प्रकार तुम भी इनके प्रतिव्यवहार करना। तदनंतर सब लोग वहांसे चले गये।

अब सार्वभौम महलमें अंदर चले गये। तब उनके सामने शोकावेगसे संतप्त रानियोंका समुदाय उपस्थित हुआ। निस्तेज शरीर, बिखरे हुए केशपाश, म्लानमुख व अश्रुपातसे युक्त हुई वे अंगनायें भरतेश्वरके चरणोंमें पडकर रोने लगीं। पतिदेव! हमारे पुत्र हमसे दूर चले गये! आंख और मनके आनंद चले गये! हम उन्हींको अपना सर्वस्व समझ रही थीं। हाय! उन्होंने हमारा घात किया। हम अपने माणिक्यरूपी पुत्रोंको नहीं देखती हैं! राजन्! हमारी आगेकी दशा क्या है? हमारी कामना थी कि वे राज्यका पालन करेंगे। परन्तु वे जंगलके राज्यको पालन करने लिए चले गये! अंतिम वयमें दीक्षा न लेकर अभी दीक्षाके लिए चले गये एवं हमें इस प्रकार कष्टमें डाल गये! हम लोग उनके विवाहके वैभवको देखना चाहती थीं। परंतु हमारी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। जिस प्रकार फलकी अभिलाषासे किसी वृक्षको सिंचनकर पाले पोसे तो फल आनेके समय ही वह वृक्ष चला जाय,

इस प्रकारकी यह दशा हुई। स्वामिन्! आपको भी न कहकर, हमको भी न कहकर चुपचापके तपश्चर्याको जानेके लिए, हमने उनको ऐसा कष्ट क्या दिया है। देखिये तो सही! हमारे व्रत, नियम आदिका फल व्यर्थ हुआ। उनसे हमें अल्पफल मिला, संपत्ति केवल दीखकर चली गई। हाय! हम कितनी पापिनी हैं। इस प्रकार सम्राट्के सामने अत्यंत दीनताके साथ वे दुःख करने लगीं।

भरतेश्वर उनको सांत्वना देते हुए कहने लगे कि देवियों! शांत रहो, वे अपनेको कष्ट देकर जानेके लिए ही आये हुए थे, अब दुःख करनेसे क्या प्रयोजन है? उन कुमारोंके विवाह मंगलका हम विचार कर रहे थे। उन्होंने ही दूसरा विचार किया, मनुष्य स्वयं एक विचार करता है तो विधि और ही सोचती है, यह वचन प्रत्यक्ष अनुभवमें आया। मैं इन पुत्रोंके योग्य कन्याओंके संबंधमें विचार कर रहा था, परंतु वे कहते हैं कि हमें कन्या नहीं चाहिए, पिताजी कन्या किसके लिए देख रहे हैं? पूर्वजन्मके कर्मको कौन उल्लंघन कर सकता है? नहीं तो क्या इस उमरमें यह विचार? हाथसे जो बात निकल गई उसके लिए दुःख करके क्या प्रयोजन है? अब आप लोग दुःख करें तो क्या वे आ सकते हैं? कभी नहीं। फिर व्यर्थ ही रोनेसे क्या प्रयोजन? इसलिए उनको अब भूलनेका यत्न करो, नहीं तो तुम्हारा विवेक किस कामका? पुत्रोंके रहते हुए रत्नोंके समान समझकर प्रेम करना चाहिए। उनके चले जानेपर काचके समान समझकर उनको भूलना चाहिये। वे तपके लिए गये हैं न? फिर तो अच्छा हुआ कहना चाहिए। कुपथके लिए तो नहीं गये? अपकीर्ति करनेपर रोना चाहिये, निर्मल मार्गमें जानेपर दुःख क्यों? एक बात और है। तपको धारण कर भी मरीचिकुमारके समान उन्होने मिथ्यामार्गका अवलंबन नहीं किया। अपने दादा [आदिप्रभु] के पास ही गये। इसके लिए दुःख क्यों करना चाहिए? और एक बात सुनो। राजा होते तो

उनको मेरे राज्यकी प्रजायें नमस्कार करती थीं। परंतु अब तो पन्नगामरनरलोककी समस्त जनता उनके चरणोंमें मस्तक रखती है।

अनेक स्त्रियोंके पुत्र राज्यको पालन कर रहे हैं। परन्तु आपके पुत्र समस्त विश्वको अपने चरणोंमें झुकाते हैं, इससे बढकर आप लोगोंका भाग्य और क्या हो सकता है? दुःखसे शरीर म्लान होता है। आयुष्यका ह्रास होता है। भयंकर पापका बंधन होता है। आप लोग विवेकी होकर इस प्रकार दुःख क्यों करती हैं। बस! शांत रहो। वीणाजी! विद्रुमवती! सुमनाजी! प्रिये वीणादेवी! आवो! इत्यादि प्रकारसे बुलाते हुए उनकी आंखोंको अपने हाथसे पोंछते हुए भरतेश्वरने कहा कि अब दुःख मत करो, तुम्हे हमारा शपथ है। हे माणिक्यदेवी! मंद्राणि! चंद्राणि! कल्याणाजि! मधुमाधवाजी! जाणाजी! कांचनमाला! आवो! दुःख छोडो! इस प्रकार कहते हुए उनको भरतेश्वरने आलिंगन दिया। मंगलवति! मदनाजी! रत्नावती! शृंगारवती! पुष्पमाला! मृगलोचना! नीललोचना! आप लोग पुत्रोंके शोकको भूल जावो! उनको सान्त्वना देते हुए भरतेश्वर उनके केशपाशको बांध रहे हैं, शरीरपर हाथ फिराते हुए आंसुओंको पोंछ रहे हैं। मीठे २ बोल रहे हैं। एवं फिर उसी समय आलिंगन देते हैं। इस प्रकार उन स्त्रियोंको संतुष्ट करनेके लिए भरतेश्वरने हर तरहसे प्रयत्न किया। उन्होंने पुनः कहा कि देवियो! आप लोग दुःख क्यों करती हैं? यदि आप लोगोंने मेरी सेवा अच्छी तरहसे की तो मैं पुनः आपलोगोंको बच्चा दे दूंगा। आप लोग चिंता न करें। इसे सुनकर वे स्त्रियां हंसने लगी।

तब वे स्त्रिया सम्राट्से यह कहकर दूर खडी हुई कि देव! रोनेवालोंको हंसानेका गुण आपमें ही हमने देखा! जाने दीजिये। आपको हर समय हंसी ही सूझती है। बाहर जब आप जाते हैं तब बडे गंभीर बने रहते हैं। परंतु अंदर आनेपर यहांपर खेल कूद सूझती है। छोटे बच्चोंके जानेपर भी आपको दुःख नहीं होता है। आपका वचन ही इस बातको सूचित कर रहा है।

भरतेश्वर तब कहने लगे कि आपलोग दुःख कर रही थीं, इसलिए हसानेके लिए विनोदसे एक बात कह दी। दुःख तो मुझे भी होता है। परंतु अब रोनेसे होता क्या है ? आपलोगोंको एक एकको एक एक पुत्र वियोगका दुःख है। परन्तु मुझे तो एकदम सौ पुत्रोंके वियोगका दुःख है। मेरा दुःख अधिक है या आप लोगोंका ?। तथापि मैंने सहन करलिया है। दूसरी बात मेरी राणियोंको एक एक पुत्रके सिवाय दूसरा पुत्र हो ही नहीं सकता है, यह दुनियां जानती है। फिर भी उपकार व विनोदसे मैने यह बात कह दी, दुःख मत करो।

इस प्रकार रानियोंको संतुष्ट कर अपनी २ महलमें भेजा व भरतेश्वर स्वयं आनंदसे अपने समयको व्यतीत करने लगे।

सचमुचमें भरतेश्वर महान् पुण्यशाली हैं। वे दुःखमें भी सुखका अनुभव करते हैं। जंगलमें भी मंगल मानते हैं। यही तो विवेकीका कर्तव्य है। सर्व गुणसंपन्न सौ पुत्रोंके वियोगका वह दुःख सामान्य नहीं था। तथापि वस्तुस्वरूपको विचार कर उसे भूलना, भुलाना यह अतुल सामर्थ्य का ही प्रभाव है। इसीलिए वे सदा इस प्रकारकी भावना करते हैं किः—

हे चिदंबरपुरुष ! आप संसारके दुःखको दूर करनेवाले हैं। सद्गुणकी वृद्धि करनेवाले हैं। हे निर्मलज्ञानांशु ! मेरे हृदयमें अंशरूपमें तो आप विराजमान रहें।

हे सिद्धात्मन् ! अणिमादि महर्द्धियोंको तृणके समान समझकर आठ सद्गुणोंको प्राप्त करनेवाले लोकदर्पण ! आप मुझे सन्मति प्रदान कीजिए।

इति कुमारवियोगसंधिः।

—×—

अथ पंचैश्वर्यसंधिः।

राणियोंके दुःखको शांतकर भरतजी दीक्षित—पुत्रोंको देखनेके लिए दूसरे ही दिन कैलासपर्वत पर पहुंचे। एक पिताका हृदय कैसे रुक सकता है? युवराजको आदि लेकर बहुतसे पुत्रोंको साथमें लिया एवं पवन (आकाश) मार्गसे चलकर समवशरणमें पहुंचे। वहांपर द्वारपालक देवोंकी अनुमति लेकर अंदर प्रविष्ट हुए। भगवंतका दर्शन कर साष्टांग नमस्कार किया, एवं दुरितारि, दुःखसंहारि, पुरुनाथ, आपकी जयजयकार हो, इत्यादि शब्दोंसे अपने पुत्रोंके साथ स्तोत्र किया। मुनिराजोंकी वंदना करते हुए नूतन दीक्षित यतियोंकी भी वंदना की। उन मुनिराजोंने आशिर्वाद दिया। यहांपर दुःखका उद्रेक किसीको भी नहीं हुआ, आश्चर्य है। महलमें दुःख हुआ, परंतु समवसरणमें दुःखकी उत्पत्ति नहीं हुई। यह जिनमहिमा है। इसी प्रकार बुद्धिसागरमुनि, मेघेश्वरमुनिकी भी वहां उन्होंने वंदना की। उनको देखकर हर्षसे सम्राट्ने कहा कि संसारको आपने जीत लिया, धन्य है! तवं उन लोगोंने उत्तरमें कुछ भी न कहकर केवल आशिर्वाद दिया।

इसी प्रकार भक्तिसे सबकी वंदना कर भरतेश्वर अपने पुत्रोंके साथ आदिदेवके पासमें आकर बैठ गये।

भगवंतसे भरतेश्वरने हाथ जोडकर प्रार्थना की कि स्वामिन्! मोक्ष किसे कहते हैं व उसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। कृपया निरूपण कीजिये। तब भगवंतने अपने दिव्यनिनादसे निम्न प्रकार निरूपण किया।

मोक्षका अर्थ छुटकारा है। कर्मसे छुटकारा होकर जब यह केवल आत्मा ही रह जाता है उसें मोक्ष कहते हैं, कर्म कैसे अलग हो सकता है? उसे भी ज़रा सुनो! तीन शरीरोंके अंदर स्थित आत्मा संसारी है। जब तीन देहोंका अंत हो जाता है तब यह आत्मा मुक्त हो जाता है।

इस लिए शरीर भिन्न है, मैं भिन्न हूं। इस प्रकारके ध्यानका अभ्यास करनेपर शरीरनाश होकर मुक्तिकी प्राप्ति होती है। लकडीमें आग है, उसे घर्षण करनेपर उसी लकडीको जला देती है इसी प्रकार आत्मा ध्यानाग्निके द्वारा आत्माका निरीक्षण करे तो तीन शरीर जल जाते हैं। कर्म और तीन देह इन दोनोंका एक अर्थ है; धर्मका अर्थ निर्मल आत्मा है। धर्मको ग्रहण करो, कर्मका परित्याग करो। धर्मके ग्रहण करनेपर कर्म अपने आप दूर हो जाता है, एवं मोक्षपदकी प्राप्ति होती है।

बाह्यधर्म सभी व्यवहार या उपचारधर्म है। परन्तु आत्मा ही उत्कृष्ट धर्म है। बाह्यधर्मोंसे देहभोगादिककी प्राप्ति होती है। अंतरंग-धर्मसे देह नष्ट होकर मुक्तिकी प्राप्ति होती है। तीन रत्न अर्थात् रत्न-त्रयोंके ध्यान करना ही मेरी अभिन्नभक्ति है। तब हे भव्य! मेरा वैभव तुम्हे भी प्राप्त होता है, देखो! तुम अपनेसे ही अपनेको देखो। आकाशके समान आत्मा है। भूमीके समान यह शरीर है। आकाश भूमीके अंदर छिप गया है। क्या ही आश्चर्य है। इस प्रकार विचार करनेपर आत्मदर्शन होता है। चंचल चित्तको रोककर, दोनों आंखोंको मीचकर, निर्मल भाव दृष्टिके द्वारा बार २ देखनेपर देहके अंदर वह परमात्मा स्वच्छ प्रकाशके समान दीखता है। बैठे हुए ध्यान करनेपर शरीरमें बैठे हुए स्वच्छ प्रतिमाके समान आत्मा दीखता है। सोकर ध्यान करनेपर सोई हुई प्रतिमाके समान, एवं खडे होकर ध्यान करनेपर खडी हुई प्रतिमाके समान दीखता है पहिले पहिले बैठकर या खडे होकर ध्यानका अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास होनेके बाद बैठो, खडे हो जावो, चाहे सोवो वह आत्मदर्शन हो जायगा। शरीर कैसा भी क्यों न रहें परंतु आत्मामें लीन होना चाहिये तब वह देदीप्यमान आत्मा निकटभव्योंको देखनेको मिलता है।

हे भव्य! यही ज्ञानसार है। यही चारित्रसार है। यही सम्य-क्त्वसार है। यही उत्तम तपसार है, ध्यानसे बढकर कोई चीज नहीं।

इसे विश्वास करो। मतिज्ञान आदि केवलज्ञान पर्यंतके ज्ञान भी यही ध्यानरूप है। सिद्धोंके अष्टगुण भी इसीरूप है। विशेष क्या? सिद्ध स्वयं इस स्वरूपमें हैं। यह मेरी आज्ञा है। विश्वास करो। जैसे सूर्य-बिंबके ऊपरसे मेघाच्छादन हटता जाता है तैसे तैसे सूर्यका प्रकाश बढता जाता है, इसी प्रकार आत्मसूर्यसे कर्मावरण जैसे जैसे हटता जाता है वैसे ही मतिज्ञानादि ज्ञानोंमें निर्मलता बढती जाती है। तब ज्ञानके पांच भेद बनते हैं। जैसे मेघपटल पूर्णतः दूर होनेपर सूर्य पूर्ण उज्वल प्रकट होता है वैसे ही जब कि वह कर्ममेघ अशेषरूपसे हट जाता है। तब समस्त विश्वको जाननेमें समर्थ कैवल्य बोधकी (केवलज्ञान) प्राप्ति होती है। धूल वगैरेके हटनेपर दर्पण जैसा निर्मल होता है। उसी प्रकार ध्यानके बलसे यह आत्मयोगी जब नौ कर्मोंको दूर करता है तब केवल दर्शनकी प्राप्ति होती है। मुझे अपने आत्मासे बढकर कोई पदार्थ नहीं है, ऐसा जब दृढीभूत होकर यह भव्य आत्मामें मग्न होता है तब सप्त प्रकृतियोंका अभाव होता है। उस समय क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है।

जैसे पानीमें नमक घुल जाता है वैसे आत्मामें इस मनको तल्लीन करनेपर जब मोहनीय कर्मकी २१ प्रकृतियोंका अभाव होता है तब यथाख्यात चारित्र होता है। रोगके दूर होनेपर रोगी सामर्थ्यसंपन्न होता है। इसी प्रकार आत्मयोगी जब पंच अंतराय कर्मोंको दूर करता है तो तीन लोकको उठानेका सामर्थ्य प्राप्त करता है, वही अनंतवीर्य है। दो गोत्रकर्मोंके अभाव होनेपर वह आत्मा सिद्ध क्षेत्रपर पहुंच जाता है, उसके बाद वह इस भूप्रदेशपर गिरता पडता नहीं है। अगुरुलघुनामक महान् गुणको प्राप्त करता है। दो वेदनीय कर्मोंको जब यह ध्यानके बलसे छेदनीय बना लेता है तो अव्याबाध नामक गुणको प्राप्त करता है जिससे कि उसे किसीसे भी बाधा नहीं हो सकती है। जब यह आत्मा ध्यानके बलसे चार प्रकारके आयु कर्मको दूर करता है तब

अनंतसिद्धिको भी अपने प्रदेशमें स्थान देने योग्य अवगाहन गुणको प्राप्त करता है। इसी प्रकार नामकर्मकी ९३ प्रकृतियोंको ध्यानके बलसे जब यह नष्ट करता है तब पंचेंद्रियोंके लिए अगोदर अतिसूक्ष्म नामक गुणको प्राप्त करता है। इस प्रकार १४८ कर्मप्रकृतियोंको दूर करनेपर आत्मा संपूर्ण आत्मयोगको प्राप्त करता है, एवं लोकाग्रवासी बनता है। वही तो मोक्ष है। इसके सिवाय मोक्षप्राप्तिका अन्य मार्ग नहीं है।

हे भरत! मैं भी वहीं विहार करता हूं। अनंत सिद्ध यहीं रहते हैं वह ब्रह्मानंद है। इसे विश्वास करो। अनेक अर्थोंको छोडकर मुझे ही देखनेका यत्न करो! वही तुम्हे मुक्तिकी ओर ले जायगा। अनेक शास्त्रोंको अध्ययनकर, तपश्चर्याकर भी यदि ध्यानकी सिद्धि नहीं होती है तो मुक्ति नहीं है। यह सारभव्योंका कृत्य है। दूर भव्योंको इसकी प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए हे भव्य! ध्यानालंकारको धारण करो। आगे तुम्हे मुक्तिस्त्रीकी प्राप्ति होगी! आज पंचैश्वर्यकी प्राप्ती होगी। अब उसमें देरी नहीं है, बिलकुल समय निकट आगया है। अभी उन पंचसंपत्तियोंके नामको मैं क्यों कहूं। आत्मयोगको धारण करो। अभी हाल ही तुम्हे उन पंचसंपत्तियोंका दर्शन होगा। विचारकर आंख मीच-कर, ध्यानमें बैठो। इस प्रकार कहकर भगवंतने अपने दिव्यवाणीको रोक दिया। सम्राट्ने भी ' इच्छामि ' कहकर ध्यान करना प्रारंभ किया।

उत्तरीय वस्त्रको निकालकर कटिप्रदेशमें बांधलिया, एवं स्वयं सिद्धा-सनमें विराजमान होकर सुवर्णकी पुतलीके समान एकाग्रतासे बैठ गये।

वायुवोंको ब्रह्मरंध्रपर चढाया, आंखोंको मीचकर मनको आत्मामें लीन किया। अंदर प्रकाशका उदय हुआ। वस्त्र, आभरण आदि शरी-रमें थे, परंतु आत्मा नग्न था। हंस जिस प्रकार पानीको छोडकर दूधको ही ग्रहण करता है, उसी प्रकार परमहंस सम्राट्ने शरीरको छोडकर हंस [आत्मा] का ही ग्रहण किया। अत्यंत गुप्त तहखानेमें एक बिजलीकी

बत्ती जलनेपर जो हालत होती है वही आज सम्राट्की दशा है। उसे कोई नहीं जानते हैं, अंदर आत्मप्रकाश देदीप्यमान होरहा है। शायद भरतेश्वर उस समय उज्वल चांदनीके परिधानमें हैं, बिजलीको शरीरभर धारण किए हुए हैं। इतना ही क्यों, उत्तम मोती या मुक्तिकांताको आलिंगन दे रहे हैं। आकाशमें विहार करनेके समान सिद्धलोकमें विहार कर रहे हैं। इतना ही क्यों ? चाहे जिस सिद्धसे एकांतमें बातचीत कर रहे हैं। वहांपर बोली नहीं, मन नहीं, तन नहीं, इंद्रिय समूह नहीं, कर्मका लेश भी नहीं, केवल ज्योतिस्वरूप ज्ञान ही आत्मस्वरूपमें उस समय दिख रहा है। एक बार तो स्वच्छ चांदनीके समान आत्मा दीखता है, जब कर्मका अंश आता है तो फिर ढक जाता है, फिर प्रकाशित होता है।

इस प्रकार घासकी आगके समान वह आत्मा चमकता रहा है। तेज प्रकाश होनेपर शुक्लध्यान है। उसमें फिर कम ज्यादा नहीं होता है मंद प्रकाश धर्मध्यान है। उसमें कभी २ कम ज्यादा होता है। जब आत्मदर्शन होता है तब आनंद होता है। कर्मका पिंड एकदम झरने लगता है। बाहरके लोग उसे नहीं समझ सकते हैं। या तो भगवंत जानते हैं या वह स्वयं ध्याता जानता है। ज्ञानका अंश बढता जाता है। लाखके घरमें आग लगनेपर जैसे वह पिघल जाता है, उसी प्रकार ध्यानाग्निके बलसे तैजस कार्मण शरीर पिघलने लगे। क्षण–क्षणमें चित्प्रभा बढने लगी। ध्यानाग्निने तुरंत मतिज्ञानावरणीयको जलाया। तब भरतेश्वरको मतिज्ञानसंपत्तिकी प्राप्ति हुई अर्थात् सातिशय मतिज्ञानकी प्राप्ति हुई। परोपदेश व शास्त्रकी सहायताके विना ही आत्मामें ही पदार्थोंके निर्णयकी सामर्थ्य प्राप्त होती है उसे सातिशय मतिज्ञान कहते हैं। वह सुज्ञान उन्हें प्राप्त हुआ। मतिज्ञानके आवरणको जलानेके बाद वह ध्यानरूपी आग श्रुतावरणमें लग गई। तत्काल ही श्रुतावरण जल गया। सातिशय श्रुतज्ञानकी प्राप्ति हुई। मतिज्ञानपूर्वक शास्त्रोंके अध्य-

31

यनसे पदार्थोंको विशेषतया जानना यह श्रुतज्ञान है, वह चतुर्दश पूर्वके रूपमें है। वही ज्ञान आत्मयोगके बलसे सम्राट् को होगया। उसके बाद वह ध्यानाग्नि अवधिदर्शनावरण अवधिज्ञानावरणपर लग गई तुरंत दोनों जलकर खाक हुए। सम्राट्को अवधिज्ञान व अवधिदर्शनकी प्राप्ति हुई। अवधिज्ञानका अर्थ सीमिति ज्ञान है। उससे समस्त लोकको जान नहीं सकते हैं। इसलिए उनको उस समय सीमित ज्ञान दर्शनकी प्राप्ति हुई। पिछले कुछ भवोंको व आगामी कुछ भवोंको वे उसके बलसे जान सकते हैं तो ध्यानसे बढकर कोई तप है? अब मनःपर्यय ज्ञान है, परन्तु वह गृहस्थोंको प्राप्त नहीं होता है। तथापि मतिज्ञानादि चार ज्ञान क्षायिक नहीं है। क्षायोपशमिक हैं। मार्गमें पडे हुए पुराने घासोंको जैसा जलाते हैं उस प्रकार इन चार ज्ञानोंके आवरणको जलानेपर चार ज्ञानोंकी प्राप्ति होती है। परन्तु जब पांचवां ज्ञान जब प्राप्त होता है तभी यथार्थ आत्मसिद्धि होती है। आवरणके क्षयके निमित्तसे ये चार ज्ञान क्षायिक कहला सकते हैं। परंतु वस्तुतः क्षायिक नहीं हैं। परंतु केवलज्ञान स्वयं क्षायिक ज्ञान है। अब इनका वर्णन रहने दो। वह ध्यानाग्नि अब मोहनीय कर्मको लगी। वहांपर आत्माके ध्रौव्यगुणको दूर करनेवाली सात प्रकृतियोंको उसने जलाना प्रारंभ किया। उन सप्त प्रकृतियोंको ऐसा जलाया कि फिर ऊपर उठ ही न सके। अनंतानुबंधिकषाय चार, मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, व सम्यक्मिथ्यात्व इस प्रकार सप्तप्रकृतियोंको उसने जलाया। सिद्ध व अरहंतके सम्यक्त्वसे वह कुछ भी कम नहीं है। उनकी वृद्धिकी बराबरी करनेवाला वह सम्यक्त्व है। उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। उसकी प्राप्ति भरतेश्वरको हुई। आत्मासे बढकर कोई पदार्थ नहीं है। आत्मासे ही आत्माकी मुक्ति होती है, इस प्रकार आत्मसंपत्तिमे वह भरतयोगी मग्न हुए। अब अभ्युदयसिद्धिका मार्ग उनको सरल बन गया। इस प्रकार मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिदर्शन, अवधिज्ञान व क्षायिक सम्यक्त्वके रूपमें भरतेश्वरको पंचैश्व-

र्यकी प्राप्ति हुई। क्या जगत्पति भगवान् का कथन अन्यथा होसकता है? ग्यारह कर्मोंको जलाकर पंचैश्वर्य प्राप्त किया। अब शेष कर्मोंको इतने ही समयमें मैं दूर करूंगा यह भी सम्राटने उसी समय जान लिया। आजके लिए इतना ही लाभ है, आगे फिर कमी देखेंगे, इस विचारसे हृन्मंदिरके अमल सच्चिदानंदकी वंदनाकर भरतेश्वरने आनंदसे आंखे खोल दी व उठकर खडे होगये। जय! जय! त्रिभुवननाथ! मेरे स्वामी! आप जयवंत रहें। आपकी कृपासे कर्मोंको जीतकर पंचैश्वर्यको प्राप्त किया। इस प्रकार कहते हुए भरतेश्वरने भगवंतके चरणोंमें मस्तक रक्खा। उसी समय करोडों देववाद्य बजने लगे। देवगण पुष्पवृष्टि करने लगे एवं समवशरणमें सर्वत्र जयजयकार होने लगा। अंतरंग आत्मकलाके बढनेपर शरीरमे भी नवीन कांती बढ गई। उसे देखकर कुलपुत्र आनंदसे नृत्य करने लगे एवं आदिप्रभुके चरणोंमें नमस्कार किया। हे भरतराजेंद्र! भव्यांबुजभास्कर! परमेशाग्रकुमार! परमात्मरसिक कर्मारि! तुम जयवंत रहो। इस प्रकार वेत्रधर देव भरतेश्वरकी प्रशंसा करने लगे।

भगवान् अरहंतको पुनः साष्टांग नमस्कार कर मुनियोंकी वंदनाकर एवं शेष सबको यथा योग्य बोलते हुए भरतेश्वर अपने पुत्रोंके साथ नगरकी ओर रवाना हुए। तब सब लोग कह रहे थे कि शाहबास, राजन्! जीत लिया। तनको दंडित न कर मनको दंडित करनेवाले एवं अपने आत्मामें मग्न होकर कर्मोंको जीतनेवाले भरतेश्वर अब अपने नगरकी ओर जारहे हैं। वर्षों रटकर ग्रंथोंके पाठ करते हुए मुंह सुखानेवाले शास्त्रियोंकी वृत्तिपर हंसते हुए व क्षणभरमें आगमसमुद्रके पार पहुंचनेवाले सम्राट् जारहे हैं। बहुत दिनतक घोर तपश्चर्या न कर एवं दीर्घकाल तक चित्तरोध न करते हुए ही अवधिज्ञानको प्राप्त करनेवाले भरतेश्वर जारहे हैं। मायाको दूरकर, शरीरमें स्थित आत्मामें श्रद्धा करते हुए क्षायिक सम्यक्त्वको पालेवाले भरतेश्वर अपने नगरकी ओर जारहे हैं। शरीर व मस्तकमें वस्त्र व आभूषणके होनेपर भी आत्माको

नग्न कर पंचैश्वर्यको प्राप्त करनेवाले एवं कालकर्मके विजयी राजा जारहे हैं। नूतन दीक्षित अपने पुत्रोंको देखनेके लिए गये हुए अपितु साक्षात् आत्माको देखकर तत्क्षण पंचसंपत्तिको पाकर आये, ऐसे अतिदक्ष सम्राट् जा रहे हैं। ध्यान ही बडे भारी तपश्चर्या है, वह योगीको भी हो सकता है, गृहस्थको भी हो सकता है। इसके लिए मैं ही दृष्टांत-स्वरूप हूं। इस प्रकार लोकके सामने डिंडोरा पीटते हुए भरतेश्वर जारहे हैं। अपने आत्माको जाननेवाला लोकको जान सकता है। अपनेको जाननेवाले ही यथार्थ तपस्वी हैं। इस बातको सब लोग मुझे देखकर विश्वास करें, यह स्पष्ट करते हुए वह नरनाथ जारहे हैं। अनेक विमानोंमें चढकर पुत्र व गणबद्धदेव भी उनके साथ जारहे हैं।

आनंदके साथ धीरे २ जब सम्राट्का विमान चल रहा था, तब युवराजने कुछ सोचकर भरतेश्वरसे न कहते हुए कुछ लोगोंके साथ आगे प्रस्थान किया एवं बिजलीके समान अयोध्यानगरीमें पहुंचे व वहांपर मंत्री मित्रोंको पंचैश्वर्यकी प्राप्तिका समाचार दिया। सबको आनंदसे रोमांच हुआ। नगरमें आनंदभेरी बजाई गई। सर्वत्र श्रृंगार किया गया, ध्वज पताकादि सर्वत्र फडकने लगे। एवं अनेक हाथी घोडा रथ वगैरेको लेकर सम्राट्के स्वागतके लिए युवराज आया। भरतेश्वरको सामने पहुंचकर युवराजने भेंट चढाया व नमस्कार किया। उसे देखकर सर्व कुमारोंने भी वैसा ही किया। इसी प्रकार राजपुत्र, मंत्रि, मित्रोंने भी अनेक भेंट चढाकर चक्रवर्तिका अभिनंदन किया। सम्राट्ने बहुत वैभवके साथ नगरमें प्रवेश किया। स्तुति पाठकोंकी स्तुति, कवियोंकी कृति, विद्वानोंकी श्रुति और ब्राह्मणोंका आशिर्वाद आदिको सुनते हुए आनंदसे भरतेश्वर अयोध्यामें आ रहे हैं। इसी प्रकार पाठक, मल्ल, वेश्यायें, वेत्रधर आदिकी क्रीडाको देखते हुए वे जारहे हैं। नगरमें अट्टालिकावोंपर चढकर स्त्रियां भरतेशके वैभवको देख रही हैं। परंतु चक्रवर्तिकी दृष्टि उनकी ओर नहीं है। महलमें

पहुंचनेपर बाहरके दीवान खानेसे ही सब पुत्र, मित्र, मंत्री आदिको अपने स्थानको रवाना किया एवं स्वयं महलकी ओर चले गये। वहांपर राणियोंने बहुत आनंदसे स्वागत किया। एवं भक्तिसे रत्नकी आरती उतारी। अपने २ कंठाभरणको निकालकर भरतेश्वरके चरणोंमें रक्खा। पट्टराणीने भी पतिका योग्य सत्कार किया। भरतेश्वरने भी पंचैश्वर्यकी प्राप्तिका सर्व वृत्तांत कहते हुए आनंदसे वह दिन बिताया।

भरतेशके भाग्यका क्या वर्णन करे?। एक गृहस्थ होते हुए बडे २ यतियोंके लिए भी कष्टसाध्य संपदाको प्राप्त करें यह कोई सामान्य विषय नहीं है। नूतन दीक्षित पुत्रोंको देखनेके लिए समवसरणमें पहुंचते हैं, वहांपर ध्यानके बलसे विशिष्ट कर्मनिर्जरा करते हैं। एवं सातिशय पंचसंपत्तिको प्राप्त करते हैं। यह सब बातें उनके महापुरुषत्वको व्यक्त करती हैं। उनका विश्वास है कि आत्मयोगके रहनेपर किसी भी वैभवकी कमी नहीं हैं। इसीलिए वे सदा इस प्रकारकी भावना करते हैं कि—

हे चिदंबरपुरुष! मेरे पास आपके रहनेपर संपत्ति, सुख सौंदर्य, श्रृंगार आदि किस बातकी कमी हो सकती है, इसलिए आप मेरे अंतरंगमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! अच्युतानंद! सद्गुणवृंद, चंद्रमरीच्यमृतांशु प्रकाश! सुच्युतकर्म! गुरुदेव, हे निर्वाच्य! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इसी भावनाका फल है कि उन्हें नित्य नये वैभवकी प्राप्ति होती है।

इति पंचैश्वर्य संधिः।

—०—

अथ तीर्थेशपूजा संधिः

भरतेश्वरने पंचसंपत्तिको प्राप्त करनेके बाद सेनाधिपति मेघेशके पुत्रको बुलवाया। अपने मंत्रि, मित्र व राजावोंके सामने उसका सन्मान किया। एवं आनंदके साथ कहने लगे कि इस बालकके पिताको जयकुमार, अयोध्यांक इस प्रकारके नाम थे। परन्तु उसकी वीरतासे प्रसन्न होकर मैंने उसे वीराग्रणि उपाधिके साथ मेघेश्वर नामाभिधान किया था। अब वह जब दीक्षा लेकर चला गया है तो यही बालक अपने लिए उसके स्थानमें है। इसके पिताको बादमें दिये हुए नूतन नामकी जरूरत नहीं। इसे पुरातन नाम ही रहने दो। इसे आजसे अयोध्यांक कहेंगे। उस पुत्रसे यह भी कहा कि 'बालक! तुम्हारी सेवाको देखकर पितासे भी बढकर तुम्हारा वैभव बना देंगे। इस समय तुम पिताके भाग्यमें रहो'। साथमें यह भी कहा कि जबतक यह उमरमें न आवे तबतक मेघेश्वरके द्वारा नियत वीर ही सेनापतिका कार्य करें। परंतु मैं विधिपूर्वक सेनापतिका पट्ट इस बालकको बांधता हूं। इस प्रकार कहते हुए उस बालकका सन्मान किया। पहिलेका अनंतवीर्य नाम अब चला गया। अब उसे लोग अयोध्यांक कहते हैं। उस दिनसे वह बालक आनंदसे बढकर यौवनवेदीपर पैर रखने लगा। 'राजाके हाथ लगनेपर तृण भी पर्वत बन जाता है' यह लोकोक्ति असत्य कैसे हो सकती है? वह बालक सम्राट्की सेनाके अधिपति बना, पुण्यवंतोंके स्पर्शसे मट्टी भी सोना बन जाती है।

आनंदके साथ कुछ काल व्यतीत हुए। एक दिन रात्रीके अंतिम प्रहरकी बात है। भरतेश्वरने एक स्वप्न देखा जिसमें उन्होंने मेरु पर्वत को लोकाग्र प्रदेशपर उडते जानेका दृश्य देखा। 'श्री हंसनाथ' कहते हुए भरतेश्वर पलंगसे उठे। पासमें सोई हुई पट्टरानी भी घबराकर उठी व कंपित हो रही थी। कारण उसने उसी समय स्वप्नमें भरतेश्वरको रोते हुए देखा था। वह सुंदरी भयभीत होकर कहने लगी

कि स्वामिन् ! मैंने बडे भारी कष्टदायक [अशुभ] स्वप्नको देखा। तब उत्तरमें भरतेश्वरने कहा कि देवी ! घबरावो मत ! मैंने भी आज एक विचित्र स्वप्न देखा है। यह कहते हुए तत्क्षण उन्होंने अवधिज्ञानसे विचार किया व कहनेलगे कि देवी ! वृषभेश्वर अब शीघ्र ही मुक्ति जानेवाले हैं। इसकी यह सूचना है। तब राणीने कहा कि हमें अब कौन शरण है। उत्तरमें भरतेश्वर कहते हैं कि हमे अपना हंसनाथ (परमात्मा) ही शरण है। उनके समान ही अपनेको भी मुक्ति पहुंचना चाहिये। यह संसार ही एक स्वप्न है। इसलिए उसमें ऐसे स्वप्न पडे तो घबरानेकी क्या जरूरत है ? इस प्रकार पट्टरानीको सांत्वना देते हुए कैलासपर्वतके प्रति अवधिदर्शनका प्रयोग किया। वहांपर नरनाथ भरतेश्वरने प्रत्यक्ष पुरुनाथका दर्शन किया। अब आदिप्रभु समवशरणका त्याग कर चुके हैं। उसी पर्वतपर एक निर्मल-शिलातलपर विराजमान हैं। पूर्वदिशाकी ओर मुख बनाकर सिद्धासनमें विराजमान हैं। भरतेश्वरने समझ लिया कि अब चौदह दिनमें ये मुक्ति सिधारेंगे। उसी समय सभामें पहुंचकर सबको वह समाचार पहुंचाया। युवराज, मंत्री, सेनापति, व गृहपतिने भी रात्रिको एक एक स्वप्न देखा था, उन्होने भी सभामें निवेदन किया। सम्राट्ने कहा कि इन सब स्वप्नोंमे आदिप्रभुके मोक्ष जानेकी सूचना है। इस प्रकार भरतेश्वर बोल ही रहे थे, इतनेमें विमानमार्गसे आनंद नामक एक विद्याधर आया। उन्होने वही समाचार दिया, तब भरतेश्वरके ज्ञानके प्रति लोगोने आश्चर्य किया।

सम्राट्ने सर्व देशोमें तुरंत खलीता भेजा कि अब भगवंतकी पूजा महावैभवसे चक्रवर्ति करेंगे। इसलिए सब लोग अपने राज्यसे उत्तमोत्तम पूजाद्रव्योंको लेकर आवें। मेरी बहिने अपने नगरमें ही रहें। गंगादेव सिंधुदेव आवें। नमिराज, विनिमिराज, भानुराज आदि सभी आवें। मेरे दामाद सभी कैलास पर्वतपर पहुंचे। मेरी पुत्रियां यहांपर महलमें आकर

रहें। इसप्रकार सबको पत्र भेजकर स्वयं महलमें प्रवेश कर गये। वहांपर राणियोंसे कहा कि मैं वहांपर पूजा करूंगा, आपलोग यहांसे सामग्री व आरती इत्यादिको बनाकर भेजती रहें। इसीसे आप लोगोंको विशिष्टपुण्यकी प्राप्ति होगी। इस प्रकार स्त्रियोंको नियत किया। आनंद व प्रस्थानकी भेरी बजाई गई। कैलासपर्वतके कुछ दूरपर अपनी सारी सेनाका मुकाम कराया। स्वयं अपने पुत्र, मित्र, राजा व ब्राह्मण आदि आप्तबंधुओंको लेकर विमान मार्गसे कैलासकी ओर चले गए। कैलास पर्वतके तटमें कुछ ठहरकर सम्राटने कुछ विचार किया। निश्चय किया कि दिनमें वैभवसे पूजा करेंगे एवं रात्रिके समय रथोत्सव करायेंगे। इस विचारसे विश्वकर्मको आज्ञा दी कि रथोंकी तैयारी करो। इसी प्रकार उचित सामग्री आदि मंगाना, रथोंका शृंगार करना, सबको समाचार देना, आदि कार्य वहां उपस्थित राजाओंको सौंप दिया। विद्याधरोंको विमान भेजनेका कार्य सेनापतिको सौंप दिया। गंगाके तटमें अपने लिए एकभुक्ति रहेगी यह सूचना रसोईयाको दी गई। एवं आई हुई सर्व जनताको भोजनादिसे तृप्त करनेका कार्य गृहपतिको सौंपा गया। मुनियोंके आहारदानका प्रबंध एवं आगत राजावोंका विनय व समादर सत्कार "हे युवराज! तुम्हारे लिए सौंपता हूं मुझे पूजाकी चिंता है। तुम इन कार्योंमें सावधान रहना" इस प्रकार अर्ककीर्तीको नियत किया वीराग्रणी दामाद व राजपुत्रोंके साथ पंक्तिभोजन व उनका आदर सत्कार करनेका कार्य महाबलकुमार को देदिया गया। ब्राह्मण भोजन व श्रीबलि नैवेद्यकी चिंता बुद्धिसागरको सौंपी गई। आई हुई सर्वजनताओंके योगक्षेमका विचार मागध व्यंतरको दिया गया। अयोध्यानगरीमें विमानसे पहुंचकर रोज आरती लानेका कार्य शूर वीर विश्वस्तजनोंको दिया गया। इतर महाजनोंको यह आदेश दिया कि मैं भगवंतकी पूजामें लग जाऊंगा। आप लोग व्यंतर, विद्याधर, राजावोंके साथ मुझे पूजन सामग्री देते जावें। चिंतित पदार्थको देनेवाले चिंतामणि

रत्नको संतोषसे आदिराजकुमारके हातमें सौंप दिया। विविध इच्छित पदार्थको प्रदान करनेवाले नवनिधियोंको वृषभराज व हंसराजके वशमें देदिया। शेष पुत्र व दामादोंको चामर लेकर खडे होनेका आदेश दिया। इसप्रकार पूजासमारंभकी बाह्य सर्वव्यवस्था कर सम्राट् ऊपर पर्वतपर चले गए।

समवशरण आकाश प्रदेशमें था। किसी मंदिरसे देवके चले जानेपर मंदिरकी जो हालत होती है वही दशा उस समय उसकी थी। जगदीश आदिप्रभु पर्वतपर अलग विराजमान थे, जैसे कोई निस्पृहयोगी घरके जंजालको छोडकर एकांतवास करता हो। इसी प्रकार अन्य केवलियोंकी गंधकुटी भी आकाशमें इधर उधर दिख रही थी। द्वादशगण आश्चर्यके साथ भगवंतकी ओर देख रहे थे। सिद्धशिलाके समान एक स्वच्छशिलाके ऊपर भगवंत बद्धपल्यंकासनसे विराजमान हैं। सिद्धके समान योगमें मग्न भगवंतको देखकर ' जिनसिद्ध ' कहते हुए भरतेश्वरने नमस्कार किया। भगवंतके सामने दुःख उत्पन्न नहीं होता है। इसलिए चक्रवर्तिको कोई दुःख नहीं हुआ। भगवंतको साष्टांग नमस्कार कर सार्वभौमने पूजासमारंभको प्रारंभ किया। एक दो दिन पूजा समारंभ चला तो आसपासके व्यंतर विद्याधर देव वगैरे सभी अनर्घ्यसामग्रियोंको साथ लेकर आये। बडे भारी यात्रा भर गई।

विशेष क्या ? पूर्वसमुद्राधिपति मागधामरको लेकर हिमवंत तकके व्यंतर देव व अन्य विद्याधर आकर भरतेश्वरकी पूजामे सामिल हुए। भरतेश्वरको वे पूजा सामग्री तय्यार कर देरहे थे। सम्राट् भी प्रसन्न हुए। नमि, विनमि गंगादेव, सिंधुदेव, भानुराज व विमलराजने यह अपेक्षा की कि हम भी पूजा करेंगे। तब भरतेश्वरने सम्मति देकर अपने साथ ही उनको भी पूजामें शामिल कर लिया।

शुचिके साथ चक्रवर्तिने अपने कोटाकोटिरूप बनालिए। पर्वतपर सर्वत्र भरतेश्वर दृष्टिगोचर होरहे हैं। फिर व्यंतर विद्याधर आदि

जो सर्व पदार्थ देरहे हैं, उनसे वैभवसे पूजा कर रहे हैं उसका क्या वर्णन करें ? धरा, गिरी व आकाशमें सर्व देव खडे होकर जयजयकार कर रहे हैं। साडेतीन करोड वाद्य तो चक्रवर्तिके, भगवंतकी सेवामे देवेंद्रके द्वारा नियोजित साडेबारह करोड वाद्य इस समय एकदम बजने लगे। उस संभ्रमका क्या वर्णन किया जासकता है ? अंबरचरि गंधर्वकन्यायें, नागकन्यायें, आकाशमें नृत्य कर रही थीं। उस समय जंबूद्वीपमें सबको आश्चर्य होरहा था। उस पूजा समारंभका क्या वर्णन किया जासकता है ? सबसे पहिले मंत्रोच्चारणपूर्वक सम्राट्ने जलधाराका समर्पण किया। तदनंतर सुगंधयुक्त चंदनको समर्पण किया। चंदन कोई छोटी मोटी कटोरीमें नहीं था। वह पर्वत चंदनमें डूब गया। अब वह कैलास पर्वत नहीं रहा, मलयज पर्वत (चंदनपर्वत) बन गया। अगणित रूपको धारण किये हुए भरतेश्वर अपने विशाल दोनों हाथोंसे चंदनको लेकर जब अर्चन कर रहे थे वह पर्वतसे जमीनमें भी उतरकर गया, जहां देखो वहां सुगंध ही सुगंध है। जब कि अगणित देवगण जय- जयकार कर रहे थे तब भरतेश्वरने अपने विशाल हाथोंसे उत्तम अक्ष- तावोंको अर्पण कर रहे थे। उस समय वहांपर तंडुल पर्वतका निर्माण हुआ। सुरसिद्ध यक्ष जयजयकार कर रहे हैं, भरतेश्वर सुगंधयुक्त पुष्पोंको लेकर जब अर्पण कर रहे थे तब वहांपर पुष्पपर्वत बन गया। अत्यंत सुगंध व सौंदर्यसे युक्त नैवेद्य, भक्ष्यको जिस समय भरतेश्वरने अर्पण किया तो वह कैलासपर्वत पंचवर्णका बन गया, आश्चर्य है। दीपार्चनमें राणियोंके द्वारा प्रेषित आरतियोंको समर्पण किया, इसी प्रकार यह उल्लेख करते हुए कि यह बहुओंके द्वारा प्रेषित आरतियां हैं, यह पुत्रियोंके द्वारा प्रेषित आरतियां हैं। इस प्रकार अपने अवधिज्ञानसे जानते हुए हसते हुए संतोषसे अगणित आरतियोंको समर्पण किया। सम्राटकी पुत्रियां ३२ हजार हैं। ९६ हजार रानियां हैं। इसी प्रकार हजारो बहुए हैं। सबकी ओरसे आरतियां आई थी। बहुत भक्तिसे जब

धूपका अर्पण किया, वह धूपका धून जिस समय जिनेंद्रकी कांतिसे युक्त होकर आकाशमें जारहा था तो लोग यह समझ रहे थे कि स्वर्गका यह सुवर्ण सोपान है। सम्राटके करतलमें उत्पन्न एक रत्नलता इंद्रपुरीमें पहुंचरही हो उस प्रकार वह धूमराजि मालुम हो रही थी। फलोंको जिस समय उन्होंने अर्पण किया, उस समय अनेक पर्वत ही तयार हुए। बडे २ गुच्छ व फलोंसे युक्त उत्तम फणोंको सम्राटने अर्पण किया, देवगण उस समय जयजयकार कर रहे थे। वहां जैसे २ फल बढते गये व्यंतर उसे गंगामें निकाल निकालकर डाल रहे थे। पुनः अर्चन करनेके लिए उनके हाथमें नवीन फल मिल रहे थे। बहुत आनंदके साथ पूजा होरही है। भरतेश्वरके ६४ हजार पुत्र हैं। उनमें दीक्षा लेकर जो गये हैं उनको छोडकर बाकीके कुमार चामर लेकर भयभक्ति व आनंदसे डोल रहे हैं। इसी प्रकार भरतेश्वरके दामाद ३२ हजार हैं। वे भी इनके साथ भक्तिसे चामर डुला रहे हैं। इस प्रकार कुछ कम एक लाख चामरको उस समय सम्राटने भगवंतके पूजा समारंभमें डुलाया। इसी प्रकार भरतेश्वरके मित्र भी अनेक विधसे पूजासमारंभमें योग देरहे हैं।

फल पूजाके बाद रत्नसुवर्णादिकके द्वारा निर्मित फलपर्वतके समान करोडों अर्घ्योंका अवतरण किया। देवगण जयजयकार कर रहे थे। भगवंतको अर्घ्य उन्होंने कितना चढाया, इसको समझनेके लिए यही पर्याप्त है कि उन अर्घ्योंके ऊपर जो कर्पूर जल रहे थे, उनको देखनेपर कर्पूरपर्वतकी ही पंक्तियोंको ही आग लग गई हो ऐसा मालुम होरहा था। सुंदर मंत्रपाठको उच्चारण करते हुए रत्नकलशोंसे समस्त विश्वको शांति हो इस उद्देशसे भरतेश्वरने शांतिधारा की। इसी प्रकार रत्न, सुवर्ण, चांदी आदिके द्वारा बने हुए एवं सुगंधित पुष्पोंसे पुष्पवृष्टि की, उस समय देवगण जयजयकार कर रहे थे। इसी प्रकार रत्नवृष्टि की गई। बादमें द्वादशगण अपने पुत्र मित्रोंके साथ बहुत आनंदसे आदिनाथ

स्वामीको तीन प्रदक्षिणा दी। चक्रवर्तिके भक्तिप्रमोदको देखकर देवगण प्रसन्न होरहे थे।

जिनेंद्रकी वंदना कर, योगिगण, ब्राह्मण, नरेंद्रवर्ग आदि सबका यथायोग्य सत्कार कर सम्राट आनंदित हुए। सबको भोजनसे तृप्त कर "हमें पूजाकी चिंता है, आपको आपका भानजा योग्य सत्कार कर रहा है। इस व्रतको मैं जानता हूं" इस प्रकार नमिराज आदि बांधवोंके साथ सम्राटने कहा। युवराज, बाहुबलीके पुत्र महाबल, गृहपति आदियोंने सबकी इच्छाको जानते हुए सबका सत्कार किया। इसी प्रकार मानव, सुर, व्यंतरादिकोंके साथ योग्य विनय व्यवहार कर स्वयं सार्वभौम गंगा तटमें पहुंचे, वहांपर अपने पुत्रोंके साथ एक-भुक्ति की। दिन तो इस प्रकार आनंदसे व्यतीत हुआ। रात्री भी भगवंतकी देहकांतिसे दिनके समान ही थी। पहिलेसे निश्चित समय सब लोग एकत्रित हुए।

अवधिज्ञानधारी तो सब जानते ही थे, बाकीके लोगोंको सूचना दी गई। सब लोग रथोत्सवके लिए उपस्थित हुए। वहांपर कैलासको लगकर अत्यंत सुंदर आठ रथ खडे हैं। मालुम होते हैं कि आठ पर्वत ही हों, देदीप्यमान पंचरत्नके कलश, प्रकाशमान नवरत्नकी मालावोंसे युक्त सुवर्णके रथ, प्रकाशके पुंजके समान थे। उनको देखनेपर कल्पवृक्ष, या सुरगिरीके समान मालुम होते थे। मेरुपर्वतके चारों ओरसे आठ पर्वत हैं, उनको तिरस्कृत करते हुए कैलासको लगकर ये आठ पर्वत शोभित हो रहे हैं बहुत ही सौंदर्यसे युक्त हैं।

अगणित वाद्योंकी घोषणा हुई। भरतेश्वरके इशारेको पाकर वे रथ आठ दिशावोंमें चले गये। इंद्र, अग्नि, यम, नैरुत्य, वरुण, वायव्य, कुबेर, ईशान, इस प्रकार आठ दिशावोंकी ओर आठ रथ चलाये गये। वे इस बातको कह रहे थे कि भगवंत आठ कर्मोंको नष्ट कर आठगु-णोंको प्राप्त करनेवाले हैं। इसकी सूचना भरतेश्वरने आठ दिशावोंको

भेज दी है। आकाशसे देवगण पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। इसके साथ ही रथोंके चक्रका शब्द होरहा है।

इस बीचमें व्यंतर व विद्याधरोंने भी अगणित - सुंदररथोंका निर्माण किया था। वे भरतेश्वरकी अनुमतिकी प्रतीक्षामें थे। उसे जानकर भरतेश्वने उन्हे निश्चिंत बनाया। देवगण! मेरे रथ जमीनपर चले, आप लोगोंके रथोंको आकाशपर चलाईये। उत्सवमें प्रभावना जितने अधिक प्रमाणसे हो उतना ही उत्तम है। आप लोग कौन हैं? मेरे ही तो हैं। षट्खंडके भीतर रहनेवाले हैं। इसलिए आनंदसे चलाईये। मुझे इसमें हर्ष है। इस प्रकार कहनेपर सबको आनंद हुआ। देवदुंदुभिके साथ देवनृत्य होने लगा, तब गंगादेव और सिंधुदेवके रथ चले गये। इसी प्रकार विद्याधरियोंके नृत्यवैभवके साथ नमिराज व विनमिराजके रथ चले गये, सब लोग जयजयकार कर रहे हैं। गणबद्ध देवोंके रत्नरथ जाने लगे। इसी प्रकार महावैभवसे बरतनु, प्रभासेंद्र, विजयार्धदेवके रथ जाने लगे। हिमवंत देवका रथ प्रत्यक्ष हिमवान पर्वतके समान ही मालुम होरहा था। तदनंतर कृतमाल नाट्यमाल देवके रथ चलेगये। इस प्रकार बारह मित्रोंके रथोत्सव होनेपर सम्राट्ने उनको बुलाया व हर्षसे आलिंगन दिया एवं उनको अनेक रत्नादिक प्रदानकर संतुष्ट किया। तब उन मागधादि व्यंतरमुख्योने सम्राट्के चरणमें नमस्कार किया एवं कहने लगे कि राजन्! आपके ही प्रसादसे हमारी महत्ता है। बडे हाथी आगे बढने पर उसके पीछें बाकीके छोटे छोटे हाथी जाते हैं, उसी प्रकार आपके साथ हम भी आत्मसुखका अनुभव करते हैं। इस प्रकार प्रतिनित्य नवीन रथ, नवीन पूजा, नवीन नृत्य एवं नवीन रस रसायनका भोजन, इस प्रकार उस यात्रासागरको नवीन नवीन आनंद! इस प्रकार चौदह दिन व्यतीत हुए।

अंतिम दिनके तीसरे प्रहरमें उपस्थित सर्वप्रजावोंके सत्कारके लिए सार्वभौमने संघपूजाकी व्यवस्था की। उसका क्या वर्णन करें! चौरासी

गणधरोंको भक्तिसे नमस्कार कर उनकी अनुमतिसे चतुस्संघको भरतेश्वरने सन्मानित किया। जपसर, पुस्तक, पिंछ, आदि उपकरण मुनियोंको वस्त्रादि अर्जिकाओंको एवं व्रतियोंको प्रदान कर सन्मान किया। इसी प्रकार ब्राम्हणोंको सुवर्ण, रत्न व दिव्यवस्त्रको प्रदान करते हुए करोडों ब्राम्हणदंपतियोंका सन्मान किया। आनंदको प्राप्त ब्राम्हण भरतेश्वरकी शुभकांक्षा करते हुए आशीर्वाद दे रहे हैं। परदारसहोदर हमारे राजा अपने पुत्रकलत्रोंके साथ हजारों वर्ष जीवें, इस प्रकार ब्राम्हणस्त्रियां आशीर्वाद दे रही हैं। इसी प्रकार मागधादि व्यंतरोंका भी पुनः सन्मान किया। चिंतामणि रत्नके होनेपर किस बातकी कमी है। इसी प्रकार गंगादेव, सिंधुदेव, नमि, विनमि आदिका भी रत्नाभरणोंसे सन्मान किया। शेष बचे हुए दामाद, राजपुत्रादिके सन्मानके लिए अपने पुत्रोंको नियत किया। भरतेश्वरने उनसे कहा कि दान, पूजा स्वहस्तसे होनी चाहिये, इसलिए आप लोग मेरे प्रतिनिधि हों। सबका यथायोग्य सन्मान करो। पुत्रोंने भी आनंदसें इस कार्यको स्वीकार किया। आकाशमें कई विमान लेकर खडे हुए एवं ऊपरसे सबको वस्त्ररत्नादि प्रदान करने लगे। दाताके हाथ ऊपर पात्रके हाथ नीचे, यह लोकोक्ति उस समय चरितार्थ हुई। भूमिपर खडे हुए जो हाथ पसार रहे थे, सबको उन्होने इच्छित पदार्थ प्रदान किया। समुद्रके जहाजके समान उनका विमान आकाशमें सर्वत्र जारहा है एवं लोगोंको किमिच्छक दानसे तृप्त कर रहा है। अनेक प्रकारके दिव्य वस्त्रोंकी बरसात हो रही है। कल्पवृक्ष स्वयं ऊपरसे उतर रहा हो उस प्रकार वे इच्छित पदार्थोंकी वृष्टि कर रहे हैं। आदिराजके हाथमें जो चिंतामणि रत्न था वह चिंतित पदार्थको प्रदान करनेवाला है। फिर किस बातकी चिंता है। उस विशाल प्रजा समूहको वे विनोदमात्रसे संतुष्ट कर रहे थे। दो पुत्रोंके वश नवनिधियोंको सार्वभौमने किया था। वे तो इच्छित पदार्थको तत्क्षण देते हैं। अतः निमिषमात्रसे सबको संतुष्ट किया। विविध

आभरणोंको पिंगलनिधि, वस्त्रको पद्मनिधि, सुवर्ण राशिको शंखनिधि, रत्नराशिको रत्ननिधि, भिन्नरससे युक्त धान्यको पांडुकनिधि, जब प्रदान करती है तो उन पुत्रोंको अगणित प्रजावोंको तृप्त करनेमें दिक्कत ही क्या है ?

इसके बाद सम्राट्ने गंगादेव, सिंधुदेव, नमि, विनमि आदिका सन्मान करते हुए कहा कि आप और हम पूजक थे। इसलिए पहिले आपलोगोंका सन्मान नहीं किया, अब आपका मैं सन्मान करता हूं। लीजिये, यह रत्नादिक। तब उन लोगोंने उन आभूषणोंको नहीं लिये तो सम्राट्ने कहा कि तब आप लोग ही दीजिये। मैं लेता हूं। तब उन्होने भरतेश्वरको भेंटमें अनेक अनर्घ्य वस्त्राभरणादि दिये तो भरतेश्वरने आनंदके साथ लिये व फिर भरतेश्वरके देनेपर उन्होने भी लिए। इस प्रकार नमि विनमि, भानुराज विमलराज आदियोंने भी परस्पर विनोदके साथ सन्मान प्राप्त किया। विशेष क्या ? लोकमें अब दारिद्र्य नहीं रहा, चौदह दिन महावैभवसे पूजा हुई। किमिच्छक दान हुआ। सम्राट्के पूजाव्रतका यह उद्यापन ही है। उस चौदहवें रात्रीको भी रथोत्सव हुआ। चौदह दिनतक रात्रिंदिन धर्मका अतुल उद्योत हुआ। करोडों वाद्योंकी ध्वनिसे सर्वत्र आनंद छाया था। समुद्रके समान ही गंगातटकी हालत होगई थी। एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, चौदह दिनतक ज़ो महावैभवसे पर्वतप्राय सामाग्रियोंसे पूजा हो रही थी। अर्पित पदार्थको देवोंने समुद्रमें डाल दिया था। वहांपर उन फलाक्षतादिकोंको मगर मच्छ तिमिंगिल आदि भी पूर्णतः खा नहीं सके। बचे हुए पर्वतप्राय पदार्थ पानीके ऊपर तैर रहे हैं। गुलाबजल चंदन आदिके कारणसे सर्व दिशा सुगंधित होरही थी। इसी कारणसे वायु भी सुगंध हो चला था, तभी वायुको गंधवाहक नाम पड गया है।

स्वर्गके देव भरतेशके वैभवकी प्रशंसा करने लगे, रथोत्सव होनेके बाद उस अंतिम रात्रीको देवेंद्र ऐरावतपर चढकर स्वर्गसे नीचे उतरा। अनर्घ्य रत्नाभरणको धारण कर रत्नमय मुकुटकी प्रभाको दशों दिशाओंमें फैलाते हुए एवं रंभामेनकाके नृत्यको देखते हुए देवेंद्र आरहा है।

देवेंद्रके साथ स्वर्गकी वे देवियां आरही हैं, एवं गारही हैं, नृत्य कर रही हैं। पूर्वसमुद्रमें पडे हुए पूजा द्रव्य, पर्वतोंके समान उपस्थित रथ व विश्वमें व्याप्त जनताको देखकर देवेंद्र आश्चर्य चकित होरहा है। चक्रवर्तिके द्वारा किये हुए पूजनके चिन्ह सर्वत्र दृष्टिगोचर होरहे हैं, भूमि और पर्वत सर्व सुगंधमय हो गये हैं। चक्रवर्तिकी अतुलभक्तिके प्रति देवेंद्र प्रसन्न होरहा है, शिर डोल रहा है, साथमें आश्चर्य कर रहा है। कैलासके पासमें आनेपर देवेंद्र हाथीसे नीचे उतरा व उन्होंने भगवान् आदि प्रभु व मुनियोंको शची महादेवीके साथ नमस्कार किया। बादमें शची देवीको अलग रखकर स्वयं भरतेश्वरके पास गया व पूजा वैभवसे प्रसन्न होकर सार्वभौमको आलिंगन दिया। एवं प्रशंसा की कि सचमुचमें आदिप्रभुने लोकमें अनर्घ्यताको प्राप्त किया। साथमें उन्होंने तीन लोकको चकित करनेवाले पुत्ररत्नको प्राप्त किया धन्य है। इस प्रकार भगवान् आदिदेव आत्मयोगमें मग्न है। उपस्थित सर्व भक्तगण आनंदसे पुण्यसंचय कर रहे हैं।

भरतेशके वैभवको इस प्रकरणमें पाठक देख चुके हैं। वे सुविशुद्ध आत्मज्ञानी हैं, तथापि उन्होंने व्यवहारधर्मकी उपेक्षा नहीं की। व्यवहार धर्ममें भी वे इतने चतुर हैं कि उनके पूजावैभवको देखकर विश्वकी प्रजायें चकित होजाय एवं देवेंद्र भी आश्चर्य करें। इसलिए वे सदा व्यवहारको न भूलते हुए ही निश्चयकी आराधना करते थे। उनकी सदा यह भावना रहती थी कि—

हे चिदंबरपुरुष! व्यवहार धर्मका उद्यापन कर सुविशुद्ध निश्चयकी प्राप्तिके लिए हे अमृतमाधव! मेरे हृदयमें सदा अविचलरूपसे बने रहो!

हे सिद्धात्मन्! आप विश्व विद्याधर हैं, विश्वतो लोचन हैं, विश्वतो मुख हैं, विश्वतोऽशु हैं, विश्वेश हैं। इसलिए हे दुष्कर्मतृणलोहिताश्व! प्रभु निरंजनसिद्ध! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इति तीर्थेशपूजासंधिः।

अथ जिनमुक्तिगमनसंधिः

भगवंतके पूजा महोत्सवमें रात बीत गई, प्रातःकालमें सूर्योदय होनेपर उपस्थित सर्व जनता जयजयकार करते हुए भगवंतकी वंदनाके लिए सन्नद्ध हुई। सूर्यका उदय होनेपर भी कोटि सूर्यचंद्रके प्रकाशको धारण करनेवाले भगवंतके सामने सूर्यका तेज फीका ही दिख रहा है, एक मामूली दीपकके समान मालुम होरहा है। एक सुवर्णकी थालीके समान दिख रहा है। घातिक चतुष्टयको नाशकर भगवंत पहिले परंज्योति बन गये हैं। अब चार अघातिया कर्मोंको नष्ट करनेके लिए भगवंत तैयार हुए। घातिया कर्मोंकी ६३ प्रकृति तो पहिलेसे खाली होगई हैं। अब घातिया कर्मोंकी ८५ प्रकृति-योंको नष्ट करनेके लिए भगवंतने तैयारी की। इन ८५ प्रकृतियोंका समूह अब दो भेदसे विभक्त होकर नाशको पाते हैं। भगवंत उनको अपने आत्मप्रदेशसे दूर करते हैं।

असाता वेदनीय, देवगति, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण शरीर, पंच बंधन, पंच संघात, संस्थान छह, अंगोपांग तीन, षट्संहनन, पंच प्रशस्तवर्ण, (पंच अप्रस्तवर्ण,) गंधद्वय, पंच प्रशस्तरस, (पंच अप्रशस्त रस,) अष्ट स्पर्श, देवगत्यनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, अपर्याप्तक, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण व नीच गोत्र इस प्रकार ७२ प्रकृतियां अयोगकेवली गुणस्थानके द्विचरम समयमें आत्मासे अलग होती हैं। इसी प्रकार सातावेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेंद्रिय जाति, मनुष्य गति प्रायोग्यानुपूर्वी, त्रस, बादर, पर्याप्तक, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थकर व उच्चगोत्र इन प्रकृतियोंका अयोगकेवली गुणस्थानके चरम समयमें अंत होता है। इस प्रकार अघातिया कर्मोंके अवशिष्ट

८५ प्रकृतियोंको तीर्थंकरयोगी आत्मासे अलग करते हैं। आत्माको छोडकर शेष सर्व पदार्थ मेरे नहीं हैं, उनसे मेरा कोई संबंध नहीं है इस बातका निश्चय पहिलेसे तीर्थंकर योगीको है। जगत्के अग्रभागमें स्थित सिद्ध भी जब उनसे भिन्न हैं तो जगत्की बात ही क्या है! अब तीन शरीरोंको दूरकर मुक्ति प्राप्त करना ही शेष है। इसलिए उस कार्यमें भगवान् उद्युक्त हुए। अब तो उनकी दशा तो ऐसी है कि स्फटिकके पात्रमें दूध भरा हो तो जो निर्मलता है, उससे भी बढकर निर्मलताको प्राप्त शरीरमें आत्मा विशुद्ध भावोंमें डुबकी लगा रहा है। अत्यंत विशाल क्षीरसमुद्रको एक घडेमें भरनेके समान विशाल आत्माको इस देहमें भर दिया है, उसका साक्षात्कार भगवंत कररहे हैं। आकाशको एक गजसे मापनेके समान, त्रिलोकको भी न कुछ समझनेके समान एवं करोडों समुद्रोंको सरलतासे पार करनेवालेके समान अत्यंत निराकुलता वहां छाई हुई है। शरीररूपी कुंभमें स्थित आत्मरूपी क्षीरसमुद्रमें सम्यक्त्व पर्वतरूपी मंथनको चिद्भावकी रस्सी लगाकर मथित कररहे हों, उस प्रकार उस ध्यानकी दशा थी। वहांपर घडा, दूध, मंथा, रस्सी आदि सभी भिन्न २ हैं। यहांपर केवल घडा भिन्न है, बाकी सर्व एक रूप होकर मंथनक्रिया होरही है। आठ क्षायिक गुणोंमें चार गुणोंकी प्राप्ति तो पहिलेसे ही भगवंतको होचुकी हैं। अब रहे हुए चार गुणोंकी प्राप्तिके लिए गुणगुणी भेदको भुलाकर भगवान् अपने आत्मस्वरूपकी ओर देखरहे हैं एवं दुर्गुण कर्मोंको दूर कररहें हैं। कर्मके स्वरूपमें ही स्थित तैजसकार्मणोंको परमात्माने अब निस्तेज बना दिया है। अब तो वे प्रकाशमें ही डुबकी लगारहे हैं, प्रकाशमें ही स्नान कररहे हैं, प्रकाशमें ही जलक्रीडा कररहे हैं। इस प्रकार प्रकाशमय परमात्मामें वे मग्न हैं। एक दफे प्रकाश तेज व फिर मंद, इस प्रकारके परिवर्तनसे युक्त धर्मध्यान वहां पर नहीं है। वहांपर परमशुक्लध्यान है, इसलिए शरीरमें सर्वत्र निर्मलात्माका ही दर्शन होरहा है। शरीररूपी घडा फूट-

कर आत्मारूपी दूध लोकमें सर्वत्र व्याप्त होरहा हो, इस प्रकार वहांपर आत्मदर्शनमें निर्मलता बढी हुई है। उस ध्यानकी महिमाको भगवंत ही जाने।

आयु कर्म तो वृद्ध होचुका है। वेदनीय, नाम व गोत्र कर्म अभी-तक जवानीमें हैं। उनको अब प्रयत्नसे वृद्ध करना चाहिये। इसलिए अब भगवंतने वेदनीय नाम व गोत्रको वृद्ध बनानेका उद्योग किया। विशेष क्या, दंडके बलसे तीन शत्रुओंको दमन कर उनको चौथे शत्रुके वशमें देते हुए चारोंको एकदम नष्ट करनेके उद्योगमें अब वीतराग लगे हैं। आत्माको अब दंडाकारके रूपमें विचार किया तो वह निर्मल आत्मा शरीरसे बाहर दंडके आकारमें उपस्थित हुआ। पाताल लोकसे लेकर सिद्धलोकतक वह आत्मा अत्यंत शांतरूपसे चौदह रज्जुके प्रमाणमें दंडाकारमें उपस्थित है। स्वतःके शरीरसे तिगुने आयत प्रमाणमें परमात्मा उस समय तीन लोकके लिए एक स्फटिकके खंभेके समान खडा है। उसे अब हस्तपादादिक नहीं है। पुनः कपाट आकृतिके लिए विचार किया तो एकदम दक्षिणोत्तर फैलकर तीन लोकके लिए एक किवाडके समान बनगये। अब सात रज्जु चौडाईमें, चौदह रज्जु ऊंचाईमें एवं स्वशरीरके तिगुने घनप्रमाणमें अब वह परमात्मा विद्यमान है। उसके बाद प्रतरका प्रयोग हुआ तो त्रिलोकरूपी विशाल कुंभमें आत्मामृत तत्क्षण भरगया। जिस प्रकार ओस त्रिलोकमें भरजाती है उसी प्रकार आत्मा त्रिलोकमें भर गया है। अब लोकपूरणकी ओर बढगया, पहिले वातवलयके प्रदेश छूट गये थे। अब उन वातवलयोंके प्रदेशको भी लेकर आत्मा सर्वत्र भरगया। तीन लोकमें अब यत्किंचित् स्थान भी शेष नहीं है। कैलासकी शिलापर औदारिक था। परंतु तैजस कार्मण तो तीन लोकमें व्याप्त होगये थे। और उनके साथ ही परमात्मकला भी थी। तदनंतर लोकपूरणके बाद पुनः प्रतर, कपाट व दंडाकारमें आकर अपने शरीरमें वह परमात्मा प्रविष्ट हुआ। जिस प्रकार एक गीले वस्त्रको निचोडकर फैलानेपर हवासे वह सूख जाता है; उसी प्रकार आत्माको फैलानेपर परमात्माके कर्मरूपी द्रव्यपरमाणु सूख गये।

अब तीनों कर्मोंकी दशा आयुष्यकी बराबरीमें है। अब तीन शरीरोंको छोडकर भगवंत सिद्ध लोकमें चढनेके लिए तैयार हुए। तेरहवें गुणस्थानवर्ती परमात्मा जब चौदहवे गुणस्थानमें पहुंचते हैं, वहां अत्यंत सूक्ष्म काल है। अ, इ, उ, ऋ, लृ, इस प्रकार पांच ह्रस्वाक्षरोंके उच्चारणके अल्पकालमें ही वे सब खेल खतम कर सिद्धलोकमें सिधारते हैं। प्रथम समयमें वहांपर बाहत्तर कर्म प्रकृतियोंका अंत हुआ तो अंत्यसमयमें तेरह प्रकृतियोंका अभाव हुआ। साथमें तीन शरीर भी अदृश्य हुए। वह सकल परमात्मा लोकाग्रभागपर पहुंचे। उसमें एक तीसरा शुक्लध्यान और एक चौथा शुक्लध्यान है ऐसा कहते हैं, परन्तु यह सब कथन करनेकी कुशलता है। उसका सीधा अर्थ तो यही है कि आत्मा आत्मामें मग्न हुआ।

आदिप्रभुके तीन शरीर जब बिजलीकी तरह अदृश्य हुए तब प्रभु तीन लोकके अग्रभागको एक समयमें पहुंचे। सात रज्जुके स्थानको लंघन करनेके लिए उनको एक समय भी अधिक नहीं लगा। कैलासपर्वतपर पल्यंकासनमें विराजमान थे, इसलिए मुक्तिस्थानमें भी आत्मप्रदेश उसी रूपमें पुरुषाकारसे सिद्धोंके बीच प्रविष्ट हुए। तनुवातवलय नामक अंतिम वातवलयमें भगवंत सिद्धोंके बीचमें विराजमान हुए। अब उन्हें जिन या अर्हंत नहीं कहते हैं। उनको यहांसे सिद्ध नामाभिधान हुआ। आठ कर्मोंके नाश होनेसे आठ गुणोंका उदय यहां हुआ है। अब वे परमात्मा संसार समुद्रको पारकर आठवी पृथ्वीमें पहुंचे हैं।

क्षायिक सम्यक्त्व, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य, सूक्ष्म, अवगाह, अगुरुलघु, और अव्याबाध इस प्रकार उत्तम अष्ट गुणोंको अब परमात्माने पा लिया है। अब वहांसे इस संसारमें लौटना नहीं होता है। अनंत सुख है। सामान्य नर सुर व उरगोंको वह अप्राप्य है। ऐसे मुक्तिसाम्राज्यमें वे रहते हैं।

भगवंतके मुक्ति जानेपर जब उनका देह अदृश्य हुआ तो समवसरण भी अदृश्य हो गया। जैसे कि मेघपटल व्याप्त होकर अदृश्य होता है। समवसरणके अदृश्य होनेपर केवलियोंकी गंधकुटियां भी इधर उधर गई। आदि प्रभुके न रहनेपर वहां अब कौन रहेंगे ? पिताके योगको टकटकी लगाये भरतेश्वर देख रहे थे, जब आदिप्रभु लोकाग्रवासी बने व इधर उनका शरीर अदृश्य हुआ तो सम्राट्का मुख मलिन हुआ। अंतरंगमें दुःखका उद्रेक हुआ। मूर्च्छा आना ही चाहती थी, धैर्यसे सम्राट्ने रोकनेका यत्न किया। पितृमोहकी पराकाष्ठा हुई, सहन नहीं कर सके, मूर्छित हुए। खडे होनेसे मूर्च्छा आती है, जानकर वहां भौनसे बैठ गये। तथापि दुःखका उद्रेक हो ही रहा था। पितृ-वियोगका दुःख कोई सामान्य नहीं हुआ करता है। मित्रोंने शीतोपचारसे भरतेश्वरको उठाया। पुनः आंसु बहाते हुए उस शिलाकी ओर देखने लगे। हा ! हा ! स्वामिन् मेरे पिता ! मोहासुरदर्पमथन ! मुझे बाह्य संसारमें डालकर आप मुक्ति गये। क्या यह उचित है ? मुझे पट्टरूपी पाशमें बांधकर, ऊपरसे राज्यरूपी बोझा और दे दिया। फिर भी आखेरको मुक्तिको न ले जाकर यहीं छोड चल बसे। महादेव ! क्या यह उचित है ? मुझे इच्छित पदार्थोंको देकर बहुतकाल संरक्षण किया, फिर अंतमें इस प्रकार छोड जानेके लिए मैंने क्या अपराध किया है ? आपकी सभा किधर गई ? आपका शरीर कहां है ? आपके साथकी गंधकुटियां कहां हैं ? कैलासपर्वतकी शोभा भी अब चली गई। बाकीके जीवनकी बात ही क्या है ? आपको देखकर मैं भी आज ही सर्वसंग परित्यागी बनूं व दीक्षा लूं, यह मेरा कर्तव्य है। परन्तु यह पुण्यकर्म जो मुझे घेरा हुआ है, मुझे नहीं छोडता है। क्या करूं ? अब दुःख करनेसे क्या प्रयोजन है ? आपके द्वारा प्रदर्शित योगमार्गमें ही मैं भी आऊंगा। 'श्रीगुरुहंसनाथाय नमोस्तु ' इस प्रकार कहते हुए हृदयको समझाया। दुःखमें शांतिको धारण किया।

वृषभसेन गणधरने चक्रवर्तीको समझाया कि भव्य ! वृषभेश गये तो क्या हुआ ? वे चर्मचक्षुके लिए अगोचर बन गये, आत्मलोचनसे उनका दर्शन हो सकता है। फिर तुम दुःख क्यों करते हो ? समझमें नहीं आता। तुम्हारे पिताने तुमको कहा था कि, भरत ! तुमको मुक्तिको आनेके लिए मेरे जितने कष्ट सहन नहीं करने पडेंगे। तुम बहुत विनोदके साथ मुक्ति पहुंचोगे। इसलिए जल्दी तुम्हारे पिताको देखोगे। सिद्ध लोकमें जब तुम्हारे पिताजी विराजे हैं तो तुम्हारे आनंदमें वृद्धि होनी चाहिए, ऐसा न कर बच्चोंके समान दुःख करना क्या तुम्हारा धर्म है ? इस प्रकार योगींद्रने भरतेश्वरको विशुद्धपथका प्रदर्शन किया। उत्तरमें सम्राट्ने निवेदन किया कि योगिराज ! आपका कहना बिलकुल सत्य है, परन्तु मोहनीय कर्म आकर दुःख देता है, उसी मोहके बलसे थोडासा दुःख हुआ है। क्या करें, माताने दीक्षा ली, मेरे भाईको मोक्ष हुआ। परंतु उस समयके दुःखको समवसरणने रोका। क्योंकि जिनेंद्रके सामने दुःखकी उत्पत्ति नहीं होती है परंतु अब यहां जिनेंद्रके न रहनेपर शोकोद्रेक हुआ। परंतु समझानेपर चला गया।

देवेंद्र भी आश्चर्यचकित हुआ। त्रिलोकपति पिताके वियोगको ऐसा पुत्र कैसे सहन कर सकता है ? दुःखोद्रेक होनेपर भी इसने हृदयको समझाया यह कोई मामूली बात नहीं है। धन्य है ! देवेंद्र चक्रवर्तिके कृत्यपर अधिक प्रसन्न होकर कहने लगा कि सार्वभौम ! लोकमें लोग बातें बहुत कर सकते हैं। परन्तु जैसा बोले वैसा चलना मात्र कठिन है, परन्तु तुम्हारी बोल और चाल दोनों समान हैं। उनमें कोई अंतर नहीं है। इसी प्रकार धरणेंद्र बोला कि सुखमें, आनंदमें रहते हुए सब लोग बडी २ लंबी २ गप्पे हांक सकते हैं। परन्तु असह्य दुःखका प्रसंग जब आ जाता है तो उसे मुखसे कहना भी अशक्य हो जाता है। इस समयको जानकर नमिराज बोले कि भगवान् अमृतलोकमें

है, हमें भी यहां मोह क्यों ? वहींपर हमें भी जाना चाहिए। सम्राट्ने शोकको सहन किया, महदाश्चर्य है। इसी प्रकार बाकीके साले व मित्र, राजागण आदिने मिष्ट भाषण करते हुए सम्राट्को गुलाबजलसे ठंडा किया। उत्तरमें भरतेश्वरने भी सबको संतुष्ट किया।

आप सब मित्रोंने कैलासनाथके पूजामहोत्सवमें योग देकर बहुत अच्छा किया। बहुत आनंद हुआ। भगवंतका समवरण जब अदृश्य हो गया तो मेरी संपत्तिकी बात ही क्या है ? परन्तु आप लोग मेरे परमबंधु हैं। आपने मेरे इस कार्यमें योग दिया है। आप और हम भगवंतकी पूजासे पावन बन गये हैं। अब आप लोग अपने नगरकी ओर प्रस्थान करें। इस प्रकार सब इष्ट मित्र, नमि विनमि, मागधामरादि व्यंतरोंको वहांसे विदा किया। कैलास पर्वतसे सर्व व्यंतर, विद्याधर आदि चले गये। देवेंद्र धरणेंद्रके साथ विनयसे बोलकर योगियोंकी वंदनाकर भरतेश्वर भी अयोध्याकी ओर निकले। यात्रानिमित्त उपस्थित सर्व प्रजायें चली गई। भरतेश्वर पुत्र मित्र व प्रधानमंत्री आदिके साथ गुरु हंसनाथकी भावना करते हुए जा रहे हैं। व्यवहार धर्मका उद्यापन कर निश्चय धर्मको ग्रहण कर, सद्योजात चित्कालकी भावना करते हुए अनवद्य सौर्वभौम अपने नगरकी ओर आ रहे हैं। सुख दुःखोंमें अपनेको न भुलानेवाला, परमात्मसुखको ही सबसे बढकर सुख समझनेवाला और कल सुखपूर्वक मुक्ति जानेवाला वह सुखी सार्वभौम अपने नगरकी ओर जा रहा है। दर्पणमें देखनेवालोंकी अनेक प्रकारकी आकृति विकृतियां दिखती हैं। तथापि दर्पण अपने स्वभावमें ही है। इसी प्रकार अपने कर्मोंके रहनेपर भी प्रसन्न रहनेवाला वह सुप्रसन्न सम्राट् जा रहा है। जगत् की दृष्टिमें राज्यको पालन करनेपर भी सुज्ञानराज्यके पालन करनेवाला वह विचित्र राजा जा रहा है। इस प्रकार महावैभवके साथ आकाश मार्गसे आकर चक्रवर्तीने साकेतपुरमें प्रवेश किया एवं सबको हितमित वचनसे विदा किया एवं स्वयं अपनी महलकी ओर चले गये।

महलमें व्याकुलताके साथ नमस्कार करती हुई राणियोंको अनेक विधसे सम्राट्ने सांत्वना दी। इधर कैलासमें देवेंद्रको एक लीला करनेकी सूझी। भगवंतने कर्मको कैसे जलाया इस विषयको मैं दुनियाको बतलाऊं, इस विचारसे तीन होमकुंडकी रचना की। और श्रीगंधकी लकडी भी एकत्रित हो गई। अनलकुमारदेवके मुकुटसे उत्पन्न आगसे देवेंद्रने अग्निसंधूक्षण कर बहुत वैभवसे होम किया। तीन कुंड तो तीन देहकी सूचना है। वह प्रज्वलित अग्नि ध्यानकी सूचना है। भगवंतने तीन शरीरमें स्थित कर्मोंको ध्यानके बलसे जिस प्रकार नाश किया, उसी प्रकारकी सामर्थ्य हमें प्राप्त हो, इस भावनासे सब देवताओंने उस होम भस्मको कंठ, ललाट, हृदय, बाहु आदि प्रदेशोंमें धारण किया। इस प्रकार देवेंद्रने भक्तिसे अंतिम कल्याणका महोत्सव किया। देवगण हर्षसे फूले न समारहे थे। हम लोगोंने पंचकल्याणमें योग दिया है। अब हमें मुक्तिकी प्राप्ति ही हो गई, इसमें कोई संदेह नहीं है, इस प्रकार कहते हुए देवगण आनंदके समुद्रमें डुबकी लगा रहे थे।

देवेंद्रने तो नृत्य करना ही प्रारंभ किया, आवो मेनका! आवो रंभा! आवो तिलोत्तमा इत्यादि अप्सरावोंको बुलाकर सुरगान, लयके साथ देवेंद्र अब नृत्य करने लगा है। एक दफे उन देवांगनाओंके साथ, एक दफे स्वयं अकेला, बहुरूपोंको धारणकर नृत्य कर रहा है। पर्वतपर आकाशपर, एक दफे शिर नीचा कर, पैरको ऊपरकर, नृत्य कर रहा है, लोग आश्चर्यचकित हो रहे हैं। नृत्यकलाका अजीब प्रदर्शन ही वहां हो रहा है। 'मेरे स्वामी मुक्ति को गये हैं, इसलिए मुझे नृत्य करनेकी अनुरक्ति हुई एवं उनके चरणोंकी भक्ति ही मुझे नृत्य करा रही है।" इस बातको व्यक्त करते हुए बहुत आसक्तिसे नृत्य कर रहा है। नृत्यक्रियासे निवृत्त होकर देवेंद्रने गणधरोंकी वंदनाकर धरणेंद्र, ज्योतिष्क आदि देवोंको विदा किया एवं स्वयं शची महादेवीके साथ स्वर्गलोकके प्रति चला गया।

माघ कृष्ण चतुर्दशीके रोज भगवान् आदिप्रभुने मोक्षधाम प्राप्त किया। उस दिन रात्रिंदिनके भेदको न करते हुए लोकमें सर्वत्र आनंद ही आनंद छागया। भगवान् आदिप्रभुको जिन भी कहते हैं, शिव भी कहते हैं। इसलिए उस रात्रीका नाम जिनरात्रि या शिवरात्री पडगया। और लोकमें माघ कृष्ण चतुर्दशीको शिवरात्रिके नामसे लोगोंने प्रचलित किया।

भरतेश्वर सातिशय पुण्यशाली हैं। जिन्होंने तीर्थकर प्रभुके मोक्ष साधनके समय अपूर्व वैभवसे पूजा की, जिस पूजावैभवको देखकर देवेंद्र भी विस्मित हुआ तो सार्वभौमके पुण्यका क्या वर्णन हो सकता है! आदिप्रभुके मुक्ति सिधारनेके बाद थोड़ासा दुःख जरूर हुआ। परंतु विवेकके बलसे उसे पुनः शांतकर सम्हाल लिया। ऐसे ही समय विवेक काममें आता है। एवं महापुरुषोंका यही वैशिष्ट्य है। भरतेश्वर परमात्माको इसलिए निम्न प्रकार आराधना करते हैं।

हे चिदम्बरपुरुष! गुणाकर! आप क्रमसे धीरे धीरे आकर मेरे अन्तरंगमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! अष्टकर्मरूपी अरण्यके लिए आप अग्निके समान हो, निर्मल अष्ट गुणोंको धारण करनेवाले हो, शिष्टाराध्य हो, नित्यसंतुष्ट हो, इसलिए हे निरंजनसिद्ध! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इति जिनमुक्तिगमनसंधिः ॥

—०—

अथ राज्यपालन संधिः।

भगवान् आदिप्रभुके मुक्ति पधारनेके बाद सम्राट् भरतेश्वरने महलमें पहुंचकर अपनी पुत्रियोंको सत्कारके साथ विदा किया। और रत्नाभरणादि प्रदान कर संतुष्ट किया। कुछ दिन आनंदसे व्यतीत हुए। एक दिन सुखासीन होकर भरतेश्वर अपनी महलमें थे, इतनेमें समाचार

मिला कि नमिराज व विनमिराज दीक्षा लेकर चले गये। उसी समय मुखमें स्थित तांबूलको थूंक दिया। गला भरकर आया। दुःखके आवेगसे आंसूं भी उमड आये। क्योंकि नमि–विनमिका वियोग उनके लिए असह्य था, वे प्रीतिपात्र साले थे। तथापि विवेकके उपयोगसे सहन कर लिया। तदनंतर अवधिका प्रयोग किया तो मालुम हुआ कि अपनी मामियोंने भी भरतकी बहिनोंके साथ दीक्षा ली है। नमि विनमिने कनकराज और शांतराजको राज्य देकर दीक्षा ली, यह जानकर भरतेशको दुःख भी हुआ और साथमें उनके धैर्यको देखकर प्रसन्नता भी हुई। उसके मामाके पुत्र ही तो हैं। विचार करने लगे कि वे मुझसे आगे बढ गये। मुझसे पहिले जो वंदनीय बन गये उनको नमोस्तु, इस प्रकार कहते हुए नमस्कार किया। नमि विनमिने कच्छ केवलीसे दीक्षा ली और माताओं एवं स्त्रियोंकी दीक्षा भगवान् बाहुबलीके पास हुई, धन्य है, इत्यादि विचार करते हुए अंदर गये तो महलमें पट्टरानी सुभद्रादेवी अत्यधिक दुःखमें पडी हुई है। उत्तम व संतोषदायक वचनोंसे भरतेश्वरने उसे सांत्वना दी। भरतेशके लिए यह कोई नई बात नहीं है। नमि–विनमिके बच्चोंके संरक्षणके लिए मैं हूं, कोई घबरानेकी जरूरत नहीं हैं, इत्यादि प्रकारसे पट्टरानीको सांत्वना देकर विजयार्धको उसी आशयका पत्र भेजा, और सबको संतुष्ट किया। इस प्रकार कुछ समय बहुत आनंदसे व्यतीत हुए।

एक दिन बैठे २ भरतेश्वरने विचार किया कि अब आगे आनेवाला काल बहुत कठिनतर है। कैलास पर्वतमें रत्न, सुवर्णादिकसे मंदिरोंका निर्माण किया गया है। वहांपर आगेके कालमें मनुष्योंका जाना उचित नहीं है। उन मंदिरोंपर कोई आघात न हो, इसका प्रबंध होना चाहिये। बीच पर्वतसे इधरके भागके पर्वतको दंडरत्नसे कोरकर मनुष्य उसे पारकर न जावे ऐसा करें। इस विचारसे उसी समय भाग-

१ नमि विनमिकी मातायें व कच्छ महाकच्छकी स्त्रियां.

धामरको बुलाया व भद्रमुखको भी बुलाकर युवराज अर्ककीर्तिके नेतृत्वमें इस कार्यको उन्हें सौंप दिया। दंडरत्नके द्वारा विश्वकर्मने पर्वतको उपर्युक्त प्रकारसे कोर दिया। अब पर्वत एक गिंडी (कलश) के समान बन गया। इतनेमें युवराजने भद्रमुखको यह कहा कि पर्वतके आठ भागोंमें आठ पादोंके समान रचना करो! भद्रमुखने तत्काल आठ पादोंकी रचना आठ दिशाओंमें की। वे आठ खंभोंके समान मालुम होते थे। युवराजकी बुद्धिचतुरतापर सबको प्रसन्नता हुई। अब मनुष्य तो वंदनाके लिए यहां नहीं आ सकते हैं। परन्तु अब रजताद्रि अष्टपादका पर्वत बन गया। इसलिए इसका नाम अष्टापद पड गया है। उसी समय उस कोरे हुए भागके बाहरकी ओर चांदीका एक परकोटा निर्माण किया गया। सब कार्यको समाप्त कर चक्रवर्तिको निवेदन किया। वे भी प्रसन्न हुए। मागधामर, भद्रमुख व युवराजको वस्त्ररत्नाभरणादि प्रदान कर सन्मान किया एवं कहा कि आप लोगोंने बडी शूरताका कार्य किया है। हमारे समयमें मनुष्य विमानोंमें बैठकर जावे एवं पूजन करें। फिर आगे विद्याधर व देव जाकर पूजा करें। जिनालयोंकी रक्षा युवराजके द्वारा हुई। परन्तु आगे परकोटेकी चांदीके लिए लोग आपसमें कलह करेंगे, इस विचारसे सगरपुत्र वहां खाईका निर्माण करेंगे। व्यंतराग्रणि मागधामरको विदाकर आत्मांतराग्रणि भरतेश्वर अत्यंत आनंदके साथ राज्यवैभवको भोगते हुए सौख्यविश्रांतिसे समयको व्यतीत कर रहे हैं। उसका क्या वर्णन करें।

भूभारकी चिंता मंत्रीरत्न वहन कर रहा है। परिवार अर्थात् सेनाकी देखरेख अयोध्यांककी जुम्मेवारीपर है। नगरकी रक्षा माकाल कर रहा है। भरतेश्वर आत्मयोगमें हैं। राजपुत्रोंका आतिथ्य वगैरे युवराज कर रहा है। और व्यंतरोंका योगक्षेम मागधामर चला रहा है, भरतेश आत्मयोगमें हैं। हाथी, घोडा, आदिकी देखरेख, घर व महलकी देखरेख विश्वकर्मा कर रहा है। स्नानगृह, भोजनगृहकी व्यवस्था गृह-

पातिके हाथमें है। भरतेश आत्मयोगमें हैं। भरतेशके सेवक बाहिर दरवाजेपर पहरा देते हैं, तो सम्राट् अपनी राणियोंके साथ आनंदसे सुवर्णके महलमें निवास करते हैं। सौनंदक खड्ग व सुदर्शन, शत्रुके अभावको सूचित करते हैं तो दंडरत्न पर्वतको भी चूर्णित करनेको तैयार है। इस प्रकार भरतेश्वर निरातंक होकर राज्यवैभवको भोग रहे हैं।

सेनाको आनेवाली ऊपर व नीचेकी आपत्तिको छत्र व चर्मरत्न दूर करते हैं। सम्राट् अपने नगरमें अखंड लीलामें मग्न हैं। चिंतामणि रत्न चिंतित पदार्थको प्रदान करनेवाला है। इसी प्रकार महत्वपूर्ण नव-निधि हैं। गुफामें भी प्रकाश करनेवाला काकिणी रत्न है। फिर महलमें भरतेश्वर सुखी हों, इसमें आश्चर्य क्या है ? बारह कोसतक कूदनेवाला घोडा है, उत्तम हस्तिरत्न है। परिपूर्ण इंद्रियसुखको प्रदान करनेवाला स्त्रीरत्न है। फिर भरतेश्वरके आनंदका क्या वर्णन करना है ? असि, दंड, चक्र, काकिणि, छत्र, चर्म व चिंतामणि ये सात अजीव रत्न हैं। विश्वकर्मा, मंत्री, सेनापति, गृहपति, स्त्रीरत्न, अश्वरत्न, व गजरत्न ये सात जीवरत्न हैं। सम्राट्के भाग्यका क्या वर्णन करें ? चौदह रत्न हैं, नवनिधि हैं, अपार सेना है। उनका सामना कौन कर सकते हैं। अत्यंत आनंदमें हैं। तीन समुद्र, और हिमवान् पर्वततकके प्रदेशमें स्थित प्रजायें बार २ उनकी सेवामें उपस्थित होते हैं। शूर वीरगण भरतेश्वरकी सेवा करते हैं। स्वयं भरतेश विलासमें मग्न हैं। रोज जल-क्रीडा, विवाह, मंगल आदिका तांता लगा हुआ है। क्षाम, दुष्काल, आग, उत्पात, पूर वगैरेकी कोई बात ही भरतेशके देशोंमें नहीं है। चोटी पकडनेका कार्य वहां कामुकोंमें है, सज्जनोंमें नहीं है। किसीको मारनेकी क्रिया शतरंजके खेलमें है, मनुष्योंमें नहीं है। बोल व चालमें च्युत होनेकी क्रिया वहांपर विरही जनो पाई जाती थी, परंतु लोग अपनी वृत्तिमें कभी वचनभंग नहीं करते थे। जैसा बोलते वैसा

चलते थे। दंडका ग्रहण वहांपर वृद्धलोग करते थे, किसीको मारने पीटनेके लिए दंडका उपयोग वहां कोई नहीं करते थे। जडता (आलस्य) वहांपर कामसेवनके अंतमें व निद्रामें थी, परंतु लोगोमें आलस्यका लेश भी नहीं था। प्रत्येक नगरमें प्रजायें सुखसे अपने समयको व्यतीत करते हैं। जगह २ शास्त्राभ्यासके मठ, ब्राम्हणोंके अग्रहार बने हुए हैं, जहां मंत्र पाठ वगैरे चल रहे हैं। गंधकुटीका विहार वहां बार २ आता है, और चारणमुनियोंका भी आगमन वहांपर वारंवार होता है। एवं उस सुखमय राज्यमें उत्तम जातिके घोडे व हाथी उत्पन्न होते रहते थे। जहां तहां रत्नोंकी प्राप्ति मनुष्योंको होती है। और भूमिमें गढी हुई संपत्ति मिलती है। जंगलमें सर्वत्र श्रीगंध व कर्पूरलतायें हैं। नगरमें सर्वत्र त्यागी व भोगियोंकी संपदायें भरी हुई हैं। बडे २ घडेमें भरकर दूध देनेवाली गायें, विश्वको मोहित करनेवाली देवियां, नील कमल, कमलसे युक्त तालाब, गंधशालीसे युक्त खेत, सुंदर व सुगंधित पवनोंसे युक्त उपवन आदिसे वहां विशिष्ट शोभा है। नगरमें अन्नछत्र, धर्मशाला व मार्गमें कच्चे नारियलका पानी, शक्कर व प्याऊकी व्यवस्था है। भिन्न २ वार, तिथि आदिके समय व्रत आराधना वगैरेके साथ मुनिभुक्ति, ब्राम्हणभोजन, सन्मान आदि होरहे हैं। आज कलियुग होनेसे देव व व्यंतर मनुष्योंको दृष्टिगोचर नहीं होरहे हैं, परंतु भरतेशका युग कृतयुग था। उस समय देवगण, मनुष्योंके साथ हिलमिलकर रहते थे, क्रीडा करते थे। ज्ञानकल्याणके लिए, निर्वाण कल्याणके लिए जब वे देवगण इस धरातलपर उतरते हैं तो मनुष्य उनको देखते हैं एवं उनके साथ मिलकर भगवंतकी पूजा करते हैं, उस समयके उत्सवका क्या वर्णन किया जाय ?। भूमिं व स्वर्गका परस्पर व्यवहार चल रहा था, सर्वत्र संपत्तिका साम्राज्य था। भरतेशको राज्यपालनकी चिंता बिलकुल नहीं है। जिस प्रकार मंदिरके भारको भींत, खंभे वगैरेके ऊपर सोंपकर भगवान् अलग रहते हैं, उसी प्रकार भरतेश षट्खंडभारको अपने आप्त मंत्रिमित्रा-

दिकोंको सोंपकर स्वयं सुखमें है। बाहिर सेना व प्रजावोंको जैसा देखते हैं तो अंतरंगमें अपनी देवियोंके साथ आनंद भी मानते हैं, परंतु किसीके यहां निमंत्रणसे भोजनको जानेवालेके समान। प्रजावोंको वे देखते हैं, जैसे कोई मुनि तपोवनको देखता हो। अपने पुत्रोंकी ओर उनका उतना ही मोह है जितना कि एक मुनिका अपने शिष्योंपर होता है। खजाने, भंडार आदिको वे उसी दृष्टिसे देखतें हैं, जैसे कोई वेतन-भोगी भंडारी देखता हो। लोग तो उस निधिको सम्राट्‌की कहते हैं। परंतु स्वयं सम्राट् उसे अपनी नहीं समझते हैं। षट्खंड पदको वे एक पुण्यसंबंधसे प्राप्त एक मेलाके समान देखरहे हैं। उसे अपनेसे भिन्न समझकर भोग रहे हैं।

भरतेश स्वयं धारण किये हुए शरीरको भी जब अपनेसे भिन्न समझते हैं तो इतर वैभवके जालमें वे कैसे फंस सकते हैं? परमात्मर-सिकके रहस्यको कौन जाने? पुण्यफलको अनुभव करके कम कर रहे हैं। एवं आत्मलावण्यका साक्षात्कार कर रहे हैं। फिर उनको मुक्ति प्राप्त करना कोई गण्य है? अपितु सरल है। इस प्रकारकी वृत्तिमें वे अपना समय व्यतीत कर रहे हैं।

कभी कभी समयको जानकर भरतेश्वर ९६ हजार स्त्रियोंकी क्रीडामें रत होकर उनको तृप्त करते हैं एवं स्वयं तृप्त होते हैं। भरत चक्रवर्तिके रानीवासमें ३२००० विद्याधर स्त्रियां हैं, ३२००० भूमिगोचरी स्त्रियां हैं, एवं ३२००० म्लेच्छभूमिकी स्त्रियां हैं। इस प्रकार ९६००० देवियां हैं। सब स्त्रियोंको एक एक संतान हैं। परन्तु पट्टरानीको कोई संतान नहीं है। इसलिए उसके शरीरमें प्रसवक्रियाजन्य हानि नहीं होती है। उसका सौंदर्य ज्योंका त्यों बना रहता है। अतएव भरतेश्वरको पट्टरानीमें ही अधिक सुख मालुम होता है। योनियोंके भेद जो कहे गये हैं उन सबमें संतानकी उत्पत्ति होती है, परन्तु शंखयोनिमें संतानकी उत्पत्ति नहीं होती है। वह पट्टरानी शंखयोनीकी है। उसे प्रसववेदनाका दुःख नहीं है, वह महान् सुखी है।

सभी स्त्रियोंके साथ क्रीडा करनेपर भी पट्टरानीके साथ क्रीडा न करनेपर उस सार्वभौमको तृप्ति नहीं होती है। लोककी सर्व संपत्ती एकतरफ, वह सुंदरी एकतरफ। इतनी अद्भुत सामर्थ्य उस सुभद्रादेवीमें है। षट्खंडके समस्त पुरुषोंमें जैसे चक्रवर्ति अग्रणी हैं, उसी प्रकार षट्खंडकी समस्त स्त्रियोंमें वह पट्टरानी अग्रणी हैं। जैसे देवेंद्रको शची, धरणेंद्रको पद्मावती प्राप्त हुई, उसी प्रकार पट्टरानी भरतेश्वरको प्राप्त है। पट्टरानीको आदि लेकर ९६००० रानियोंके साथ सुखको अनुभव करते हुए बहुत समय व्यतीत किया। स्त्रियोंके शरीरमें कुछ शिथिलता आती है, परन्तु भरतेशके शरीरमें तो जवानी ही बढती जाती है। पवनाभ्यास, योगाभ्यास व ध्यानमार्गको जानकर जो सदाचरणसे रहते हैं उनके शरीरका तेज कभी कम नहीं होता है। रोग भी उनको नहीं छूता है, एवं नवयौवन ही बढता जाता है। प्राणवायु व अपानवायुको वे वशमें करते हैं। एवं वीणानादके समान नित्य हंसनाथका दर्शन करते हैं, उनको यह क्या अशक्य है?

इस प्रकार ध्यान, योग व वायुधारणकी सामर्थ्यसे काली मूछोंसे शोभित होते हुए २७-२८ वर्षके जवानके समान वे सदा मालुम होते हैं। जिन स्त्रियोंपर जरा बुढापेका असर हुआ उनको मंदिरमें लेजाकर अर्जिकावोंसे व्रत दिलाते थे एवं उनके पास ही उनको छोडते थे एवं भरतेश नवीन व जवान स्त्रियोंके साथ आनंद करते थे। बूढे घोडेको हटाकर नवीन नवीन घोडेका उपयोग जिस प्रकार किया जाता है, उसी प्रकार बूढी स्त्रियोंको मंदिरमें भेजकर जवान स्त्रियोंसे विवाह कर-लेते थे। वे स्त्रियां स्वयं सम्राट्की जवानी व अपने बुढापेको देखकर लज्जित होती थीं। एवं स्वयं मंदिर चली जाती थीं। उसी समय राजा लोग सम्राट्के योग्य जवान कन्यावोंको लाकर देते थे। जो स्त्रियां व्रत लेनेके लिए जानेकी अनुमती मांगती थीं उनको हंसकर सम्मति देते थे। एवं उनके योग्य जवान कन्यावोंको ला देनेपर हंसकर पाणिग्रहण कर-

लेते थे। बूढी स्त्रियां कभी २ न कहकर एकदम मंदिर जाती थीं और उसी समय अकस्मात् नवीन कन्यायें विवाहके लिए आती थीं तो गुरु हंसनाथकी महिमा समझकर उनको स्वीकार करते थे। अच्छी २ कन्यावोंको देखकर आसपासके राजा सार्वभौमके योग्य वस्तु समझकर ला देते थें, तब भरतेश उनके साथ विवाह करलेते थे। देश देशसे प्रतिनित्य कन्यायें आती रहती हैं। रोज भरतेश्वरका विवाह चल रहा है। इस प्रकार वे नित्य दूल्हा ही बने रहते हैं। उनके वैभवका क्या वर्णन किया जाय? पुरानी स्त्रियां जाती हैं, नवीन स्त्रियां आती हैं। सारांश यह है कि हर समय ९६००० स्त्रियां उनको बनी रहती हैं। कम नहीं होती हैं। पुरुषोंके साथ दीक्षा लेनेवाली कन्यायें एवं दीक्षा लेनेवाले कुमारोंको छोडकर षट्खंड दिग्विजको करनेके बाद सम्राट्को एक कम ९६००० संतान होनी ही चाहिये। पट्टरानी विद्याधर लोककी है, वंध्या है, स्त्रीरत्न है। कभी कम ज्यादा शिथिल वगैरे नहीं होती है।

ऐसी मदोन्मत्त जवान स्त्रियोंके साथ भरतेश यथेच्छ क्रीडा करते रहे, जैसे पानीमें प्रवेशकर मदोन्मत्त हाथी करता हो। श्रृंगार और सौंदर्यसे युक्त स्त्रियोंमें वे राजमोही ऐसे लीन होगये थे जैसे कि पुष्पवाटिकामें भ्रमर आनंदित होता है। उनके स्पर्श करनेमात्रसे स्त्रियोंको रोमांच होता है। उनको परवश कर देते हैं, मूर्च्छित करते हैं एवं पुनः आनंदसे जागृत करते हैं। भिन्न भिन्न स्त्रियोंकी इच्छानुसार रमण कर तदनंतर अपनी इच्छानुसार उनको मोहित करते हैं। भरतराजेंद्रका क्या गुणवर्णन करें? हजारों स्त्रियोंको हजारों रूपोंको धारण कर वे एकसाथ भोगते हुए इंद्रजालियाके समान मालुम होते थे। उन अनुपम सौंदर्ययुक्त स्त्रियोंके शरीरसंपर्कसे उत्पन्न सुखको अनुभव करते हुए भरतेश्वर सातिशय पुण्यफलको भोग रहे हैं एवं उसको आत्मप्रदेशसे निकाल रहे हैं। जिस प्रकार अनेक देशके लोग आकर किसी मंदिरकी पूजा करते हों, उसी प्रकार हजारों स्त्रियां भरतेशकी सेवा करती हैं

तो उसे वे आनंदसे ग्रहण करते थे। वहां एक मेलासा लग जाता था। जिस प्रकार पके हुए एक फोडेको दाबकर एक धीर उसका पीप निकालकर बाहर कर देता है, उसी प्रकार इन स्त्रियोंके साथ क्रीडाकर पुंवेदकर्मरूपी फोडेका वे पीप निकाल रहे थे। अर्थात् पुंवेदकर्मको पिघला रहे थे। कसरतके द्वारा अपने शरीरके आलस्यको दूरकर प्रसन्नतासे जैसे मनुष्य रहता है, उसी प्रकार माधुर्यवचनसे युक्त स्त्रियोंके साथ क्रीडाकर हमेशा हंससमाधिमें वे बने रहते थे। भेदविज्ञानीका सुख सभी कर्मनिर्जराके लिए कारण है। वह दूसरोंको दीखनेवाली कला नहीं है। केवल स्वसंवेदनागम्य है। स्त्रियोंके स्तनपर पडा हुआ, योगी रह सकता है। पर्वतकी शिलाके ऊपर स्थित मोही हो सकता है। यह सब परिणामका वैचित्र्य है। ललित आत्मयोगके रहस्यको कौन जाने? अपनी स्त्रियोंके साथ आनंद करते हुए, अपने साडे तीन करोड बंधुओंको संतुष्ट करते हुए, षट्खंडसे सत्कीर्तिको पाते हुए सार्वभौम भरत अयोध्यामें आनंदसे समय व्यतीत कर रहे हैं। चर्मचक्षुके द्वारा अपने राज्यको देखते हुए एवं ज्ञानचक्षुसे निर्मल आत्माको देखते हुए राजा भरत अपार आनंदके साथ राज्य पालन कर रहे हैं। यह उनकी राज्यपालनव्यवस्था है।

भरतेश्वरका पुण्य असदृश है। अप्रतिम आनंद, अतुल भोग, अद्वितीय वैभवके होते हुए भी भरतेश उसे हेयबुद्धीसे अनुभोग करते हैं। केवल कर्मोंका नियोग है, उसे भोगकर ही पूर्ण करना चाहिए। उसके विना उन कर्मोंका अंत भी कैसे होगा। शरीर, भोग, वैभवादिक सभी कर्मजनित सुखसाधन हैं। इनकी हानि गृहस्थाश्रममें तो दानसे या भोगसे होती है। सर्वथा अंत तो तपसे ही होता है। उसके लिए योग्य समयकी आवश्यकता होती है। अतः भरतेश सांसारिक जीवनमें वैभवको दान व भोगके द्वारा क्षीण कर रहे हैं। परन्तु विशाल भोगोंके बीचमें रहते हुए भी यह भावना करते हैं कि:—

हे चिदंबरपुरुष ! अनुपम सुज्ञान राज्यको दशों दिशाओंमें व्याप्त करते हुए एवं नवीन कांति व रूपको धारण कर मेरे हृदय में सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन् ! आप गरीबोंके आधार हैं। विद्वानोंके मनोहर हैं। विवेकियोंके मान्य हैं। इसलिए हे पारसके समान इच्छित फल देनेवाले निरंजन सिद्ध ! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

॥ इति राज्यपालन संधिः ॥

—×—

अथ भरतेशनिर्वेगसंधिः ।

भरतेशकी कीर्ति त्रिभुवनमें व्याप्त होगई है। भरतेशके तेजके सामने सूर्य भी फीका पडता है। इस प्रकारकी वृत्तिसे सम्राट् राज्यका पालन कर रहे हैं। चतुरंगके खेलके शिवाय लोकमें युद्धक्षेत्रमें उसको प्रतिभट करनेवाले वीर नहीं है। समुद्र स्वयं अपने तटको दबाकर जाता है, अपितु मदसे लोकमें कोई उसे दबानेवाले नहीं है ! उसकी वीरतासे भिन्न २ देशके राजा पहिले उनके वशमें आगये हैं। अब वे भरतके शृंगार व उदार गुण के लिए भी मोहित हो गये हैं, एवं सदा उनकी सेवा करते हैं। भरतेशके सौंदर्य, शृंगार, बुद्धिमत्ता एवं गांभीर्यके लिए पाताल लोक, नरलोक, सुरलोकमें प्रसन्न न होनेवाले कोई नहीं है। अंतरंगमें पंचसंपत्ति और बाहर अतुल भाग्यके साथ साम्राज्य वैभव भोगको भोगते हुए उन्होने बहुत आनंदके साथ बहुतकाल व्यतीत किया।

भरतेश्वरका आयुष्य चौरासी लाख पूर्व वर्षोंका था। ७० खरब व छप्पन अर्बुद वर्षोंका एक पूर्व होता है। ऐसे ८४ लाख पूर्व वर्षोंकी स्थिति भरतचक्रवर्तिकी थी। इतने दीर्घ समयतक वे सुखका अनुभव कर रहे थे। योगकी सामर्थ्यसे शरीरका तेज बिलकुल कम नहीं हुआ। जवानोंकी ही कोमल मूछे, बाल सफेद नहीं होते। सारांश यह है कि भरतेश सदा भरजवानीमें ही भोगको भोग रहे हैं। धन्य है। यह

क्या प्राणायामकी सामर्थ्य है ? अथवा ब्राह्मणोंके आशिर्वादका फळ है या जननीके आशिर्वादका फळ है, अथवा जिनसिद्ध या हंसनाथ परमात्माकी महिमा है, न मालुम क्या, परन्तु उनकी जवानीमें कोई कमी नहीं होती है। "चिंता ही बुढापा है, संतोष ही यौवन है" इस प्रकार कहनेकी परिपाटी है। सचमुचमें भरतेशको कभी किसीकी चिंता नहीं है, सदा आनंद ही आनंद है। फिर बुढापा कहांसे आ सकता है! बूढी स्त्रियोंके साथ भोग करनेसे बुढापा जल्दी आ सकता है। सुंदरी जवान स्त्रियोंके साथ सदा भोग करने वाले भरतेशको बुढापा क्योंकर आ सकता है ? हमेशा जवानी ही दिखती थी।

राजगण छांट छांटकर उत्तमोत्तम कन्यावोंको लाकर भरतेश्वरके साथ विवाह करते थे। उनको भरतेश भोगते थे। जब वे स्त्रियां वृद्धत्वको प्राप्त होती तो उनको छोडकर नवीन जवान स्त्रियोंके साथ भोग करते थे।

उन तरुणियोंके साथ संभोग करते हुए एवं आनंद मनाते हुए शरीरके मदको बुद्धिमान भरतेश कम करते थे। एवं इसी प्रकार उस परमात्माके दर्शनसे कर्मकी निर्जरा करते थे। अंतःपुरकी देवियां यदि आपसमें आनंदसे खेलना चाहें तो उनको भरतेश खेलकूदमें लगाकर स्वयं राजदरबारमें पहुंचकर वहांपर राजाओंको प्रसन्न करते थे।

एक दिनकी बात है। भरतेश बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओंके दरबारमें सिंहासन पर विराजे हुए हैं। उस समय एक घटना हुई।

वहांपर जो मुखचित्रक था, उसने भरतेशको दर्पण दिखाया। शायद इसलिए कि सम्राट् देखें कि अपना मुख बराबर है या नहीं ? भरतेशने दर्पणमें अच्छीतरह देखा। मुख थोडासा झुका हुआसा मालुम हुआ। शायद भरतेशने विचार किया कि इस राज्यपालनकी अब जरूरत नहीं है। बारीकीसे देखते हैं तो भरतेशके कपालमें एक झुरकी देखनेमें आई। शायद वह मुक्तिकांताकी दूती ही तो नहीं। उसे मुक्तिलक्ष्मीने भरतेशको शीघ्र बुलानेके लिए भेजी हो, इस प्रकार वह मालुम हो रही थी।

भरतेशने उसी समय विचार किया कि ध्यानयोगके धारण करनेवालेके शरीरमें इस प्रकार अंतर हो नहीं सकता है। फिर इसमें क्या कारण है? आश्चर्यके साथ जब उन्होंने अवधिज्ञानका उपयोग किया तो मालुम हुआ कि आयुष्य कर्म बहुत कम रह गया है। अब मुझे मुक्ति अतिसमीप है, कल ही मुझे मोक्षसाम्राज्यका अधिपति बनना है। इस प्रकारका योग है। घातियाकर्मोंका तो आज ही नाश होना है। इस प्रकार उनको निश्चित रूपसे मालुम हुआ।

भरतेश अंदरसे हंसते हुए ही विचार करने लगे कि ओहो! मैं भूल ही गया हुआ था, अब इस झुरकीने आकर मुझे स्मरण दिलाया। अच्छा हुआ। चलो, आगेका कर्तव्य करना चाहिये।

संसारसुखकी आशा विलीन हुई। अब सम्राट्के हृदयमें वैराग्यका उदय हुआ। वह विचार करने लगा कि मुक्ति अब अत्यंत निकट है। संसार और भोगमें कोई सार नहीं है। जब शरीरमें जर्जरितदशा देखनेमें आई तो अब कन्यावोंके साथ क्रीडा करना क्या उचित है? बस रहने दो, मेरे लिए धिक्कार हो। तपश्चर्यारूपी दुग्धको सेवन न कर केवल मुग्धोंके समान विषयविषको सेवन करते हुए मैं आज पर्यंत दग्ध हुआ। हाय! कितने दुःखकी बात है?

"मेरे आचारके लिए धिक्कार हो। तपश्चर्यारूपी क्षीरसमुद्रमें डुबकी न लगाकर जडदेहसुखरूपी लवणसमुद्रको पीते हुए फिर भी प्यासा ही प्यासा रहा। हाय! कितने दुःखकी बात है। ध्यानरूपी अमृतको पान न कर आत्मानंदका अनुभव नहीं किया। केवल शरीरके ही सुखमें मैं मग्न हुआ। देखो! मेरे सहोदर तो मूछ आनेके पहिले ही दीक्षा लेकर चले गये एवं अमृतपदको पागये। परंतु मैने ही देरी की। सहोदरोंकी बात क्यों? मेरे शरीरसे पैदा हुए मेरे पुत्रोंने दीक्षा लेकर मुक्तिस्थानको प्राप्त किया। इससे अधिक मेरी मूर्खता और क्या होसकती है? मेरे पिताजी, श्वशुर, मामा, साले आदि सभी आप्त आगे

बढगये । मैं अकेला ही पीछे रहा । हाय ! अत्यंत खेदकी बात है । अच्छा ! वे आगे गये । मुझे भी मार्ग है, मैं भी जावूंगा । मुझे तपश्चर्याका योग है । तपश्चर्याके योग्य स्वपरतत्वका ज्ञान है । एवं विपुल आत्मयोग है । उसके द्वारा कर्मको नष्ट करके मैं मुक्तिको जावूंगा ", इस प्रकार सम्राट्ने दृढनिश्चय किया ।

बुद्धिसागर मंत्रीने हाथ जोडकर प्रार्थना की कि स्वामिन् ! आप यह क्या विचार करने लगे हैं । इस षट्खंडाधिपत्यसे बढकर संपत्ति कहां है ? इसलिए आप इस सुखको अनुभव करो । तपके तापकी अभी जरूरत ही क्या है ! आपको यहांपर किस बातकी कमी है ?। धरणीतलपर स्थित समस्त शासक राजा आपके चरणोंमें मस्तक रखते हैं । मनुष्य लोकके सर्व श्रेष्ठ श्रीमंतीको छोडकर अन्य विचार आप क्यों कर रहे हैं राजन् ! छोडो इस विचारको ।

सम्राट्ने कहा कि मंत्री ! क्या उस दिन पिताजी दीक्षा लेकर चले गये, क्या उनके पास कुछ भी संपत्ति नहीं थी ? इसलिए बुद्धिमान्के लिए यह शरीर स्थिर नहीं है । इसलिए अपना हित सोच लेना चाहिए । यह तो बिलकुल ठीक बात है कि जिनके हृदयमें वैराग्य नहीं है, केवल तपश्चर्याके लिए जाते हैं तो वह तप भारभूत है । परन्तु ज्ञानी विरक्तिके लिए वह तपश्चर्या गुडके अंदर प्रविष्ट होनेवालेके समान मधुर हैं । ज्ञानरहित आत्माके कर्म पत्थरके समान कठिन है । परन्तु ज्ञान प्राप्त होनेके बाद वह कठिन नहीं है, अत्यंत मृदु है । षट्खंडको जीतनेसे क्या होता है । जबतक कर्मके तीन कांडोंको यह जीत नहीं लेता है तबतक तीन रत्नों (रत्नत्रय- सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र) को ही ग्रहण करना चाहिये । इन चौदह मणियोंसे क्या प्रयोजन है ? सम्राट् जब बोल रहा था तो उस दरबारमें ऐसा मालुम हो रहा था कि अमृतकी वर्षा हो रही हो । मंत्रीने कहा कि स्वामिन् ! हम तो आपके विवेकके प्रति मुग्ध हुए हैं । अमृतके सामने गुडकी कीमत ही क्या

है ? बुद्धिमत्ता, वीरता, आदिमें आपकी बराबरी करनेवाले लोकमें कौन हैं ? आपकी वृत्तिको देखकर बुद्धिमान् लोग ज्ञानी लोग, वीरपुरुष सभी प्रसन्न होते हैं। राजेंद्र ! आपका शपथ है, मुझसरीखा मूर्ख उसे क्या जान सकता है'। मैंने अज्ञानसे एक बात कही। आप क्षमा करें। आपने जो विचार किया है वही युक्त है। मेरे अपराधको आप भूल जावें। इस प्रकार प्रार्थनाकर बुद्धिसागर अपने स्थानपर बैठ गया।

सम्राट्ने अपने पुत्रोंको बुलाया। बडे भैया ! " इधर आवो, इस राज्यको तुम लेलो, मुझे दीक्षाके लिए भेजो ", इस प्रकार कहते हुए अर्ककीर्ति कुमारको आलिंगन देते हुए भरतेशने कहा ! उसी समय आंसू बहाते हुए अर्ककीर्ति मूर्छित होगया। शीतलोपचारसे पुनः जागृतकर सम्राट्ने कहा कि बेटा ! घबराते क्यों हो, क्या क्षत्रिय लोग डरते हैं ! दुःख किस लिए करते हो ? मुझे धैर्यके साथ भेजो।

अर्ककीर्तिकुमारने हाथ जोडकर कहा कि पिताजी, क्या हाथीका भार कलभ (हाथीका बच्चा) धारण कर सकता है ? आपकी सामर्थ्यसे प्राप्त इस राज्यभारको मैं कैसे उठा सकता हूं। इसलिए ऐसा विचार क्यों कर रहे हैं ?।

उत्तरमें सम्राटने कहा कि बेटा ! तुम इस राज्यभारको धारण करनेके लिए सर्वथा समर्थ हो। इस बातको जानकर ही मैंने सब कुछ कहा है। बेटा ! क्या तुम भूल गये ! जब मैं उस दिन वृषभराजको अपनी गोदपर लेकर बैठा था, उस समय उसे भार समझकर तुमने अपनी गोदपर लिया, फिर आज इस राज्यभारके लिए क्यों तैयार नहीं होते ?

अर्ककीर्ति कहने लगा कि पिताजी ! बडी २ बातें करके मुझे आप फुला रहे हैं। एवं अचलित शिवपदके प्रति आपका ध्यान है और मुझे इस मलिन राज्यपदमें डाल रहे हैं, क्या यह न्याय है ? आजपर्यंत आपको जो इष्ट थे उन्ही अन्न वस्त्र, आभूषणोंसे आपने मेरा पालन किया, परन्तु आज आपको जिस राज्यसे तिरस्कार है ऐसे राज्यको

मुझे क्यों प्रदान कर रहे हैं ? आजपर्यंत हमारे इष्ट पदार्थोंको बार २ देकर हम लोगोंका पालन पोषण किया। परंतु आज तो आप हमें व आपको जो इष्ट नहीं है, ऐसे राज्यको प्रदान कर रहे हैं तो हमने आपको क्या कष्ट दिया था ?

बेटा ! तुम बोलनेमें चतुर हो। इस बातको मैं जानता हूं। यह राज्य मूर्खके लिए कष्टदायक है, बुद्धिमान् विवेकीके लिए कष्ट नहीं है। इष्ट ही है। इसलिए इस पट्टके लिए सम्मति दो। देरी मत करो। इस प्रकार सम्राट्ने कहा।

उत्तरमें कुमारने निर्भीड होकर कहा कि स्वामिन् ! आप तो मोक्ष राज्यको चाहते हैं ? और हमें तो इस भौतिकराज्यमें रहनेकी अनुमति दे रहे हैं, इसे हम कैसे मान सकते हैं। इसलिए मुझे भी दीक्षा ही शरण है, मैं भी आपके साथ ही आता हूं।

पुनः सम्राट्ने कहा कि बेटा ! मेरे पिताजीने मुझे राज्य देकर दीक्षा ली। और मैं तुमको राज्य देकर दीक्षित होऊं यही उचित मार्ग है, इसे स्वीकार करो। कुछ समय रहकर बादमें हमारे समान तुम भी तपश्चर्याके लिए आना। बेटा ! संसारमें राज्यसुखको आनंदसे भोगकर बादमें अपने पुत्रको राज्य देकर दीक्षा लेनी चाहिए व मुक्तिराज्यको प्राप्त करना चाहिये। यही हमारा आनुवंशिक कुलाचार है। क्या इसे तुम उल्लंघन करते हो ? इसलिए मुझे आगे भेजो, बादमें तुम आना। यही तुम्हारा कर्तव्य है।

अर्ककीर्तिकुमार निरुपाय होकर कहने लगा कि पिताजी ! ठीक है, कपालमें एक झुरकीके दिखनेसे क्या होता है। इतनी गडबडी क्या है ? कुछ दिन ठहरिये। बादमें दीक्षा ले सकते हैं। इसलिए अभी जल्दी नहीं करें। उत्तरमें सम्राट्ने कहा कि ठीक है ! रह सकता हूं। परन्तु आयुष्य कर्म तो बिलकुल समीप आ पहुंचा है। आज ही घातियाकर्मोंको नाश करूंगा। और कल सूर्योदय होते ही मुक्ति प्राप्त करनेका योग है।

इस बातको सुनते ही अर्ककीर्तिके हृदयमें बडे भारी धक्का लगा। एकदम स्तब्धसा रह गया। परन्तु सम्राट्ने यह कहकर उसे बोलने नहीं दिया कि यदि तुमने फिरसे कुछ कहा तो मेरी सौगंध है तुम्हे! यह राज्य तुम्हारे लिए है, युवराजपद आदिराजके लिए हैं, और बाकीके कुमारोंको छोटे २ राज्योंको देता हूं। इस प्रकार कहते हुए अपने दूसरे पुत्रोंके तरफ राजाने देखा।

वृषभराज! तुम्हे किस राज्य की इच्छा है? बोलो। उत्तरमें उस कुमारने निश्चयपूर्वक कहा कि मुझे मोक्षनामक राज्यकी इच्छा है। मैं तो पिताजीके साथ ही आवूंगा। इस राज्यमें तो हरगिज नहीं रहूंगा।

हंसराजको बुलाकर पूछा गया तो उसने संशयरहित होकर कहा कि मैं सिद्धलोकके सिवाय और किसी राज्यसे प्रसन्न नहीं हो सकता हूं। यह बात मैं हंसनाथके साक्षीपूर्वक कहता हूं। बाकीके कुमारोंने भी सामने आकर निश्चल चित्तसे कहा कि स्वामिन्! हम तो आपके पास ही रहेंगे! यहां नहीं रह सकते हैं।

सम्राट् भरतने सोचा कि सबको समझाकर सांत्वना देनेके लिए मेरे पास समय नहीं है, अब जो होगा सो होगा। इस प्रकार सिंहासनसे उठकर खडे हुए। अर्ककीर्तिकुमारको हाथ पकडकर सिंहासनपर बैठाल दिया। अपने किरीटको उतारकर उसके मस्तकपर रखा। उपस्थित सर्व जनताने जय जयकार किया। कंठहारको धारण कराकर नवीन पट्टको बांधदिया एवं घोषित किया कि तुम ही अब इस राज्यके अधिपति हो। तिलक लगाकर उसके पट्टाभिषेकका कार्य पूर्ण किया। पासमें ही स्थित छोटेसे सिंहासनपर आदिराजको बैठाल दिया। एवं रत्नहार पहनाकर तिलक लगाया, घोषित किया कि यह युवराज है। अंतमें कहा कि बेटा! प्रजा है, परिवार है, देश है, राज्य है। सबके मनको जानकर उनको प्रसन्न करके राज्यका पालन करना यह तुम्हारा कर्तव्य है। अब मुझे अधिक बोलनेके लिए समय नहीं है। इस प्रकार सर्व पुत्रोंको संकेत किया।

वे कुमार आंसू बहा रहे थे। इधर सम्राट्‌ने राजसमूहको देखकर कहा कि आपलोग अब मेरी चिंता न करें। अब इन कुमारोंके प्रति ध्यान देकर उनको अनुकूल होकर रहें। इस प्रकार सबके प्रति एकदम इशारा किया।

दुनियाका झंझट दूर होगया। अब भरतेशको किसी बातकी चिंता नहीं रही। अपनी स्त्रियां, मंत्री, मित्र वगैरे किसीका ध्यान नहीं रहा। परमात्माका स्मरण करते हुए वह उसी क्षण आगे बढगया। अर्ककीर्ति आदिराज आदि कुमार आगे बढकर उनके चरणोंमें पडे और आंसू बहाते हुए उनको आगे बढनेसे रोकने लगे। पितृवियोगको कौन सहन कर सकते हैं ? क्या भरतराजेंद्रने उन रोते हुए पुत्रोंकी ओर देखा ? नहीं ! अब तो उनके हृदयमें मोहका अंश बिलकुल नहीं है। उन पुत्रोंको रोते हुए ही छोडकर मदोन्मत्त हाथीके समान आनंदके साथ तपोवनकी ओर बढे। दरबारमें स्थित राजा, प्रजा और परिवार तो उन्हींके साथ आगे बढकर आये एवं सम्राट्‌के सामने पलकी लाकर रख दी। भरतेश आत्मलीलाके साथ उसपर आरूढ हुए।

सम्राट् दीक्षावनकी ओर चले गये, यह मालुम होते ही अंतःपुरमें एकदम हाहाकार मचगया। धूपमें पडे हुए कोमल पत्तोंके समान रानी-वासमें स्थित देवियां मूर्छित होकर गिरपडी। उसी समय उनका प्राण ही निकल जाता। परंतु अभीतक सम्राट् शरीरको धारण किये हुए हैं। उन्हे हम लोग देख सकती हैं, इस अभिलाषासे वे आकुलित होरही थीं। हाय ! षट्खंडाधिपति सम्राट्‌का भाग्य देखते २ अदृश्य होगया ! इस संसारके लिए धिक्कार हो। इस प्रकार वे स्त्रियां दुःख कररही थीं। लोग कहते थे कि षट्खंडाधिपतिकी बराबरी करनेवाले लोकमें कोई नहीं है, इसकी संपत्ति अतुल है। तथापि एक क्षणमें यह संपत्ति अदृश्य होगई, आश्चर्यकी बात है। इस प्रकार वे दुःख करने लगी। हमेशा पतिदेव हमसे कहते थे कि आयुष्यकर्मका क्षय होनेके बाद

कौन रह सकता है, उसी बातको आज उन्होंने प्रत्यक्ष करके बताया। जीवनको बिगाडकर वे नहीं चलेगये, अपितु कल प्रातःकाल ही मुक्ति जानेवाले हैं यह सूचित कर चले गये हैं। इसलिए हमें भी दीक्षा ही गति हैं। अब सब लोग उठो, यह कहती हुई सभी देवियां चलनेके लिए तैयार हुईं। यदि सम्राट् महलमें होते तो हमलोग भी महलमें रहकर सुखका अनुभव करती थीं। परंतु अब वे तपोवनमें चले गये तब यहांपर रहना उचित नहीं है। वे जिस जंगलमें प्रविष्ट हुए वही हमारे लिए परमसुखका स्थान है।

हमारी आंखें व मनकी तृप्ति जिस तरह हो उस तरह हमने सुखका अनुभव किया। अब तपश्चर्याकर इस स्त्रीपर्यायको नष्ट करना चाहिए, एवं स्वर्ग लोकको प्राप्त करना चाहिए। इस प्रकारके निश्चयसे उदासीन वृद्ध स्त्रियां अंतःपुरकी रानियां वगैरे सभीने दुःखमें धैर्य धारणकर दीक्षा लेनेका निश्चय किया। जाते समय अपने पुत्रोंको आशिर्वाद दिया कि बेटा! आप लोग अपने पिताके समान ही सुखसे राज्यपालनकर बादमें मोक्षसुखको प्राप्त करना। हम लोग आज सुखके लिए दीक्षा वनमें जाती हैं। इस प्रकार कहती हुई आगे बढीं।

कुसुमाजी और कुंतलावती रानी भी अपने रोते हुए पुत्रोंको आशिर्वाद देकर धैर्यके साथ आगे बढी। पुत्रोंने भी विचार किया कि ऐसे समयमे इनको रोकना उचित नही है। अपने पतिके हाथसे ही इनको दीक्षा लेने दो। इस विचारसे उन माताओंको पालकीपर चढाकर रवाना किया। जो भाई दीक्षा लेनेके लिए गये थे उनकी स्त्रियां भी दीक्षाके लिए उद्यत हुईं। उनको भी माताओंके साथ ही पल्लकियोंमें भेजा।

नगरमें सर्वत्र स्त्रियां अपने घरोंमें ऊपरकी माडीपर चढकर रो रही हैं, प्रजा परिवारमें शोकसमुद्र ही उमड पडा है। स्त्रियां पीछेसे आ रही हैं, सम्राट् आगेसे जा रहे हैं। लोग आश्चर्यचकित होकर इस दृश्यको देख रहे हैं।

हाय ! हमारे स्वामीकी संपत्ति तो इंद्रधनुष्यके समान दिखकर अदृश्य होगई । संसारी प्राणियोंके सुखके लिए धिक्कार हो, इस प्रकार नगरमें सर्वत्र चर्चा होरही थी ।

बुढापा न पाकर तुमने आजतक जीवन व्यतीत किया, अपनी स्त्रियोंको जरा भी दुःख कभी नहीं दिया । परंतु आज तो चुपचापके जंगलको जारहे हो, कितने आश्चर्यकी बात है । नगरमार्गमें जाते हुए कभी आपको हम देखती हैं तो हमें स्वर्गसुखका ही आनंद मिलता है । हाय ! परंतु अब तो हमारी संपत्ति चली जारही है । स्त्रियां, पुत्र व पुत्रवधू आदिको तुमने षट्खंडको वशकर प्राप्त किया था, अब तो उन सबको लेकर आप तपके लिये जारहे हैं । हाय ! इसप्रकार वहां स्त्रियां दुःख कर रही थीं । शोक करनेवानेवाले नगरवासियोंको न देखकर सम्राट् अपने निश्चयसे परिवारके साथ भयंकर जंगलमें पहुंचे । वहांपर एक चंदनका वृक्ष था । उसके मूलमें एक शिलातल था । वहांपर भरतेश पल्लकीसे उतरे, वहां उपस्थित लोगोने जयजयकार किया । उस शिलातलपर खडे होकर एकबार सबकी ओर दृष्टि पसार कर देखा । म्लानमुखसे उन लोगोंने नमस्कार किया । पासमें अर्ककीर्ति और आदिराज भी थे । उनका मुख भी फीका पडगया था । परंतु बाकीके पुत्र तो हंस रहे थे । अर्थात् प्रसन्नचित्त थे । उनको देखकर सम्राट्को भी हंसी आई । मित्रगण प्रसन्न थे । अनेक राजा भी प्रसन्न थे । भरतेश समझगये कि ये सब दीक्षा लेनेवाले हैं । स्त्रियोंकी पल्लकियां भी आकर एकत्रित हुई । अब श्रृंगारयोगी भरतेशने दीक्षा लेनेके लिए अंतरंगमें तैयारी की । समस्त परिवारको दूर खडे होनेके लिए इशारा करके अपने पुत्र मित्र मंत्री आदि जो समीप थे उनसे एक परदा धरनेके लिए कहा एवं स्वयं दीक्षाविधिके लिए सन्नद्ध हुए ।

भरतेशका आत्मबल अचिंत्य है । उनका पुण्य अतुल है । वह लघुकर्मी हैं । जीवनके अंतसमयतक सातिशय भोगको भोगकर समय-

पर अपने आयुष्यको पहिचानना एवं अपने आत्महितकी ओर प्रवृत्त होना यह अलौकिक महापुरुषोंका ही कार्य है। यह हर एक मनुष्यके लिए साध्य नहीं है।

आज प्रातःकाल दरबारमें पहुंचने तक सम्राट्को मालुम नहीं था कि मेरे आयुष्यका अंत हो चुका है। मेरे घातिया कर्म जर्जरित हो चुके है, आज मुझे घातियां कर्मोंको नष्ट करना है। कल प्रातःकाल सूर्योदय होते ही शेष सर्व कर्मोंको नष्ट करके सिद्ध लोकमें पहुंचना है। अंतःपुरसे दरबारमें आने तक उनको यह मालुम नहीं था। परन्तु अकस्मात् दरबारमें आनेपर उनको यह सब दृष्टिगोचर हुआ। उन्होंने अपने आत्महितको पहिचान लिया। देखा कि अब देरी करनेसे लाभ नहीं। उस समय राज्यका लोभ नहीं। रानियोंकी चिंता नहीं, पुत्रोंका मोह नहीं। हजार वर्षके अभ्यस्त योगीके समान निकलकर चला जाना सचमुचमें आश्चर्यकी बात है। भरतेश सदा इस बातकी भावना करते हैं-

हे परमात्मन् ! तुम तो अदृश्य पदार्थोंको भी दृश्य कर देनेवाले परंज्योति हो। इसलिए सदा प्रज्वलित होते हुए मेरे हृदयरूपी कोठडीमें बने रहो। यदि चले जावोगे तो तुम्हें मेरा शपथ है।

हे सिद्धात्मन् ! आप दानियोंके देव हैं। रक्षकोंके देव हैं। भव्योंके देव हैं, मेरे लिए सबसे बढकर देव हैं, विशेष क्या ? हे निरंजनसिद्ध ! आप देवोंके भी देव हैं। इसलिए मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इसी भावनासे वे लोकविजयी होते हैं।

॥ इति भरतेशनिर्वेगसंधि ॥

—०—

अथ ध्यानसामर्थ्यसंधि

परदेके अंदर उस सुंदर शिलातलपर भरतेश सिंहासनसे बैठकर अब दीक्षाके लिए सन्नद्ध हुए हैं। उनका निश्चय है कि मेरे लिए कोई गुरु नहीं है। मेरे लिए मैं ही गुरु हूं, इस प्रकारके विचारसे वे स्वयं दीक्षित हुए। वस्त्राभूषणोंसे सर्वथा मोहको उन्होंने परित्याग कर अलग किया। वस्त्राभूषणोंकी शोभा इस शरीरके लिए है, आत्माके लिए तो शरीर भी नहीं है, फिर इन आभरणोंसे क्या तात्पर्य है ! इस प्रकार उन वस्त्राभरणोंसे मोह हटाकर शरीरसे उनको अलग किया।

कोटिचंद्रसूर्योंका प्रकाश मेरे आत्मामें है। फिर इस जरासे प्रकाशसे युक्त शरीरशोभासे क्या प्रयोजन ? यह समझते हुए सर्व परिग्रहोंका परित्याग किया। बादमें केशलोच किया। भगवान् आदिनाथको केशोंके होते हुए कर्मक्षय हुआ, तथापि उपचारके लिए केशलोचकी आवश्यकता है। इस विचारसे उन्होंने केशलोच किया। उसे केशलोच क्यों कहना चाहिए। मनके संक्लेशका ही उन्होंने लोच किया। वह शूर भरतयोगी आंख मीचकर अपने आत्माकी ओर देखने लगे, इतनेमें अत्यंत प्रकाशयुक्त मनःपर्यय ज्ञानकी प्राप्ति हुई।

अब मुनिराज भरत महासिद्ध बिंबके समान निश्चल आसनसे विराज कर आत्मनिरीक्षण कर रहे हैं। बाह्यसामग्री, परिकर वगैरे अत्यंत सुंदर है। ध्यानमें जरा भी चंचलता नहीं है, वे आत्मामें स्थिर होगये हैं।

जिस प्रकार बाह्यसाधन शुद्ध हैं उसी प्रकार अंग भिन्न है, आत्मा भिन्न है, इस प्रकार भेद करके अनुभव करनेवाला अंतरंगसाधन भी परिशुद्ध रूपसे उनको प्राप्त है। अतएव भंगुरकर्मोंको अष्टांगयोगमें रत होकर भंग कर रहे हैं।

योगी अपने आपको देख रहा था। परन्तु उससे घबराकर कर्म तो इधर उधर भागे जा रहे हैं। जैसे २ कर्म भागे जा रहे हैं आत्मामें सुज्ञानप्रकाशका उदय होता जा रहा था। कर्मरेणु अलग

होकर जब आत्मदर्शन होता तो ऐसा मालुम हो रहा था कि जमीनमें गढी हुई रत्नकी प्रतिमा मट्टीको खोदनेपर मिलरही हो। कल्पना कीजिये, मूसलधार वृष्टिके बरसनेपर मट्टीका पर्वत जिस प्रकार गळ गळ कर पडता है, उसी प्रकार परमात्माके ध्यानसे कर्मपिंड गळता हुआ दिखाई दे रहा था।

जलती हुई अग्निमें यदि लकडी डाले तो जैसे वह अग्नि बढती ही जाती है, उसी प्रकार कर्मोंके समूहके कारण वह ध्यानरूपी अग्नि भी तेज होगई है।

घोरकर्म ही काष्ठ हैं, शरीर ही होमकुंड है, ध्यान ही अग्नि है। इस दीक्षित धीरयोगीने उस होमके द्वारा संसाररूपी शत्रुको नाश करनेका ठान लिया है। दोनों आंखोंको मीचनेपर भी उन्होंने सुज्ञानरूपी बडे नेत्रको खोल दिया है। वह नेत्र अग्निस्वरूप है। उसके द्वारा कर्मवैरीके निवासस्थानभूत तीन शरीररूपी तीन नगरोंको जलानेका कार्य हो रहा है। प्रलयकालकी अग्निसे जिस प्रकार लोकके समस्त पदार्थ जलकर खाक हो जाते हैं, उसी प्रकार उस तपोधनके ध्यानाग्निके द्वारा कर्म जलकर खाक हो रहा है एवं अपने स्थानको छोड रहा है। वह प्रतापी दिग्विजयके समय विजयार्धमें वज्रकपाटको तोडकर अंदरसे निकली हुई भीषण अग्निको घोडेपर चढकर जिस प्रकार देख रहा था उसी प्रकार कर्मकपाटको तोडकर अपने भावोंमें खडे होकर उस कर्मको जलानेवाले अग्निको देख रहा है।

दिग्विजयके समय काकिणी रत्नके द्वारा गुफाके अंधकारको निराकरण किया था, उस बातको मालुम होता है कि यह भरतयोगी अभी भूल नहीं गया है। अतएव उसका प्रयोग यहां भी कर रहा है, यहां पर ध्यानरूपी काकिणीरत्नसे देहरूपी गुफामें महान् प्रकाश व्याप्त हो रहा है।

भरतेशने संसारसे विरक्त होकर चक्ररत्नका परित्याग किया तो यहां ध्यानचक्रका उदय हुआ। अब आगे शक्र (देवेंद्र) आकर इसकी सेवा करेगा। एवं मुक्ति साम्राज्यका अधिपति बनेगा। सो हमेशा वैभव ही वैभव है। आश्चर्य है, मुनिकुलोत्तम भरत ध्यान पराक्रमसे हंसनाथ (परमात्मा) को दे रहा है। उसी समय कर्मका विध्वंस हो रहा है एवं आत्मांशु [कांति] बढता ही जा रहा है।

जिस प्रकार बांधको तोडनेपर रुका हुआ पानी एकदम उतरकर चला जाता है, उसी प्रकार बंधको तोडनेपर रुका हुआ कर्मजल निकलकर चारों ओर जाने लगा। मस्तकपर रखे हुए धान्यकी पोटरीसे कुछ धान्य निकालनेपर वह थोडसी हलकी हो जाती है उसी प्रकार कर्मोंका अंश कुछ कम होनेपर योगीको अपना भार कम हुआसा मालुम होने लगा। कई परदोंके अंदर रखे हुए दीपक, जिस प्रकार एक एक परदेके हटनेपर अधिक प्रकाशयुक्त होता है उसी प्रकार कर्मोंके आवरणके हटनेपर आत्मज्योति बढती गई एवं बाहर भी उसकी कांति प्रति बिंबित होने लगी। पहिले अक्षरात्मक ध्यानसे रत्नमालाके समान आत्माका अनुभव कर रहा था, अब वह नष्ट होगया है। केवल आत्मनिरीक्षणका ही कार्य हो रहा है। पहिले धर्मध्यान था, इसलिए उसमें अत्यधिक प्रकाश नहीं था, और पदस्थ पिंडस्थादि अक्षरात्मक रूपसे उसका विचार हो रहा था। परन्तु अब उस योगीके हृदयमें परम शुक्लध्यान है, उसमें अक्षरोंका विकल्प नहीं है। केवल आत्मकलाका ही दर्शन हो रहा है। सूर्यके समान शुक्लध्यान है, चंद्रमाके समान धर्म्य ध्यान है। चंद्रमाके सामने नक्षत्र दिखते हैं, परन्तु सूर्यके सामने नक्षत्रोंका दर्शन नहीं हो सकता है। उसी प्रकार शुक्लध्यानके सामने अक्षरात्मक विचार नहीं रह सकते हैं, केवल आत्मप्रकाशकी वृद्धि होकर सुज्ञानका अनुभव हो रहा है।

विविध शब्दब्रह्म उस परब्रह्ममें अंतर्लीन हो गया हो इस प्रकार सूचित करते हुए वह परमात्मयोगी इस समय व्यवहारको छोडकर

निश्चयपर आरूढ हुआ है एवं आत्मानुभवमें मग्न है। ध्यानके समय ध्यान, ध्येय, ध्याता व ध्यानका फल इस प्रकार चार विकल्प होते हैं। परंतु वहांपर वह दिव्ययोगी अकेला स्वयं स्वयंमें मग्न होते हुए परमात्मयोगका अनुभव कर रहा है। भेददृष्टिका विचार बंधका कारण है। अभेदात्मक अध्यवसाय ही मोक्ष है। यह मोक्ष सम्यग्ज्ञान सिद्धांतके द्वारा ही साध्य है, अतः वह योगी उस समय स्वसंवेदनमें मग्न था।

उस आत्मयोगको वचनके द्वारा कैसे वर्णन कर सकते हैं? क्यों कि वचन तो जड है, और वह आत्मा ज्ञानरूपी है। इसलिए जो आत्मासे ही आत्माको जानता है, अनुभव करता है उस आत्माको आत्मसिद्धि होती है। मस्तकसे लेकर पादतक निर्मलज्ञान ही पुरुषाकारसे भरा रहता है, एवं उज्वल कांतिको बढा रहा है, उस ध्यानकी महत्ता को भरतयोगींद्र ही जान सकता है। मुखकी छाया प्रसन्नतासे युक्त है, शरीर अत्यंत स्थिर है। उक्त योगीके शरीरमें नवीन कांति बढ रही है। कर्मरेणु तो झरते जा रहे हैं, आत्मकांति तो बढती जा रही है। बालसूर्यके प्रकाशमें ऐक्य होनेवालेके समान वह योगिरत्न परमात्मकलामें मग्न है।

बाह्य सर्व झंझटोंको छोडकर अपने घरमें जाकर विश्रांति लेनेवाले व्यक्तिके समान वह राजा उस समय दुनियाकी चिंताको छोडकर अपनी आत्मामें विश्रांति ले रहा है।

संसारके अस्थिर भवोंमें भ्रमण करते हुए अनेक परस्थानोंको प्राप्त किया एवं उनको दुस्थानके रूपमें अनुभव किया। अतएव उनको छोडकर अब स्वस्थानमें निवास किया है।

तीन लोकमें स्थानलाभ तो अनेक समयतक अनेक बार हुआ। परन्तु आत्मस्थानलाभ तो बार २ नहीं हुआ करता है, वह तो क्वचित ही होता है, अब उसकी प्राप्ति हुई है। इससे बढकर और क्या भाग्य होगा! अनेक राज्योंपर शासन किया, परन्तु वे सब राज्यवैभव नश्वर ही प्रतीत हुए। इसलिए उन राज्यवैभवोंमें कोई महत्व नहीं है। अतएव इस अनुपम आत्मराज्य-वैभवपर वह सम्राट् आरूढ होगया है।

आज वह आत्मा अपने शरीरके प्रमाणसे है। परंतु कल वह तीन लोकमें व्याप्त होता है। परमात्मसाम्राज्यकी महत्ता अनुपम है। उसी साम्राज्यका अब वह राजा है।

पहिले मंत्री, सेनापति आदिके द्वारा परतंत्रतासे राज्यपालन होरहा था। उससे भरतेशकी तृप्ति हुई। अब आत्मराज्यको पाकर स्वतंत्रतासे उसका पालन कर रहा है। पहिलेके राज्यको नरेशने अस्थिर समझा था, और आत्मराज्यको स्थिर समझा था। अस्थिर तो अस्थिर ही ठहरा, स्थिर तो स्थिर ही ठहरा। भरतेशका ज्ञान अन्यथा क्योंकर होसकता है? भरतेश गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी मातृप्रेम, पितृप्रेम, पुत्रमोह व स्त्रियोंके मोहको माया ही समझते थे। एवं हमेशा अपने आत्मामें रत रहते थे। वह विचार सत्य सिद्ध हुआ। बाह्यमें लोकप्रसन्न हो इस प्रकारका व्यवहार और अंतरंगमें आत्मसुखके अनुभवको स्वीकार करते हुए उन्होने विवेकसे काम लिया। वह विवेक आज काममें आया।

अब तो भरतेशके शरीरमें अणुमात्र भी परसंग अर्थात् परिग्रह नहीं है। अब शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है, कर्मवर्गणा भी आत्मासे भिन्न है। इस प्रकारके अनुभवसे स्वयं अपनी आत्मामें स्थिर होगये हैं, कर्मवर्गणायें इधर उधर निकल भागरही हैं।

इंद्रिय, शरीर, मन, वचन, और कर्मसमूह आदि आत्मासे भिन्न हैं, आत्मा उनसे भिन्न है, मैं तो द्रव्यभावोंसे परिशुद्ध हूं। इस प्रकारके विचारसे वह योगींद्र स्वयंको ही देख रहा है।

आत्माको शुद्धविकल्पसे देखा जाय तो वह शुद्ध है। बद्ध विकल्पसे देखा जाय तो वह बद्ध है। सिद्धांतके द्वारा वह देखनेमें नहीं आ सकता है। आत्माके द्वारा आत्माको निबद्ध करनेपर आत्मदर्शन होता है।

शास्त्रोंमें आत्मगुणोंका वर्णन है, एवं आत्मामें आत्माको स्थिर करनेके उपाय भी बताये गये हैं। परंतु वह आत्मा वचनगोचरातीत है। अतः वचनसे उसका साक्षात्कार कैसे हो सकता है?। अपितु नहीं हो सकता है, अनुभवसे ही उसका दर्शन होना चाहिये।

ध्यानके प्रारंभमें उन्होंने विचार किया कि कर्म भिन्न है, और आत्मा भिन्न है। आत्मध्यानमें मग्न होनेके बाद यह विकल्प भी दूर हुआ। केवल आत्मामें तल्लीन हुआ। उसके बाद गुरु हंसनाथ ही मैं हूं इस प्रकारका विकल्प था। परन्तु ध्यानकी विशुद्धिमें वह विकल्प भी दूर होगया है। अब तो वह योगी निर्विकल्पक समाधिमें मग्न है।

कर्म तो क्रम २ से ढीले होकर गिरते जारहे हैं। आत्मविज्ञान बढता जा रहा है। वह तपोधन जब एकाग्रचित्तासे ध्यानमें अविचल होकर रहा तो तीन लोक कंपित होने लगा। चंचल मनको अत्यंत निश्चल बनाकर आत्मामें उसे अतर्लीन किया। वह वीर आत्मध्यानमें मग्न हुआ तो तीन लोक कांपे इसमें आश्चर्य क्या है? उस समय स्वर्गमें देवेंद्रको शचीमहादेवी पुष्प दे रही थी। उस समय बैठे हुए मंचके साथ वह पुष्प भी एकदम कंपित हुआ तो देवेंद्रने कारणका विचार किया और अपनी देवीसे आश्चर्यके साथ कहने लगा कि भरतेश मुनि हो गया है। धन्य है! अधोलकमें धरणेंद्रका आसन कंपायमान हुआ तो उसकी देवी घबराकर पतिको आलिंगन देकर खडी हुई, तब धरणेंद्रने अवधिके बलसे विचार किया और भरतेशके मुनि होनेका समाचार अपनी देवीको सुनाया।

एक स्थानमें एक पत्थरके ऊपर सिंह था, वह पत्थर एकदम कंपित हुआ तो पत्थरके साथ सिंह उल्टा शिर करके पड गया एवं घबराकर एक जगह खडा रहा। जिस प्रकार आंधी चलनेपर वृक्षलतादिक हिल जाते हैं उसी प्रकार यह भूलोक ही एकदम कंपित होने लगा। भरतेशकी ध्यानसामर्थ्यका कहांतक वर्णन कर सकते हैं?

भोगमें रहकर जिस वीरसम्राट्ने व्यंतर, विद्याधर आदियोंके मस्तकको अपने चरणोंमें झुकवाया वह योगमें रत होकर तीन लोकमें सर्वत्र अपना प्रभाव डाले इसमें आश्चर्य क्या है?

आत्मज्योति बराबर बढ रही थी, इधर कर्मरेणु ढीले होकर निकल

रहे थे। उसे आगममें श्रेण्यारोहणके नामसे कहते हैं । उसका भी वहांपर वर्णन करना प्रासंगिक होगा। सिद्धांतमें चौदह गुणस्थानोंका कथन है। परंतु अध्यात्म दृष्टिसे उन चौदह गुणस्थानोंके तीन ही विभाग हो सकते हैं। बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्माके भेदसे तीन विभाग करनेपर चौदह गुणस्थानोंमें विभक्त सभी जीव अंतर्भूत हो सकते हैं। पहिले तीन गुणस्थानवाले बहिरात्माके नामसे पहिचाने जाते हैं। आगेके तो गुणस्थानवाले अर्थात् १२ वें गुणस्थान तकके जीव अंतरात्मा कहलाते हैं। और अंतके दो सयोगकेवली व अयोगकेवली परमात्मा कहलाते हैं। इस प्रकार वे चौदह गुणस्थान इन तीन भेदोंमें अंतर्भूत होते हैं।

भरतेशकी आत्मा बहिरात्मा नहीं है, अंतरात्मा था। परंतु शीघ्र ही वह परमात्मा बन गया। अध्यात्मकी महिमा विचित्र है।

राजवैभवको छोडकर योगी बननेपर भी राजवैभवने, क्षात्रधर्मने भरतेशका साथ नहीं छोडा। वह तेजस्वी है, वहांपर उसने कर्मोंकी सेनाके साथ वीरतासे युद्ध करना प्रारंभ किया।

अश्वरत्न वहांपर नहीं है, परन्तु मनरूपी अश्वपर आरूढ होकर ध्यान खड्गको अपने हाथमें लिया एवं कर्मरूपी प्रबल शत्रुपर उस वीरने चढाई की युद्ध प्रारंभ होते ही तीन आयुष्यरूपी योद्धा तो रुक गये। अब उस वीरने अपने घोडेको आगे बढाया तो अग्निके प्रतापसे पिघलनेवाले लोहेके समान कुगति आदि १६ दुष्ट कर्म गलकर चले गये।

आगे बढनेपर ८ कषाययोद्धा पडे। नपुंसकवेद और स्त्रीवेद तो जरासे धमकानेपर इधर उधर भागे। वीरका खड्ग सामने आनेपर स्त्री, नपुंसक कैसे टिक सकते हैं ? इतनेमें वह वीर और भी आगे बढा तो अरति शोकादिक छह नोकषाय निकल भागे। और भी आगे बढनेपर पुंवेद भी नहीं ठहर सका, उस पराक्रमीका कौन सामना कर सकता है ?

उसके बाद संज्वलन-क्रोध, मान, मायाने मुंह छिपाकर पलायन

किया तो केवल संज्वलन-लोभ शेष रह गया है। वहांसे आगे बढकर उस लघुलोभका भी अंत किया। उसी समय मोहराक्षसको लात देकर उस वीरयोगीने विजयको प्राप्त की। ज्ञानावरणीयके चार प्रकृतियोंका अंत पहिलेसे हो चुका है, अवधिज्ञानावरणीयका भी पहिलेसे अंत हो चुका है। अब बचे हुए धूर्तकर्मोको भी मैं मार भगाचूंगा, इस संकल्पसे आगे बढा। ध्यानखड्गके बलसे प्रचला व निद्राका नाश किया। साथमें पंचांतराय व दर्शनावरणके शेष प्रकृतियोंको भी नष्ट किया। इतनेमें ६३ कर्मप्रकृतिरूप प्रतिभट करनेवाले योद्धा छूट गये। अब वह वीर अंतरात्मा नहीं रहा, परमात्माका वैभव वहां दिखने लगा है। अब वह धीर मुनि नहीं है, जिन बन गया है।

चित्त वाहन था, ध्यान खड्ग था; और उस मुनिने मारा, भगाया इत्यादि जो वर्णन किया गया है वह सब कल्पनाजाल है, वस्तुतः उस मुनिराजके स्वयं अपनी आत्माको देखनेपर कर्मकी निर्जरा हुई, यही उसका सार है। वर्णन करनेमें ही विलंब लगा, परंतु उस कर्मनिर्जराके लिए अंतर्मुहूर्त ही समय लगा है। उस परमात्मयोगीकी सामर्थ्यका क्या वर्णन करें!

चार घातिया कर्मोंके नष्ट होनेसे अनंत चतुष्टयकी प्राप्ति हुई। अनंत चतुष्टयोंके साथ पांच बातोंको मिलाकर नवकेवललब्धिके नामसे उल्लेख करते हैं, वह विभूति उस निरंजनको प्राप्त होगई है। केवलज्ञान, केवल दर्शन, केवल सुख व केवलवीर्यको अनंतचतुष्टयके नामसे कहते हैं। वह अनुपमसंपत्ति उसके वशमें होगई है। मद, निद्रा, क्षुधा, मरण, तृषा आदि अठारह दोष तो अब दूर होगये हैं। देवेंद्र, चक्रवर्ती, धरणेंद्रसे भी बढकर अगणित सुखका वह अधिपति बन गया है। विशेष क्या, उसे निजसुखकी प्राप्ति होगई है।

उस समय वह परमात्मा ज्ञानके द्वारा समस्त लोक व अलोकको एक साथ जानता है, और दर्शनके द्वारा एक साथ देखता है। मिट्टीकी पालीको उठानेके समान इस समस्त पृथ्वीको उठानेकी अतुल सामर्थ्य

उसे अब प्राप्त हो गयी है। कर्मका आवरण अब दूर होगया है। अत एव शुद्धात्मवस्तुकी चित्प्रभा बाहर उमडकर आ गई है। कोटिसूर्य-चंद्रोंका प्रकाश उस समय परमात्माके शरीरसे बाहर निकलकर लोकमें भर गया है। कर्मका भार जैसे २ हटता गया शरीर भी हलका होता गया। इसलिए परमज्योतिर्मय परमात्मा उस शिलातलके एकदम ऊपर आकाशप्रदेशमें लांघकर चला गया। शायद सुंदर सिद्धलोकके प्रति गमन करनेका यह उपक्रम है; इसलिए वह शुद्धात्मा उस समय इस भूतलसे पांच हजार धनुष प्रमाण ऊपर आकर आकाशप्रदेशमें ठहर गया। जिन्होंने परदा धर लिया था अब दूर हटे। आश्चर्यचकित होते हुए जयजयकार करते देखते हैं तो भरतजिनेंद्र आकाश प्रदेशमें ऊपर विराजमान हैं। सबने भक्तिके साथ वंदना की।

स्वर्गमें देवेंद्रने भरतेशकी उन्नतिपर आश्चर्य व्यक्त किया एवं अपनी देवीके साथ ऐरावत हस्तिपर आरूढ होकर भूतलपर उतरने लगा। देवेंद्र ऊपरसे नीचे आरहा है तो पाताल लोकसे धरणेंद्र पद्मावती व परिवारके साथ अनेक गाजे बाजेके साथ ऊपर आरहा है। इसी प्रकार अनेक दिशावोंसे किन्नर व किंपुरुषदेव भरत जिनेंद्रकी स्तुति करते हुए आनंदसे आरहे हैं। वे कह रहे थे कि हे भरत जिनेश्वर! भव-रोगवैद्य! सुंदरोंके सुंदर! आप जयवंत रहें।

कुबेरने उसी समय गंधकुटीकी रचना की। और उसके बीचमें सुंदर सुवर्ण कमलका निर्माण किया। उसको स्पर्श न करते हुए कुछ अंतरपर उसके ऊपर कमलासनमें भरत जिनेंद्र शोभाको प्राप्त हो रहे हैं।

भगवान् आदि प्रभुके मुक्ति जानेपर उनके साथ जो केवली चारणमुनि वगैरे थे वे सब इधर उधर चले गये थे। भरत जिनेंद्रकी गंधकुटीका निर्माण होनेपर सब लोग वहांपर आकर एकत्रित हुए। मालुम होता है कि पिताकी संपत्ति पुत्रको मिलनेकी पद्धति ही यहांपर भी चरितार्थ हुई। पिताका मंत्री पुत्रको भी प्राप्त हो यह साहजिक

एवं शोभास्पद है। इसीलिए तेजाराशि मुनिनाथ भी वहांपर आये व भरतजिनेंद्रकी वंदना कर वहां बैठ गये।

देवेंद्र, धरणेंद्रने भी अपनी देवियोंके साथ पादानत होकर उस दुरितनिर्धूमधाम-भरतकेवलीकी अनेकविध भक्तिसे स्तुति की, वंदना की, पूजा की। देवगण भी वहांपर भक्तिसे आये, भूतलपर जो भव्य थे वे भी सोपानमार्गसे गंधकुटीमें आये। एवं जिनेश्वरको संतोष व भक्तिके साथ सब लोगोंने नमस्कार किया।

अर्ककीर्ति व आदिराज कुमारका मुख अर्क (सूर्य) के दर्शनसे खिलनेवाले कमलके समान हर्षसे युक्त हुए। बाकीके मंत्री, मित्रोंको भी जिनेंद्रके दर्शनसे अत्यधिक आनंद हुआ।

देवेंद्रने हाथ जोडकर प्रार्थना की कि स्वामिन्! परमात्मसिद्धि कैसे होती है? कृपया फरमावें। इतनेमें भरत सर्वज्ञने दिव्यध्वनिके द्वारा विस्तारसे वर्णन किया। उसका क्या वर्णन करें?

"हे देवेंद्र! सुनो! आत्मसिद्धिको प्राप्त करना कोई कठिन नहीं है? आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है। इस प्रकारके विवेकसे अपनेसे ही अपनेको देखने पर आत्मसिद्धि होती है। इस प्रकार आत्मार्थी देवेंद्रको प्रतिपादन किया।

पंचास्तिकाय, षड्द्रव्य, सप्ततत्व और नव पदार्थोंमें आत्मा ही उपादेय है, बाकीके सर्व पदार्थ हेय हैं। चेतन हो या अचेतन हो, चेतनके साथ अचेतन मिश्रित होकर जब रहता है तब वह परपदार्थ है। केवल पवित्र आत्मा ही स्वपदार्थ है।

परवस्तुओंमें जो रत हैं वे परसमयी हैं और आत्मामें निरत हैं वे स्वसमयी हैं। परवस्तुओंके अवलंबनसे बंध है, अपने आत्माके अवलंबनसे मोक्ष है। यही इसका रहस्य है।

आप्त, आगम और गुरुकी उपासना करनेसे शरीर-सुखकी प्राप्ति होती है। कैवल्य-सुखके लिए अपने आपको देखना चाहिए। अन्य-

भावोंके द्वारा मोक्षकी सिद्धि नहीं हो सकती है । ध्यानके अभ्यासके समय परवस्तुओंके अवलंबनसे काम लेना चाहिये, आत्मा आत्मामें स्थिर होनेके बाद अन्य संगका परित्याग करना चाहिये ।

खाने पीने व पहननेसे क्या होता है ? स्त्रियोंके साथ भोग करनेसे भी क्या बिगडता है ? परन्तु उनको अपने समझकर भोगनेसे बिगाड होती है, यदि उनको परवस्तु समझकर भोगें तो कोई चिंताकी बात नहीं है । परिणाममें आत्माको देखते हुए आत्मसुखका जो अनुभव करता है उसे स्वयंका सुख समझें एवं उस आत्मवस्तुको छोडकर अन्य सभी परपदार्थ हैं, इस प्रकारकी भावनासे उस आत्माकी हानि नहीं हो सकती है । भव्योंमें दो भेद हैं, एक तीव्रकर्मी व दूसरा लघुकर्मी । जिनका कर्म तीव्र है, कठिन है वे पहिले बाह्य पदार्थोंको छोडकर नंतर आत्मसुखकी साधना करते हैं । और जो लघुकर्मी अर्थात् जिनका कर्म मृदु है, वे बाह्यसंपत्ति वैभवोंके रहते हुए आत्मनिरीक्षण कर सरलतासे मुक्तिको जाते हैं । इसके लिए दूर जानेकी क्या आवश्यकता है ? देखो ! आदि परमेश, बाहुबलि आदिने कठिन तपश्चर्याके द्वारा इस भवका नाश किया, परन्तु हमने तो बहुत सरलतासे इस भवबंधन को अलग किया, यही तो इसके लिए साक्षी है ।

ध्यानसामर्थ्यको कौन जाने ? स्वयं स्वयंको देखें तो वह मालुम हो सकता है । हे भव्य ! अनेक विचारोंका यह सार है, विविध विचारोंको त्यागकर आत्मामें मनको लगाना यही मुक्तिके लिए साधन है।

जैसे जैसे आत्मानुभव बढता जाता है वैसे ही शरीर–सुख अपने आप घटता है, आत्मा आत्मामें मग्न हो जाता है, बाह्य पदार्थोंके परित्यागसे आत्मसुखकी वृद्धि होती है ।

आत्मामें आत्माके ठहरनेपर कर्मकी निर्जरा होती है । शरीर आत्मासे भिन्न हो जाता है । आत्मसिद्धिको कोई दूसरे नहीं देते हैं । अपने आप ही यह भव्य प्राप्त कर लेता है । परमाणुमात्र भी परवस्तु या पुद्गलका

संसर्ग न रहे एवं स्वयं शुद्धात्मा रहे, इसीको आत्मसिद्धि कहते है।" इस प्रकार भरतजिनेंद्रने देवेंद्रको प्रतिपादन किया।

इतनेमें बीचमें ही आकर पुत्र, मित्र व मंत्रियोंमेंसे कुछने कहा कि देवेंद्र! जरा ठहरो, हमें भी एक काम है। आगे बढकर भरतकेवलीसे उन लोगोंने प्रार्थना की कि स्वामिन्! हम लोगोंको दीक्षा देकर हमारा उद्धार कीजिये। इस प्रकार वृषभराजकुमारको आगे करके सबने प्रार्थना की।

केवलीने भी 'भवतु च उत्तिष्ठत' इस प्रकारके आदेशके साथ दिव्यध्वनिकी वर्षा की। विशेष क्या? देवेंद्र, धरणेंद्र व तेजोराशि आदि मुनियोंकी उपस्थितिमें उनका दीक्षा-विधान हुआ। सब लोग उस समय जयजयकार कर रहे थे।

उस दिन रविकीर्ति कुमारको आदि लेकर १०० कुमारोंको आदिशिवने जिस प्रकार दीक्षा दी उसी प्रकार आज इन पुत्रोंको इस स्वामीने दीक्षा दी। इतना ही कहना पर्याप्त है, अधिक वर्णनकी क्या आवश्यकता है?

अर्ककीर्ति व आदिराजने यह कहते हुए साष्टांग नमस्कार किया कि अर्हन् हमारी माताओं एवं भाभियोंको दीक्षा प्रदान कीजिये। तब उसे भगवंतने सम्मति दी। शचीदेवी, पद्मावती, आदियोंने आगे बढकर परदा हाथमें लिया एवं मुनियोंको भी वहांपर आनेके लिए इशारा किया गया। तदनंतर उन पुण्यकांतावोंको उस परदेके अंदर प्रविष्ट कराया।

पुरुष तो समवसरणमें अनेकवार दीक्षा लेते थे। परन्तु आज स्त्रियोंकी दीक्षा है। उसमें भी सम्राट्की स्त्रियां तो पुरुष समाजके बीच कभी नहीं आया करती थीं। आज ही वे पुरुषोंकी सभामें आई हुई हैं।

देववाद्यके बजनेपर एवं तेजोराशि आदि मुनियोंकी उपस्थितिमें उन सतियोंका दीक्षाविधान हुआ। उस दिन माता यशस्वती व सुनंदाको जिस प्रकार दीक्षा-विधान हुआ इसी प्रकार आज भी उन स्त्रियोंको वैभवसे दीक्षा दी गई, इतना ही कहना पर्याप्त है।

उस समय उन देवियोंने समस्त आभरणोंका परित्याग किया। हार, पदक, बिलवर, कांचीधाम, वीरमुद्रिकादि आभरणोंको दूर फेंक रही हैं जैसे कि कामविकारको ही फेंकरही हों। कंठमें धारण किये हुए एकसर, पंचसर, त्रिसर आदिको तोडकर अलग अलग रखरही हैं, शायद वे कामदेव अपनी ओर न आवे इसकेलिए दिग्बंधन कर रही हैं। जब सर्वसंगको परित्याग ही करने बैठी हैं तो इन भारभूत आभरणोंकी क्या आवश्यकता है ? इसी प्रकार कर्णाभरण, नासिकाभरण आदिको भी निकालकर फेंक रही हैं। अब पुनः स्त्रीजन्मकी अभिलाषा उन देवियोंको नहीं है। मस्तकपर धारण किये हुए रत्नाभरणादिको निकालकर इधर उधर फेंक रही हैं। शायद विरहाग्निकी चिनगारियां ही निकल भाग रही हैं ऐसा मालुम होरहा था। विशेष क्या, सर्व आभरणोंको तृणके समान समझकर छोड दिया। जिन आभरणोंकी शोभा शरीरके लिए थी, उनको पतिके जानेपर वे क्यों धारण करेंगी। इसलिए बहुत धैर्यके साथ उनसे मोहका त्याग किया। उनके हृदयमें अतुल विरक्ति है। चित्तमें अनुपम धैर्य है, क्योंकि वे क्षत्रिय स्त्रियां हैं। सासुवोंको देखकर बहू देवियां एवं बहुवोंके धैर्यको देखकर सासूरानी मनमें ही प्रसन्न हो रही हैं। आभरणोंको दूर कर जब केशपाशका भी मुंडन किया तो पासमें रहनेवालोंको कोई दुःख नहीं हुआ। क्योंकि वह जिनसभा है। वहांपर शोकका उद्रेक नहीं हो सकता है। माणिक्य रत्न तो अब अलग होगया है। अब उनके पाणितलमें कमंडलु व जपसर आगये हैं। अब उनको रानियोंके नामसे कोई उल्लेख नहीं कर सकता है। अब तो उनको अक्का या अम्मा कहते हैं। अर्जिका या कांतिके नामसे अभिधान करनेके लिए केशलोच स्वतः करनेकी आवश्यकता है। यह कठिन है। अतः इस अवस्थामें रहकर उसका अभ्यास करो। इस प्रकारका आदेश दिया गया।

परदा हट गया, बाजेका शब्द भी बंद हुआ। अब अंदर सफेद

साडीको पहनी हुई साध्वियां विराजी हुई हैं। मालुम होता है कि कोमल पुष्पाच्छादित लताओंने ही दीक्षा ली है।

धरणेंद्रकी देवियां, देवेंद्रकी देवियां आदि आगे बढी व उनके चरणोंमें मस्तक रक्खा। इसी प्रकार समस्त सभाने ही उनकी वंदना की। विशेष क्या ? देवोंने हर्षभरसे नृत्य कर आकाश प्रदेशसे पुष्प-वृष्टि की। उस दृश्यका वर्णन क्या हो सकता है ? नवीन मुनिगण मुनियोंके समूहमें एवं नवीन साध्वीगण आर्जिकाओंके समूहमें बैठ गई। यह समाचार बातकी बातमें दशों दिशाओंमें फैल गया।

चक्रवर्तिका स्त्रीरत्न अर्थात् पट्टरानी नरकगामिनी होती है, इस प्रकार कुछ लोग अज्ञानसे कहते हैं। परन्तु वह ठीक नहीं है। इसके लिए एक सिद्धांतका नियम है।

दुर्गतिको जानेवाले चक्रवर्तिकी पट्टरानी दुर्गतिकों हीं जाती है यह सत्य है; परन्तु स्वर्ग व मोक्षको जानेवाले चक्रवर्तिके स्त्रीरत्नको स्वर्गकी ही प्राप्ति होती है, यह सिद्धांतका नियम है। पुरुषोंके परिणामके अनुसार ही स्त्रियोंका परिणाम होता है। इसलिए पुरुषकी गतिके अनु-सार ही वह स्त्रीरत्न उस मार्गमें कुछ दूर बढकर रहती है।

पुत्र मोक्षगामी, भाई मोक्षगामी, स्वतःके पति भरतेश मोक्षगामी फिर वह सुभद्रादेवी दुर्गति कैसे जा सकती है ? अवश्य वह स्वर्गको ही जायगी। इसलिए सुभद्रादेवीनें भी बहुत वैभवके साथ दीक्षा ली।

भरतचक्रवर्तिकी पलकीको ढोनेवाले जो सेवक हैं वे भी स्वर्ग जानेवाले हैं तो पट्टरानीको दुर्गति क्योंकर हो सकती हैं ? वह निर्मल शरीरवाली है, उसे आहार है, नीहार नहीं है। इसलिए उसे कमंडलु नहीं है। अब वह अर्जिकाओंके बीचमें शोभित हो रही है। देवेंद्र, अर्ककीर्ति, आदिराज आदि गंधकुटीमें भगवद्भक्तिमें लीन हैं, और भगवान् भरतकेवली अपने कमलासनमें विराजमान है।

भरतेशकी सामर्थ्य अचिंत्य है। षट्खंडवैभवका लीलामात्रसे

परित्याग करना, दीक्षित होना, दीक्षित होकर अंतर्मुहूर्तमें मनःपर्यय ज्ञानकी प्राप्ति, पुनश्च केवलज्ञानकी प्राप्ति, यह सब उस आत्माकी महत्ताकी साक्षात् सूचनायें हैं। कर्मपर्वतको क्षणार्धमें चूर कर देना सामान्य मनुष्योंको साध्य नहीं है। भरतेशके कुछ समयके ध्यानसे ही वे कर्म वैरी निकलकर भाग रहे हैं। वहां दिग्विजयकर षट्खंडको वशमें किया तो कर्मदिग्विजय कर नवखंड (नवकेवललब्धि) को प्राप्त किया। यह सामर्थ्य उनको अनेक भवोंके अभ्याससे प्राप्त है। भरतेश सदा भावना करते हैं कि—

हे परमात्मन्! चिदंबरपुरुष! तृणको जलानेवाले अग्निके समान अष्टकर्मको क्षणभरमें भस्म करनेकी सामर्थ्य तुम्हारे अंदर विद्यमान है। तुम गणनातीत हो, अमृतकी निधि हो, इसलिए मेरे हृदयमें बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! आप चिंतामणि हो! गुणरत्न हो, देव शिरोरत्न हो, त्रिभुवनरत्न हो, एवं रत्नत्रयरूप हो, अतएव हे सहजशृंगार निरंजनसिद्ध! मुझे सन्मति प्रदान करो।

इसी भावनाका फल है कि भरतेशने कर्मपर्वतको क्षणार्धमें नष्ट करनेकी ध्यान—सामर्थ्य प्राप्त कर ली थी।

॥ इति ध्यानसामर्थ्य संधिः ॥

—×—

अथ चक्रेशकैवल्यसंधि.

परमात्मन्! महादेव! उस भरतेशकी महिमाको क्या कहें? हंसाराध्य वह सम्राट् योगीने जब इस प्रकार उत्तम पदको प्राप्त किया तो उसी समय दीक्षाप्राप्त पुत्र मित्रादियोंने भी उत्तम पदको प्राप्त किया। दुपहरके समय भरतेशने घातिया कर्मोंको दूरकर साथके लोगोंको दीक्षा दी। आश्चर्य है कि उनमेंसे वृषभराज योगीने सायंकालके समय घातिया

कर्मोंको नष्ट किया। पिताने बहुत जल्दी घातिया कर्मोंको दूर किया। फिर मैं आलसी बना रहूं यह उचित नहीं है। इस विचारसे शायद स्पर्धाके साथ उसने घातिया कर्मोंको दूर किया हो। इस प्रकार वह धीरयोगी वृषभराज परमात्मा बन गया है। बचपनमें जब अपने पिता भरतेशने उसका हाथ देखा तो उसने भी भरतेशका हाथ देखा था। तब पिताने कहा था कि बेटा! तुम और मैं एक सरीखे हैं। वह बात आज चरितार्थ होगई है। चंद्रिकादेवी आदि अर्जिकायें उस समय आनंदसमुद्रमें मग्न हुई। एवं इंद्रार्चित अन्य अर्जिकायें भी आनंदसे फूली न समाती थी। विशेष क्या, गंधकुटीमें स्थित सारे भव्य प्रशंसा करने लगे। अर्ककीर्ति व आदिराज पिता व सहोदरोंके दीक्षित होनेपर चिंतित थे। परन्तु जब वृषभराज केवली बन गया तो उनका भी आनंदका पार नहीं रहा। हर्षसे नृत्य करने लगे। पिताजीने इसका नामकरण वृषभराज किया है। अर्थात् दादाके नामसे इसे बुलाया है, वह आज सार्थक होगया है। वाह! वृषभराज! संसारका तुमने नाश किया है। शाहबास! तुम साहसी हो! इस प्रकार कहकर वृषभराज-योगीके चरणोंमें मस्तक रक्खा। उसी समय नागरमुनि, अनुकूल योगी बुद्धिसागर यति और दक्षिणांक स्वामीको भी अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञानकी प्राप्ति हुई। चक्रवर्तिके बंधुओंको किस बातकी कमी है? उस समय और भी कुछ पुत्रोंको, राजाओंको अवधिज्ञान आदि उत्तम सिद्धियां प्राप्त हुई। आत्माराममें विहार करनेवालोंको क्या बडी बात है? उसी समय देवोंके द्वारा गंधकुटीकी रचना की गई, एवं नरसुर व उरग-लोकके वासियोंने भक्तिसे पूजा की। विशेष क्या, भरत जिनेंद्रके समीप ही वृषभजिनेशका महल तैयार होगया है।

वह रात्रि बीत गई। सूर्योदयके होनेपर वह आराध्य भरतसर्वज्ञ अघातियां कर्मोंको दूर करनेके लिए सन्नद्ध हुए, उसका क्या वर्णन करें!

गंधकुटीका परित्याग किया। पहिलेके श्रीगंधवृक्षके मूलमें ही फिर पहुंचे। वहांपर सुंदर शिलातलपर पर्यंक योगासनसे विराजमान हुए।

परमौदारिक दिव्यशरीरमें भरे हुए क्षीरसमुद्रको इस भूमिसे सुरलोकके अग्रभागतक उठानेकी भावना उस समय उस महात्माके हृदयमें थी।

आयुष्य कर्मकी स्थिति कम थी। परंतु शेष नाम, गोत्र व वेदनीयकी स्थिति अधिक थी। इसलिए कांट छांटकर उनकी स्थितिको आयुष्यके बराबर करूंगा, इस हेतुसे उस समय चार समुद्घातकी ओर दृष्टि गई। उत्तम सोनेको जिस प्रकार कोवेसे अलग करनेपर वह अलग हो जाता है, उसी प्रकार इस आत्माकी स्थिति उस समय थी। वह परमात्मा जिस प्रकार आदेश दे रहा था उसी प्रकार उसकी हालत हुई।

सुवर्ण भिन्न है, उसे निकालनेवाला भिन्न है। यह उदाहरण केवल उपचाररूप है। यहांपर आत्मा ही निकालनेवाला और आत्मा ही निकलनेवाला है।

सबसे पहिले आत्माको दंडाकारके रूपमें परिवर्तन किया। यह आत्मा शरीरसे निकलकर त्रिलोकरूपी जहाजके स्थिर स्तंभके समान तीन लोकमें दंडके समान व्याप्त हुआ। उस शिलातलपर तैजसकार्मणसे युक्त होकर बाह्य शरीर जरूर था, परन्तु निर्मल आत्मा तीन लोकमें दंडस्वरूपमें व्याप्त होकर था। औदारिक शरीरसे त्रिगुणघन होकर वह उस समय आद्यंत था, तथापि स्पष्ट कहें तो १४ रज्जु परिमित लोकाकाशमें नीचेसे ऊपरतक वह आत्मा व्याप्त होगया है। उसीको कपाटरूपमें परिणत किया। वह उस समय लोकके लिए एक दरवाजेके समान मालुम हो रहा था।

उस समय दक्षिणोत्तर सात रज्जु चौडाईसे और मोक्षसे पाताललोकतक चौदह रज्जु ऊंबाईसे वह आत्मा व्याप्त हो गया। उसके बाद प्रतर क्रियाकी ओर वह आत्मा बढा तो तीन वातवलयोंके भीतर वह आत्मा तीन लोकमें कुंभमें भरे हुए दूधके समान सर्वत्र भर गया।

उसका क्या वर्णन करें ? सुबहकी धूप, शुभ्र आकाश, प्रातःकालमें व्याप्त हिमपुंज, अथवा रात्रिकी चांदनी आदि जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त होते हैं, उसी प्रकार वह आत्मा उस समय तीन लोकमें व्याप्त होगया। आगे लोक पूरणके लिए वह आत्मा बढा तो तीन वातवलयोंमें भी व्याप्त हुआ। लोक सर्वत्र उस समय शुद्धात्मप्रदेशसे व्यापृत हुआ है। लोग कहते हैं कि भगवानके पेटमें त्रिलोक था, शायद यह कथन तभीसे प्रचलित हुआ है।

लोकाकाशको उस समय अनंतज्ञान व अनंतदर्शनसे व्याप्त किया और लोकके बाह्य त्रिवातवलयको भी उस अद्वैत परमात्माने व्याप लिया था।

गुरु हंसनाथकी महिमा भगवान् आदिप्रभु और भरतेश ही जानते हैं, अन्य मनुष्योंको उसका परिज्ञान क्या हो सकता है ?

जिस प्रकार षट्खंड दिग्विजयके लिए सम्राट् निकले थे एवं षट्-खंड विजयके बाद अपने नगरकी ओर निकले, उसी प्रकार यहांपर त्रिलोक विजयी होकर अब अपने शरीरकी ओर ही लौटे। भुवन-पूरणसे प्रतरप्रतरसे कपाट और कपाटसे दंडक्रियाकी ओर बढकर अपने मूल शरीरमें, ही आत्मप्रदेश प्रविष्ट हुआ। स्थूल वाङ्मनोदेहकी चंचल-ताको क्रमशः दूरकर उस परमात्मयोगीने नाम, गोत्र व वेदनीयको आयुष्यके बराबरीमें लाकर रक्खा।

घातिया कर्मोंको नष्ट करनेपर जिन नामाभिधान हुआ, उसे ही तीर्थंकर पदके नामसे भी कहते हैं। बादमें शेष कर्मोंको भी नष्ट करनेका उस वीराग्रणिने उद्योग किया।

तेरहवें गुणस्थानके अंतमें ७२ प्रकृतियोंका नाश हुआ और बादमें १३ प्रकृतियां भी एकदम नष्ट हुई। उस समय बिजलीके समान शरीर अदृश्य हुआ और वह परमात्मा लोकाग्र भागपर जाकर विराजमान हुआ।

इस बातके वर्णनमें ही विलंब हुआ। परंतु योगबलसे उन कर्मोंको नष्ट करनेमें तो पांच ह्रस्वाक्षरोंके उच्चारणका ही समय लगा, अधिक न लगा। इतने ही अल्प समयमें कर्मदानवका मर्दन उस वीरने किया।

समय अत्यंत सूक्ष्मकाल है, एक ही समयमें सात रज्जु परिमित लोकाकाशके उस मार्गको तयकर वह परमात्मा लोकाग्रभागमें पहुंच गया। उसके सामर्थ्यका क्या वर्णन किया जाय।

वद्ध अष्टकर्म तो नष्ट हुए। अब विशुद्ध अष्ट गुण वहांपर पुष्ट होकर उत्पन्न हुए। उस समय उद्धत (उत्तम) मुनि, जिन आदि संज्ञा भी विलीन हुई। अब तो उस परमात्माको सिद्ध कहते हैं।

दिव्य सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्म, अवगाह, अगुरुलघुत्व अव्याबाध इस प्रकार आठ गुण उस सिद्ध योगीको प्राप्त हुए। इसे ही नवकेवललब्धि कहते हैं। इस प्रकार आठ गुणोंसे वह परमात्मा सुशोभित हुआ। यद्यपि दंडकपाटादि अवस्थामें वह आत्मा विशाल आकृतिमें था तथापि अब तो अंतिम शरीरसे कुछ कम आकारमें वह मोक्षमें विराजमान है।

भरतेश्वर नामाभिधान तो शरीरके साथ ही चलागया है। अब तो वह परमात्मा सिद्धोंके समूहमें परमानंदमें मग्न होकर विराजमान है, वहांसे अब वह किसी भी हालतमें लौट नहीं सकता है। वह परम सुखका मार्ग है।

परमात्मा भरतयोगीको जिससमय कैवल्यधामकी प्राप्ति हुई उस समय आश्चर्यकी बात है, कि भरतेश्वरके पांच पुत्रोंने भी घातियां कर्मोंको नष्ट कर केवल ज्ञानको प्राप्त किया। हंसयोगी, निरंजनसिद्धमुनि, महांशुयति, रत्नमुनि, और संसुखि मुनिको केवलज्ञान एक ही साथ प्राप्त हुआ। उन पांचोंका जन्म भी एकसाथ हुआ था। और अब केवलज्ञान भी उनको एकसाथ हुआ। इसलिए भरतेश्वरके मुक्ति जानेका दुःख उनको नहीं हो सका।

भरतेश्वरने पंचमगतिको प्राप्त किया तो पंच पुत्रोंने घातिया कर्मोंका पंचत्व (मरण) को प्राप्त कराया। लोकमें सम्राट्की महिमा अपार है।

श्रीमाला, वनमाला, मणिदेवी, हेमाजी और गुणमाला साध्वियोंनें

परम आनंदको प्राप्त किया। ये तो उन पुत्रोंकी मातायें हैं, उनको हर्ष होना साहजिक है। परंतु शेष साध्वियोंको भी आनंद हुआ सबोंने उन पुत्रोंकी प्रशंसा की, उनकी कीर्ति दस दिशाओंमें फैल गई।

पिताश्री भरतेश्वर मुक्ति गये इस बातका दुःख अर्ककीर्ति व आदिराजको नहीं हुआ, क्यों कि पांच सहोदरोंने एक साथ केवलज्ञान प्राप्त किया इस आनंदमें वे मग्न थे। उसी समय कुछ राजाओंको, कुछ कुमारोंको, कुछ सम्राट्के मित्रोंको अवधिज्ञान आदि संपत्तियोंकी प्राप्ति हुई। इसमें आश्चर्य क्या है? भरत चक्रवर्तिकी संगतिमें रहनेवालोंको यह कोई बडी बात नहीं है।

मागधामरको परम संतोष हुआ। संतोषके भरमें वह कहने लगा कि मेरे स्वामीने इस लोकमें रहते हुए सबको संतुष्ट किया और यहांसे जाते हुए भी सबको आनंदित किया। धन्य है! इसी प्रकार वरतनुदेव, विजयार्ध, हिमवंत आदि देव भी सम्राट्की प्रशंसा कर रहे थे। गंगादेव और सिंधुदेव भी बार २ आनंदसे भरतेश्वरका स्मरण कर रहे थे।

उसी समय जिन पांच पुत्रोंको केवलज्ञानकी उत्पत्ति हुई उनको गंधकुटीका रचना की गई। मनुज, नाग, अमरोंने उनकी पूजा की। वहांपर बडे भारी प्रभावना हो रही है।

इधर भरत सर्वज्ञ जिस शिलातलसे मुक्तिको प्राप्त हुए उसके पास देवेंद्रने होमविधान किया एवं आनंदसे नर्तन कर रहा था और उसे अर्ककीर्ति और आदिराज भी देखकर आनंदित हो रहे हैं।

धरणेंद्र प्रशंसा कर रहा था कि कहां तो षट्खंडका भार और कहां ९६ हजार रानियोंका आनंदपूर्ण खेल, कहां तो क्षणमात्रमें कैवल्य प्राप्त करनेका सामर्थ्य! धन्य है? अपने आपको स्वयं ही गुरु बनकर दीक्षा ली। और अपनी आत्मा को स्वयं ही देखकर शरीरका नाश किया। एवं अमृत पदको प्राप्त किया। शाहबास!

क्या शरीरको कोई कष्ट दिया? नहीं, भिक्षाके लिए किसीके

सामने हाथ पसारा ? नहीं ? चक्रवर्तिके वैभवमें ही मोक्षसाम्राज्यको प्राप्त किया। विशेष क्या ? झूला झूलनेके समान मुक्ति-स्थानमें जा विराजे। धन्य है !

सिंहासनसे उतरकर आये तो इधर कमलासनपर विराजमान हुए। रत्नमय गंधकुटी थी तो उसका भी परित्याग कर अमृतलोकमें पहुंचे। लोकविजयी भरतेश्वरको नमोस्तु ! भ्रमणकर आहार नहीं लिया। तपोमुद्राको प्राप्त कर कुछ समय देशमें विहार भी नहीं किया। वैभवमें थे और वैभवमें ही पहुंचकर मुक्तिसाम्राज्यके अधिपति बने, आश्चर्य है ! इसप्रकार धरणेंद्र आनंदसे प्रशंसा कर रहा था कि देवेंद्रने विनोदसे कहा कि अब बस करो ! कलियुगके रत्नाकर सिद्धके लिए भी कुछ रहने दो। वह भी भरतेश्वरकी प्रशंसा करेगा।

धरणेंद्रने कहा कि देवेंद्र ! चक्रवर्तिकी महत्ताको वर्णन करनेकी सामर्थ्य न मुझमें है और न रत्नाकरसिद्धमें है और न तुममें है। वह तो एक अलौकिक विभूति है। देवेंद्रने कहा कि तुम सच कहते हो। गुणमें मत्सरकी क्या जरूरत है। सम्राट्के समान वैभवके बहुभारको धारण कर क्षणमें मुक्ति जानेवाले कौन हैं ? उनके समान ही हमें भी मोक्ष-साम्राज्य शीघ्र प्राप्त होवे। इस भावनासे देवेंद्रने होम-भस्मको मस्तकपर लगाया एवं उसी प्रकार धरणेंद्रने भी आनंदसे उस होम-भस्म को धारण किया। वहांपर उपस्थित अर्ककीर्ति आदि सभीने भक्तिसे होम-भस्मको धारण किया। यहांपर भरतेश्वरका मोक्षकल्याण हुआ। सबको आनंद हुआ।

शरीरके अदृश्य होते ही गंधकुटी भी अदृश्य होगई। मुनिगण व आर्जिकायें आदि संयमीजन वहांसे अन्य स्थानमें चले गये एवं सुखसे विहार करने लगे। इसी प्रकार देवेंद्र, धरणेंद्र, गंगादेव सिंधुदेव आदि व्यंतरोंने भी केवली, जिन, मुनिगण आदिके चरणोंकी वंदना कर एवं अर्ककीर्ति आदिराजसे मिष्टव्यवहारसे बोलकर अपने २ स्थानमें चले गये।

उसी प्रकार अर्ककीर्ति आदिराज भी उन केवलियोंकी वंदना कर अपने नगरमें चले गये। और गंधकुटियोंका भी इधर उधर विहार होगया।

मागधामर जब अपने महलमें पहुंचा तो उसे बार २ अपने स्वामीका स्मरण हो रहा था, दुःखका उद्वेग होने लगा। जिन सभामें शोक उत्पन्न नहीं होता है, परन्तु यहांपर सहन नहीं कर सका। शोकोद्रेकसे वह प्रलाप करने लगा कि हे भरतेश्वर ! मेरे स्वामी ! देवेंद्रको भी तिरस्कृत करनेवाले गंभीर ! विशेष क्या, पुरुषरूपी कल्पवृक्ष ! आप इस प्रकार चले गये ! हम बडे अभागी हैं ! आप वीरता, विनय, विद्या, परीक्षा, उदारता, शृंगार, धीरता, आदिके लिए लोकमें अप्रतिम थे। हम कमनसीब हैं कि आपके साथ नहीं रह सके !

राजसभामें आकर जब मैं तुम्हारा दर्शन करता था तो स्वर्गलोकका ही आनंद मुझे आता था। अपने सेवकको इस प्रकार छोडकर मोक्ष स्थानमें चले जाना क्या उचित है ? स्वामिन् ! कभी मेरी प्रार्थनाकी ओर आपने उपेक्षा नहीं की। मुझे अन्य भावनासे कभी नहीं देखी। आजपर्यंत मेरा सत्कार बहुत कुछ किया। ऐसी अवस्थामें मुक्ति जाकर मुझे आपने मारा ही है। इस प्रकार मागधामर उधर दुःखित हो रहा था तो इधर गंगादेव और सिंधुदेव (गंगासिंधुतटके अधिपति) भी अपने दुःखको सहन नहीं कर सके। वे भी शोकोद्रिक्त हुए। हाय ! भावाजी आप हमें छोडकर चले गये तो अब हमारा जीना क्या सार्थक है ? हमें यमदेव आकर क्यों नहीं ले जाता ? आपके सालोंके रूपमें जब हमें लोग पहिचानते थे, उस समय हमारे वैभवका क्या वर्णन करें, कोई चूंतक नहीं कर सकते थे। अब हमें किनका आश्रय है, किसके जोरसे हम लोग अपने वैभवको बतावें " इस प्रकार रो रहे थे जैसे कोई कंजूस अपने सुवर्णको खोया हो। स्वामिन् ! हम तो आपके सेवक बनकर दूर ही रहना चाहते थे। परंतु हमारी सेवासे प्रसन्न होकर आपने ही हमें अपने बहनोई बनाये। परंतु आश्चर्य है कि अब अपने बहनोइयोंको

इस प्रकार कष्ट दिया। आपके प्रेमको हम कैसे भूल सकते हैं। इस प्रकार बहुत दुःखके साथ सर्व वृत्तांत को अपनी पत्नी गंगादेवी व सिंधुदेवीके साथमें कहा। तब उन देवियोंका भी दुःख का पार नहीं रहा।

भाई! हम तो बहुत दुःखी हुई, हमारे उदरमें तो तुम अग्निको ही प्रज्वलित कर चले गए। इस प्रकार जमीनपर लोट २ कर रो रही थी। सहोदरियोंका दुःख क्या कम होता है! भरतेश्वरकी ये दोनों मानी हुई बहिनें थी। भाई! तुम तो अपूर्व थे, विद्वानोंके लिए मान्य थे, आंख व मनको प्रसन्न करनेवाले राजा थे। ऐसी हालतमें तुमने हमको इस प्रकार दुःखी कर एक तरहसे हमारी हत्या ही की है।

भाई! हमारे साथ तुम्हारा प्रेम क्या कम था? हम रास्तेमें रोकती तो तुम रुकते थे, प्रेमसे तुम्हारे दुपट्टेको खींचिती, हमारी बातको तुमने कभी टाली ही नहीं, ऐसी हालतमें आखेरतक हमारे साथ न रहकर जाना क्या तुम्हारे लिए उचित है? पट्टरानीके प्रेमको तुम भूल गए, सहोदरियोंकी भक्तिको भी तुम भूल गए। इस प्रकार हमें मार्गमें डालकर जाना क्या योग्य है? भूलोककी संपत्ति आज नष्ट होगई। पीहर जानेकी अभिलाषा भी अदृश्य होगई, हम लोग तो पापी हैं, हमारे सामने तुम कैसे रह सकते हो। तुम्हारी सब बातें दर्पणके समान हैं। इस प्रकार गंगादेवी सिंधुदेवीका रोना उधर चल रहा था, इधर भरतेश्वरकी पुत्रियां भी दुःखसे मूर्छित होरही हैं।

पिताजी! क्या हम लोगोंको यहांपर छोडकर तुम लोकाग्रभागमें चले गए? हाय! इस प्रकार दुःखसे विलाप कर रही थी, जैसे कोई बालक गरमागरम घी भूलसे पी गया हो। पुत्र, पुत्रवधुएं, एवं अपनी स्त्रियोंको लेकर तुम चले गए। एक तरहसे हमारे पीहरको तुमने बिगाड दिया। षट्खंडाधिपति! क्या यह तुम्हारे लिए उचित है? स्वामिन्! किसी भी कार्यमें तुमने आजतक हमें भूला नहीं तो आज इस कार्यमें क्यों भूल गए? हाय! दुर्दैव है। इस प्रकार बत्तीस हजार पुत्रियोंने विलाप किया।

इसी प्रकार भरतेश्वरके ३२००० जामाता और हजारों श्वसुर भी जहां तहां दुःखी हो रहे थे। इतना ही क्यों ? बाहुबलिके तीन पुत्र भी दुःखसे मूर्छित हुए। फिर उठकर बार २ चिंतित होने लगे। चलो ! दीक्षावनमें स्वामीको देखेंगे, इस विचारसे चलने लगे तो समाचार मिला कि वे मोक्ष चले गये हैं, फिर वहींपर पक्षभग्न पक्षीके समान गिर पडे। फिर विलाप करने लगे कि हाय ! पिताजी ! हम तो दुर्दैवी हैं। आप हमारी चिंताको छोडकर इस प्रकार चले गये। कुछ समयके बाद जाते तो आपका क्या बिगड जाता था ? इतनी जल्दीकी क्या आवश्यकता थी ?। हमारे खास मातापितावोंके प्रेमको हम नहीं जानते हैं। उसे भुलाकर आपने ही हमारा पालन पोषण किया। बडे भारी वैभवपदमें हमें प्रतिष्ठित किया, संतोषके साथ हमारे जीवनक्रमको चलाया। पिताजी ! अंतमें इस प्रकार क्यों किया ? इस संपत्तिके लिए धिक्कार हो। आपके ही हाथसे दीक्षा लेनेका भाग्य भी हमें नहीं मिला। हमें तिरस्कृत कर आप चले गये, हमें धिक्कार हो " इस प्रकार तीनों कुमार दुःखी हो रहे थे।

इधर अर्ककीर्ति आदिराज गंधकुटीसे लौटकर अपनी सेनाको छोडकर नगरमें प्रविष्ट हुए। नगरमें सर्वत्र सन्नाटा छाया हुआ था। प्रजावोंकी आंखोंसे आंसू बह रहा था। इन सब बातोंको देखकर दीर्घ निश्वास छोडते हुए महलकी ओर आगे बढे, वहांपर सम्राट्के सिंहासनको देखकर तो उनका शोक दबा नहीं रहा, एकदम वे शोकोद्रिक्त हुए। आंसू बहने लगा। जोर जोरसे रोने लगे। स्वामिन् ! हम दुर्दैवी हैं। इस प्रकारका वचन एकदम उनके मुखसे निकला।

पिताके सुंदर रूपको उन्होने वहां नहीं देखा तो उनका धैर्य ढीला हुआ। तेज पलायित हुआ, वचनका चातुर्य नष्ट हुआ। सूर्यके रहनेपर भी रात्रिके समान मालुम होने लगा।

पिताजी ! आप कहां हो, षट्खंडके समस्त राजा लेकर खडे हैं।

उसे आप स्वीकार कीजिये। तुममें कभी आलस्यको हमने देखा ही नहीं। तुम्हारे दरबारमें रिक्तता कभी नहीं थी, लोगोंका आना हर समय बना रहता था। अब तो यह बिलकुल सूनासा मालुम हो रहा है। इसे हम कैसे देख सकते हैं? आपको हम यहां नहीं देखते हैं, साथमें हमारे बहुतसे सहोदर भी यहां नहीं हैं। रत्नके महलमें भी अब कांति नहीं रही, अब हम किसके शरणमें जावें!" इस प्रकार अनेक विधसे दुःख कर पुनश्च वस्तुस्थितिको समझकर अपने आत्माको सांत्वन किया। भरतपुत्रोंको यह सहजसाध्य है।

सेवकोंको एवं आप्तजनोंको अपने २ स्थानोंमें भेजकर दोनों कुमार महलमें प्रविष्ट हुए। वहांपर रानियां दुःखसमुद्रमें मग्न हो रही थीं। "स्वामिन्! स्त्रियोंके अपारसमूह यहांसे चला गया, अब तो हम लोग यहां रही हैं। हमें तो यह महल नहीं, राक्षसभुवनके समान मालुम हो रहा है, इसमें हम लोग कैसे रह सकती हैं? उनके साथ ही हम लोग भी चली जाती तो हमें परमसुख प्राप्त होता। हमारा यहां रहना उचित नहीं हुआ, हमारा अनुभव तो यह है। परन्तु आपके मनका विचार क्या है कौन जाने? यहांपर हमारी सासुदेवियां नहीं हैं, हमारी बहिनें भी अदृश्य हो गई हैं, मामाजीका पता ही नहीं, ऐसी हालतमें यह संपत्ति क्षण नश्वर है, इसपर मोह करना उचित नहीं, छी! धिक्कार हो" इस प्रकार भरतेश्वरकी पुत्र-वधुऐं विलाप कर रही थीं।

भरतेश्वरकी पुत्रवधुवोंको दुःख हो इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है? लोककी समस्त स्त्रियां ही उस समय दुःखमें मग्न थीं। क्योंकि भरतेश्वर परदारसहोदर कहलाते थे।

लोकके समस्त ब्राम्हणगण भी भरतेश्वरके वियोगसे दुःखसंतप्त होरहे हैं। हे गण्य! भरतेश्वर! आपका इस तरह चला जाना क्या उचित है! वस्त्ररत्नहिरण्यभूमिके दाताका इस प्रकार वियोग! क्या करें। हमारा पुण्य क्षीण हुआ है।

विशेष क्या, मार्ग चलनेवाले पथिक, पत्तनमे रहनेवाले नागरिक, परिवारजन, विद्वान्, कविजन, राजा, महाराजा, मांडलिक आदि सभीने कामदेवके अग्रज भरतेश्वरके मुक्ति जानेपर रात्रिंदिन दुःख किया। मनुष्योंको दुःख हुआ इसमें आश्चर्य ही क्या है। हाथी, घोडा, गाय आदि पशुवोने भी घास आदि खाना छोडकर आंसू बहाते हुए दुःख व्यक्त किया।

विजयपर्वत नामक पट्टके हाथी और पवनंजय नामक पट्टके घोडेको भी बहुत दुःख हुआ। उन दोनोने आहारका त्याग किया, एवं शरीरको त्यागकर स्वर्गमें जन्म लिया। भरतेश्वरका संसर्ग सबका भला ही करता है। गृहपतिने दीक्षा ली, विश्वकर्म घरमें ही रहकर व्रतसंयमसे युक्त हुआ। आगे अयोध्यांक भी अपने हितको विचार कर दीक्षा लेगा।

चक्ररत्न आदि ७ रत्न जो अजीव रत्न हैं, शुक्रके अस्तमानके समान अदृश्य हुए। चक्रवर्तिके अभावमें वे क्यों रहने लगे?

उन रत्नोंको किसने ला दिया? उनको उत्पन्न किसने किया? सम्राट्के पुण्यसे उनका उदय हुआ, सम्राट्के जानेपर उनका अस्त हुआ। जैसे आये वैसे चले गये, इसमें आश्चर्य क्या है?

चक्रवर्तिके पुण्योदयसे विजयार्धमें जिस वज्रकपाटका उद्घाटन हुआ था, उसका भी दरवाजा अपने आप बंद हुआ। चक्रवर्तिका वैभव लोकमें एक नाटकके प्रयोगके समान हुआ।

इस प्रकार मोहके कारणसे लोक भरतेश्वरके मुक्ति जानेपर दुःख समुद्रमें गोते लगा रहे थे। उधर मोक्षसाम्राज्यमें अमृतकांताके बीच भरतेश्वर जो आनंद भोगमें मग्न हुए, उसका भी वर्णन करना इस प्रसंगमें अनुचित नहीं होगा। प्रतिदिन श्रृंगार पाकर अपनी आत्माको देखते हुए उस भरतेश्वरने कर्मोंका नाश किया, इसलिए उसका नाम श्रृंगारसिद्ध ऐसा प्रसिद्ध हुआ।

श्रृंगारसिद्ध भरतेश्वर जब मोक्षस्थानमें पहुंच रहे थे उस समय मुक्तिलक्ष्मीकी दूतियोनें आकर उसे खबर दिया। वह मुक्तिलक्ष्मी एकदम अपने पलंगसे उठकर खडी हुई। उसे आनंदसे रोमांच हुआ। मुक्तिलक्ष्मीको खबर देनेवाली दूतियां क्षमा व विरक्ति नामकी थी। अपने पतिके आनेका सुंदर समाचार इन दूतियोने दिया, इसलिए मुक्तिकांताने उनको आनंदसे आलिंगन दिया एवं विशेषरूपसे सत्कार किया। बाद अपने वीर पतिके स्वागतके लिए वह अपनी सखियोंके साथ आगे बढी। भरतेश्वर सदृश श्रृंगारसिद्धको वरनेके लिए एवं उस शिकारको अपने वश करनेके लिए वह बहुत दिनोंसे प्रतीक्षा कर रही थी। अब जब वह वीर स्वयं इसके साथ संबंध करनेके लिए आरहा है तो उसे आनंद क्यों नहीं होगा? वह हसती हुई आगे बढी, उस समय आनंदसे फूली नहीं समारही थी।

सहिष्णुता, शांति, कांति, सन्मति, ऋद्धि, बुद्धि नामक पवित्र देवियोने छत्र, चामर, दर्पण, कलश आदि मंगल द्रव्योंको हाथमें लिया है। उनके साथ वह मुक्तिलक्ष्मी भरतेश्वरके स्वागतके लिए आरही है।

श्रृंगार प्राप्त विद्यादेवियां आगेसे श्रृंगारपदोंको गा रही हैं। उनके साथ श्रृंगाररसकी वर्षा करती हुई वह मुक्तिदेवी आ रही है। कल्याणदेवियां वेणुवीणाको लेकर स्वरमंडलके साथ मंगल पदोंको गा रही हैं। उनके अनेक सन्मानपूर्ण वचनोंको सुनती हुई वह आगे बढ रही है। उस मुक्तिलक्ष्मीके साथ अणिमादि सिद्धिको प्राप्त देवियां भी हैं। उनमेंसे कोई मुक्ति देवीकी वंदना कर रही है तो कोई चरणस्पर्श कर रही है, कोई आभूषणको व्यवस्थित कर रही है, इस प्रकार बहुत आनंदके साथ वह आ रही है। उसकी बोल, उसकी चाल आदि आनंदमय है, परिवारदेवियां कानमें कह रही हैं कि तुम्हारे पति बहुत बुद्धिमान् है, कुशल है। इन सब बातोंको सुनकर वह प्रसन्न हो रही है।

उसके चरणकमलोंकी कांति तो तीन लोकमें व्याप्त होती है, और

दिव्यशरीरकी कांतिसे श्रृंगारसिद्धको भी फीका कर देगी, इस ठीविसे वह सुंदरी आगे बढ रही है। चंद्रसूर्योंकी कांति तो उसकी दासियोंके शरीरमें भी है, परन्तु यह तो कोटिचंद्रसूर्योंकी कांतिसे युक्त है।

कामिनियोंको वशमें करनेवाले कामदेव तो उस देवीके निवास प्रदेशमें प्रवेश करनेके लिए अयोग्य है। उस मुक्तिकांताकी दासियां अपनी दृष्टिसे हजारों कामदेवोंको वशमें कर सकती है।

दिव्यपादसे लेकर मस्तकतक संजीवन अमृत ही भरा पड़ा है। उसे जन्म, जरा, मरण नहीं है। अत एव अमृतकामिनीके नामसे उसका उल्लेख करते हैं। नर, सुर, नाग लोककी उत्तमस्त्रियां उसकी चरणदासियां हैं। पादांगुष्ठकी सेविकायें हैं। भगवान् परमात्मा ही जाने उस अमृतकांताके सौंदर्यको कौन वर्णन कर सकता है ?

वह अमृतकामिनी विलासके साथ वीरभरतेश्वरके स्वागतके लिए आ रही है, इधर यह श्रृंगारसिद्ध बहुतवैभवके साथ आ रहा है।

तीन लोककी उत्तमोत्तमस्त्रियोंको भोगकर उनसे तिरस्कार उत्पन्न होनेपर तीन शरीरोंका जिसने नाश किया, केवल चित्प्रकाशको ही शरीर बना लिया है वह, श्रृंगारसिद्ध आ रहा है।

इधर उधर फिरकर देखनेकी दृष्टि वहांपर नहीं है, चारों ओरकी बातोंको स्पष्ट देखने व जाननेकी सामर्थ्य उस परमात्मामें विद्यमान है। पुनः न्यूनताको न प्राप्त होनेवाला यौवन है। तीन लोकको व्याप्त होने वाला प्रकाश है। करोडों इन्द्र, करोडों नागेंद्र, करोडों नरेंद्र एवं करोडों कामदेवोंकी संपत्ति व लावण्य मेरे पादांगुष्ठमें निहित हैं, इस बातको व्यक्त करते हुए वह आ रहा है। वह वीर बुद्धिमान् हैं, सुंदर है, तीन लोकको उठानेकी सामर्थ्य रखता है। महासुखी है; मुक्तिसतीको इसे देखते ही हार खानी पडेगी, इस प्रकारके वैभवसे वह वहां आरहा है।

उसके साथ कोई नहीं है, वह श्रृंगारसिद्ध अकेला है। वीरतापूर्ण ठीविमें आगे बढकर उसने मुक्तिकांताको देखा तो मुक्तिकांताने भी श्रृंगार

सिद्धको देख लिया। दोनोंको एकदम रोमांच हुआ। आनंदपरवश होकर दोनों मूर्छित होना ही चाहते थे, इतनेमें परब्रह्म शक्तिने उस मूर्छाको दूर किया। तत्काल सरस्वतीदेवीने उसे जागृत किया एवं कहने लगी कि तुम्हारे पतिकी आरती उतारो तब उस देवीने श्रृंगारसिद्धका चरणस्पर्श किया। एवं पतिके सामने खडी होगई। परिवारदेवियां कलश व दर्पणको हाथमें लिये हुई थी, परन्तु श्रृंगारसिद्धकी दृष्टि उस ओर नहीं थी। उसकी दृष्टि मुक्तिकांताके रत्नकुचकलश व मुखदर्पणमणिकी ओर थी। वह उसीको आनंदसे देखरहा था। तत्क्षण देवीने पतिकी आरती उतारकर कंठमें पुष्पमाला धारण कराई। एवं स्त्रियोंके धवल गीतके साथ श्रृंगारसिद्धके चरणकमलोंको नमस्कार किया। जब मुक्त्यंगना श्रृंगारसिद्धके चरणोंमें पडी तो उसे हाथसे पकडकर उठानेकी इच्छा तो एक दफे हुई। परंतु पुनः सोचकर वह सिद्ध वैसा ही खडा रहा। न मालुम उसके हृदयमें क्या बात थी।

विवाह तो कन्यादानपूर्वक हुआ करता है। अब यहांपर इस कन्याको दान देनेवाले माता पिता नहीं हैं। ऐसी अवस्थामें स्वयं प्रसन्न होकर आई हुई कन्याके साथ मैं पाणिग्रहण कैसे कर सकता हूं। इस विचारसे वह श्रृंगारयोगी उसकी ओर देखते ही खडा रहा।

मुक्तिकांताकी सखियोंने सिद्धके हृदयको पहिचान लिया। कहने लगी कि स्वामिन्! तुम्हारे प्रति मोहित होकर आई हुई कन्याके हाथको ग्रहण करो, सुविख्यात मुक्तिकांताको देनेवाले कौन है। उसके पिता कौन? माता कौन? वह स्वयंसिद्ध विनीता है। कितने ही समयसे आपके आगमनकी प्रतीक्षा कररही है। अब आपके आनेपर आनंदसे चरणोंमें पडनेवाली प्रेयसीके पाणिग्रहण न करते हुए आप खडे २ देखरहे हैं। हे निष्करुणि! आपके हृदयमें क्या है?। कानकी शिकारमें आपको सुनती हुई, आंखकी शिकारमें देखती हुई एवं

प्रत्यक्ष संसर्गके लिए हृदयसे कामना करनेवाली युवती कामिनीको जब आप उठाकर आलिंगन नहीं देते हैं तो आप आत्मानुभवी कैसे हो सकते हैं ? हाय ! दुःखकी बात है।

वह मुक्तिकामिनी प्रसन्न होकर आपके चरणोमें पडी है। हमारी स्वामिनी महापतिभक्ता है, आप नायकोत्तम हैं। इसलिए इसे अपनी स्त्री बनावें।

इन बातोंको सुनकर भी वह शृंगारसिद्ध हंसते हुए खडा ही रहा। इतनेमें उसके हृदयमें विराजमान गुरुहंसनाथने कहा कि हे चतुर ! इस कन्याको मैं प्रदान करता हूं। उसका पाणिग्रहण करो। तत्क्षण उसने उसका हाथ पकडलिया। मस्तकपर हाथ लगाकर उठाया, विशाल बाहुवोंसे गाढ आलिंगन दिया। परिवारदेवियोने आनंदसे जय जयकार किया। अब वह कुशलसिद्ध अधिक विलंब न करके उसके हाथ पकडकर शय्यागृहकी ओर लेगया।

अब सब दासियां बाहर रहगई। उस शय्यागृहमें दोनों ही प्रविष्ट होगये। वहांपर वे दोनों योगी या परमभोगी निर्वाणरतिके आनंदमें मनके अभिलाषाकी तृप्ति होनेतक मग्न होगये।

परम सम्यक्त्वका शय्यागृह है। अगुरुलघु ही वहांपर चंदोवा है। अव्याबाधरूपी परदा वहांपर मौजूद है। उसके अंदर वे चले गये। अनंतदर्शनरूपी दीपक है। अनंतवीर्यरूपी पलंग है। सूक्ष्मगुणरूपी सुंदर तकिया है। अवगाहनगुणरूपी मृदुतल्प (गादी) है। वहांपर सुज्ञान संयुक्त दोनों सुंदर भोगी भोगमें मग्न होगये। शरीर शरीरके अंदर प्रविष्ट हो जाय इस प्रकार एकमेकको आलिंगन देकर शक्करसे भी मीठे ओठोंसे चुंबन ले रहे हैं। इस प्रकार बहुत आनंदके साथ उन दोनोने संभोग किया। आनंदसे चुंबनके समय परस्पर ओठको स्पर्श कर रहे थे, तो करोडो क्षीरसमुद्रोंको पीनेका आनंद आरहा है। जब मुक्तिदेवीके स्तनोंको हाथसे पकड रहा है तो तीन लोकका वैभव हाथमें आया हो इतना आनंद उस शृंगारसिद्धको होरहा है।

उसके मुखको देखते हुए तीन लोकके मोहनस्वरूपको देखनेके समान आनंद हो रहा है। उसकी स्मितनेत्रोंको देखनेपर तो अरबो खरबों कामदेवोंके दरबारमें बैठे हुएके समान आनंद आ रहा है।

सुंदर, कृशकटी, प्रौढभुज, मृदु जंघाओंको स्पर्श करते हुए जब वह भोग रहा है तो तीन लोकमें मोहनरस लबालब भरनेके समान आनंद आ रहा है। लावण्य भरे हुए उसके रूपको देखनेके लिए और उसके मनोभावको जाननेके लिए केवलज्ञान और केवलदर्शन ही समर्थ है। इंद्रियोंकी शक्ति वहांतक पहुंच नहीं सकती है।

सरससल्लाप, चुंबन, योग्य हास्य, नेत्रकटाक्षक्षेप, प्रेम व आलिंगन आदिके द्वारा वह मुक्त्यंगना उस सिद्धके साथ एकीभावको प्राप्त हो रही है। इंद्रकी शची, नागेंद्रकी देवी, चक्रवर्तिकी पट्टरानीमें जो इन्द्रिय सुख होता है उसे वह तिरस्कृत कर रही है। उसकी बराबरी कौन कर सकते हैं?

अब वह श्रृंगारसिद्ध अनंतजन्मोंमें तीन लोकमें सर्वत्र अनुभूत सुखको भूल गया। मुक्तिकांताके सुखमें वह परवश हुआ। विशेष क्या? वह उसके साथ अद्वैतरूप बन गया।

मोहके वशीभूत होकर अनेक जन्मोंमें अनेक स्त्रियोंके साथ भोगकर भी वहांपर तृप्ति नहीं हुई। परन्तु उस अमृतकांताके भोगनेपर वह तृप्त हुआ एवं आरामके साथ उसके साथ रहा। वह परमानंदसुख आज उसे मिला, इसलिए आज उसकी आदि है, परन्तु वह कभी नष्ट होनेवाला नहीं है, अतएव अनंत है। इस प्रकारके अविनश्वर अमृतकांताके सुखको उस श्रृंगारसिद्धने प्राप्त किया।

अब उनके रूप दो विभागमें नहीं है। दोनों एक रूप होकर रहते हैं। इनके अद्वैत प्रेमको देखकर अडोस पडोसमें रहनेवाले सिद्ध व मुक्तिकांतायें प्रसन्न होने लगी है। उस श्रृंगारसिद्धने तीन प्रकारके रत्न जो कहे गये हैं उनको एक ही रूपमें अनुभव किया। उसे भी वहांपर अमृतस्त्रीरत्नके रूपमें देखा। इस प्रकारका वह रत्नकारसिद्ध हंसनाथके मनोरत्नगेहमें परमानंदमय सुखसे निवास करने लगा।

इधर अयोध्याके महलमें स्त्रियोंके बीच जो दुःख समुद्र उमड पड़ा था उसे अर्ककीर्ति और आदिराजने शांत किया। उनको अनेक प्रकारसे सांत्वनपर उपदेश दिया। संसारसुख किसके लिए स्थिर है? कैवल्यसंसिद्धिका नाश कभी नहीं होसकता है। हंसनाथकी भक्ति क्या नहीं दे सकती है? इसलिए हंसनाथ ही हमारे लिए शरण हैं। इस प्रकार उन्होने उन स्त्रियोंको समझाया।

अब कुछ समयमें ही अविलंब अर्ककीर्ति व आदिराज भी परम दीक्षाको ग्रहण करेंगे। उसे कलावंत सज्जन अर्ककीर्ति—विजयके नामसे वर्णन करेंगे। इधर पराक्रमियोंके स्वामी भरतेश्वरकी निर्वाणपूजा शक्र आदि प्रमुखोंने सुक्रमके साथ की एवं अपने २ स्थानपर चले गए।

जीवनभर शरीरमें जरा भी न्यूनताका अनुभव न करते हुए दीर्घकालतक सुखोंको अनुभव कर एकदम भरतेश्वर मोक्षसाम्राज्यके अधिपति बने। यहांपर मोक्षविजय नामक चौथा कल्याण पूर्ण होता है।

भरतेश्वरकी महिमा अपार है, वह अलौकिक विभूति है। संसारमें रहे तबतक सम्राट्के वैभवसे ही रहे, तपोवनमें गये तो ध्यानसाम्राज्यके अधिपति बने। वहांसे भी कर्मोंपर विजय पाकर मोक्षसाम्राज्यके अधिपति बने। उनका जीवन सातिशय पुण्यमय है। अतएव मोक्षसाम्राज्यमें उनको अधिष्ठित होनेके लिए देरी न लगी, उनकी सदा भावना रहती थी कि—

हे परमात्मन्! अनेक चिंताओंको छोडकर मैं एक ही याचना करता हूं, वह यह कि तुम हर समय मेरी रक्षा करो।

हे सिद्धात्मन्! आप विस्मयस्वरूप हैं, विचित्रसामर्थ्यसे युक्त हैं। आकस्मिक महिमा संपन्न हैं। महेश! अस्मदाराध्य! दशदिशारश्मि! हे निरंजनसिद्ध! मुझे सन्मति प्रदान करो।

इसी भावनाका फल है कि उन्होने अलौकिक परमानंदमय पदको प्राप्त किया।

इति चक्रेशकैवल्यसंधि

मोक्षविजयनाम

चतुर्थकल्याणं सम्पूर्णम्।

अर्ककीर्ति-विजय ।

सर्वनिर्वेगसंधि ।

परमपरंज्योति कोटिचंद्रादित्यकिरणसुज्ञानप्रकाश ।
सुरसुमकुटमणिरंजितचरणाब्ज शरण श्रीप्रथमजिनेश ॥

परमात्मन् ! क्या कहूं, उस भरतेश्वरकी महिमाको, उन्होने जब मुक्तिको प्राप्त किया तो लोकमें सर्व जीव वैराग्य संपन्न हुए । लोकमें अग्रगण्य भरतेश्वरका भाग्य जब इस प्रकारका है तो हमारी संपत्तिका क्या ठिकाना ? यह कभी स्थिर रह सकती है ? धिक्कार हो, इस विचारसे लोग अपनी संपत्ति आदिको छोडकर दीक्षित होरहे हैं ।

षट्खंडाधिपति सम्राट्ने जब भोगका त्याग किया तो हम लोग इस अल्पसुखमें फंसे रहें यह ग्वालोंकी ही वृत्ति है, बुद्धिमान इसे पसंद नहीं कर सकते हैं, इस विचारसे बुद्धिमान् लोग अपने परिग्रहोंको त्यजकर कोई तपस्वी बन रहे हैं ।

भरतेश्वर तो महाविवेकी था, बुद्धिमान था, जब उसने इस विशाल भोगको परित्याग किया, उसे जानते देखते हुए भी हम लोग मोहमें फंसे रहें तो तब यह भेडियोंकी वृत्ति है । इसका परित्याग करना ही चाहिए, इस विचारसे कोई तपश्चर्याकी ओर बढ रहे हैं ।

भरतेश्वरके रहते हुए तो संसारमें रहना उचित है, परंतु उसके चले जानेपर भिक्षासे भोजन करना ही उचित है, इसीमें उत्तम सुख है । इस विचारसे कोई तपस्वी बन रहे हैं ।

स्त्रीपुरुष सभी वैराग्यसे युक्त होरहे हैं । कुछ लोग एकत्रित होकर चिंतासे विचार करने लगे कि इस प्रकार सभी स्त्रीपुरुष दीक्षित होजाय तो इनको आहार देनेवाले कौन रहेंगे ? इस प्रकारकी चिंताका अवसर प्राप्त हुआ । जिनका कर्म ढीला होगया है वे तो दीक्षित होकर चले गए । जिनका कर्म दृढ था, कठिन था वे तो अपने घरमें ही रहकर निर्मल मुनियोंकी सेवा शुश्रूषा करने लगे । धर्मके लिए दारिद्य कहां ?

पोदनपुरके अधिपति महाबल राजा विरक्त होकर दीक्षाके लिए सन्नद्ध हुआ। उसने अपने दोनों भाईयोंको राज्यपालन करनेके लिए आग्रह किया। उन दोनों भाईयोंने स्पष्ट निषेध किया। अब तीनोंने विचार किया कि अर्ककीर्ति और आदिराजको सर्व परिस्थिति समझाकर अपन तीनो दीक्षित होंगे। तीनों ही अयोध्याकी ओर रवाना हुए।

उनके साथ अगणित सेना नहीं, गाजाबाजा भी नहीं, सुंदर अलंकार भी नहीं है। सर्वश्रृंगारोंसे रहित होकर वे अयोध्यानगरीमें प्रविष्ट हुए।

पिताके रहनेपर तो उस नगरकी शोभा ही और थी। अब तो वह नगर बिलकुल शून्य मालुम होरहा है। इन पुत्रोंको बहुत दुःख हुआ। वे कहने लगे कि इस नगरमें रहनेकी अपेक्षा अरण्यमें रहना अधिक सुखकर है। हाय! पिताजी अपने साथ ही नगरकी संपत्तिको भी लूट लेगये! नहीं तो उनके अभावमें इस नगरकी यह हालत क्यों हुई? अयोध्यानगरकी यह हालत हुई, इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? सारे देश ही कलाहीन होगया है। इस दुःखके साथमें भरतेशकी राज्यशासनमहत्तापर भी गर्व करने लगे। आगे बढते हुए सामने कांतिविहीन रत्नगोंपुर उनको दृष्टिगोचर हुआ। उसे देखकर और भी आश्चर्यचकित हुए कि पिताजीके साथ ही इसका भी श्रृंगार चला गया। इस तेजविहीन राजभवनमें एवं प्रजाओंके आंसूसे द्रवित अयोध्यामें हमारे भाई अर्ककीर्ति आदिराज अभीतक ठहरे रहे, यह आश्चर्यकी बात है।

दूरसे ही जब तीनों कुमार अर्ककीर्तिकी ओर आरहे थे तब पासमें बैठे हुए लोगोंसे अर्ककीर्तिने पूछा कि यह कौन हैं? फिर जब पास आये तो मालुम हुआ कि ये मेरे भाई हैं। पिताजीके चले जानेपर राजठीविको उन्हींके साथ इन्होंने रवाना किया मालुम होता है। पिताजी जब थे तब जब कभी ये कुमार आते तो बहुत वैभव व श्रृंगारके साथ आते थे। इनके श्रृंगारको देखनेका भाग्य पिताजीको था। परंतु मेरा भाग्य तो दारिद्र्यरससे युक्त भाईयोंको देखनेका है। हाय! दुःखकी बात है।

समीप आकर भाईके चरणोंमें तीनोंने मस्तक रखा एवं तीनों कुमार मिलकर दुःखसे रोने लगे। भाई! पिताजीको कहां भेजा? हमें अगर पहिलेसे कहते तो क्या कुछ बिगडता था? हमने तुम्हारा ऐसा कौनसा अपराध किया था? इस प्रकार पादस्पर्श कर रोने लगे।

अर्ककीर्तिके आंखोंमें भी पानी भर आया। तीनों कुमारोंको उठाते हुए कहने लगा कि भाई मेरी गलती हुई, क्षमा करो। उन कुमारोंने आदिराजको नमस्कार किया। दुःखोदयके साथ उसने आलिंगन दिया। एवं तीनों कुमारोंको बैठनेके लिए कहा। वे तीनों पासमें ही आसनपर बैठ गए। अर्ककीर्तिराजाने कहा कि भाई महाबल! पिताजीको मोक्ष जानेमें कुछ देरी नहीं लगी। नहीं तो क्या तुम्हे मैं खबर नहीं देता, यह कैसे हो सकता है। भाई! आयुष्य एकदम क्षीण होगया इसलिए पिताजीने इस भूभार को जबर्दस्ती मुझपर डालकर वायुवेगसे कर्मोंको जलाया एवं कैवल्यधाममें पधारे।

उत्तर में बुद्धिमान् महाबल राजाने कहा कि भैया! आपका इसमें क्या दोष है, हमे कुछ दुःख हुआ, इससे बोले। परंतु हम पुण्य-हीन हैं। अतएव हमें पिताजीका अंतिमदर्शन नहीं हो सका।

भैया! पिताजी गए तो क्या हुआ? अब तो हमारे लिए पिता-जीके स्थानमें आप ही हैं। इसलिए हमें आज आपसे एक निवेदन करना है। यह कहते हुए तीनों कुमार एकदम उठे व महाबल राजाने बडे भाईको हाथ जोडकर कहा कि भैय्या! कृपाकर हमारी प्रार्थनाको स्वीकार करना चाहिए। भैय्या! पिताजी जब गए तभी हमारे मनका संतोष भी उन्हीके साथ चला गया, मनमें भारी व्यथा हो रही है। शरीर हमें भारस्वरूप मालुम होरहा है। अब तो यह जीवन हमें स्वप्नसा मालुम होरहा है।

हिमवान् पर्वत और सागरांत पृथ्वीको पालन करनेवाले पिताजीका अखंड षट्खंडवैभव जब अदृश्य हुआ तो जीवनोपायके लिए प्रदत्त हमारी छोटीसी संपत्ति स्थिर कैसे मानी जासकती है?

भैया ! पिताजीने अवधिज्ञानके बलसे अपने आयुष्यके अंतको पहिचान लिया। एवं योग्य उपाय कर मुक्तिको चले गये। हमें तो हमारे आयुष्यको जाननेकी सामर्थ्य ही कहां है ?

ज्येष्ठ सहोदर ! शरीर नाशशील है, आत्मा अविनश्वर है, यह बात बार २ पिताजी हमें कहते थे। ऐसी हालतमें नाशशील शरीरको ही विश्वास कर नष्ट होना क्या बुद्धिमानोंका कर्तव्य है ? । आप ही कहिये। भैया ! इसलिए हम दीक्षावनमें जाते हैं। हमें संतोषके साथ भेजो" इसप्रकार कहते हुए तीनों कुमार अर्ककीर्तिके चरणोंमें साष्टांग नमस्कार करने लगे। राजा अर्ककीर्तिके हृदयमें बडे भारी धक्का पहुंचा। उन्होंने भाईयोंसे कहा कि भाई ! उठो, अपन विचार करेंगे। तब तीनों कुमारोने कहा कि हम उठ नहीं सकते हैं; हमारी प्रार्थनाको स्वीकार करोगे तो उठेंगे। नहीं तो नहीं उठेंगे।

पुनः अर्ककीर्तिने कहा कि भाई ! इसमें वादकी क्या जरूरत है। आदिराज तुम, हम मिलकर योग्य विचार करेंगे। उठो, तब वे कुमार उठकर खडे हुए।

पुनः अर्ककीर्तिने कहा कि आप लोगोने विचार जो किया है वह उत्तम है। उसे करनेमें कोई हर्ज नहीं है। पिताजीके चले जानेपर राज्यवैभवको भोगना उचित नहीं है। दीक्षा लेना ही उचित है। तथापि एक विचार सुनलो। पिताजीके वियोगसे सभी प्रजा परिवार दुःखसागरमें मग्न है। इसलिए कमसे कम एकवर्ष अपन रहकर सबका दुःख शांत करें। फिर तुम हम सभी मिलकर दीक्षा लेवें व तपश्चर्या करें, यह मेरी इच्छा है। तबतक ठहरना चाहिये। साथमें अर्ककीर्तिने आदिराजकी ओर संकेत करते हुए कहा कि आदिराज ! इस संबंधमें तुम क्या कहते हो। तब आदिराजने भी उन भाईयोंसे कहा कि भैया ठीक तो कहरहे हैं। केवल एक वर्षकी बात है। अधिक नहीं इसलिए तुमको मान लेना चाहिये।

ज्येष्ठ सहोदरोंके वचनको सुनकर महाबल राजाने कहा कि भैया! मनुष्यको क्षणमें एक परिणाम उत्पन्न होता है। चित्त चंचल है। जीवको जो विरक्ति आज जागृत हुई है वह यदि विलीन हो गई तो फिर बुलानेपर भी नहीं आसकती है। सबको संतुष्ट कर आपलोग सावकाश दीक्षाके लिए आवें। हमारे निवेदनको स्वीकृतकर आज ही हमें भेजना चाहिये। इस प्रकार कहते हुए पुनः चरणोंमें मस्तक रखा। आपको पिताजीका शपथ है। आप दोनोंके चरणोंका शपथ है। हम-लोग तो अब यहां नहीं रहेंगे। हमें संतोषके साथ भेजिये।

अर्ककीर्ति राजाने अगत्या सम्मति देदी। भाई! आपलोग आगे जावो। हम लोग पीछेसे आयेंगे। तीनों भाईयोंको इस वचनको सुन-कर परम हर्ष हुआ। कहने लगे कि भैया! हम जाते हैं, पोदनपुरमें हमारे कुमार हैं। उनको अपने पुत्रोंके समान संरक्षण करना। अब उनके मनमें कोई संकल्प विकल्प नहीं रहा।

अर्ककीर्तिने कहा कि आज हमारी पंक्तिमें बैठकर भोजन करो! कल चले जाना। उत्तरमें महाबल राजाने कहा कि भाई! पिताजीके महलको देखनेपर शोकोद्रेक होता है। इसलिए हम यहां भोजनके लिए नहीं ठहरेंगे। पुनश्च दोनों भाईयोंके चरणोंको नमस्कार कर वे तीनों वहांसे रवाना हुए। अर्ककीर्ति आदिराजके नेत्रोंमें अश्रुधारा बह रही है। परंतु वे तीनों सहोदर हसते हुए आनंदसे फूलकर जारहे हैं। संसार विचित्र है। उनके चले जानेपर भरतेश्वरके शेष सहोदरोंके पुत्र वहांपर श्रृंगा-रशून्य होकर आये। और उन्हींके समान शोकाकुलित हुए। वृषभसेनके पुत्र अनंतसेनेंद्रको आदि लेकर सभी भाई वहांपर आये और अपने दुःखको व्यक्त करने लगे, उनको उनके पितावोंने केवल जन्म दिया है। परंतु वे बाल्यकालमें ही उनको छोडकर चले गये हैं। पीछेसे भरतेश्वरने ही उनका पालन प्रेमके साथ किया था। उनको दुःख क्यों नहीं होगा? भरतेशने अपने पुत्रोंमें व इनमें कोई भेद नहीं देखा था। अपने पुत्रोंके समान ही इनका भी पोषण किया। फिर इनको पिताके मुक्ति जानेपर शोक क्यों नहीं होगा?। वे दुःखके साथ स्त्रियोंके समान विलाप

करने लगे कि हम लोगोने पिताजीका दर्शन नहीं किया। उनको देखते तो उन्हींसे दीक्षा लिये विना नहीं छोडते। वे तो हमे मार्गमें ही छोडकर चले गये। पूर्वमें हम लोगोने किसके व्रताचरणका तिरस्कार किया होगा? किन सुखियोंकी निंदा की होगी? इसलिए हम लोगोंको उस धीरयोगीके हाथसे दीक्षा लेनेका भाग्य नहीं मिला।

तुषमाष ज्ञान प्राप्तकर पिताजीके हाथसे मनोभिलषित दीक्षा लेनेके लिए हम लोगोने क्या वृषभराज, हंसराज आदि पुत्रोंका अतुल भाग्य पाया है! नहीं। अस्तु। अब हीनपुण्य हमलोग यदि अपेक्षा करें तो वह गुरु हमें क्योंकर प्राप्त हो सकता है। हमें अब भोगकी जरूरत नहीं है। दीक्षाके लिए हम जायेंगे। इस प्रकार कहते हुए उन्होंने बडे भाईसे प्रार्थना की।

अर्ककीर्तिने कुछ दिन रुकनेके लिए कहा परंतु उन्होने मंजूर नहीं किया। तब अर्ककीर्तिने कहा कि अच्छा! जावो। हमें भी अब विशेष आशा नहीं रही है, हम भी तुम्हारे पीछे २ आयेंगे। जाते हुए उन भाइयोंने अपने पुत्रोंको योग्यरूपसे पालन करनेके लिए हाथ जोडकर कहा एवं सब अलग २ दिशामें दीक्षाके लिए चले गये, जैसे पंखेरू अलग २ दिशावोंमें उड जाते हों।

इन सहोदरोंके चले जानेपर अर्ककीर्तिकी बहिनोंके साथ अर्ककीर्तिके ३२ हजार बहनोई इस दुःखके समय सांत्वना देनेके लिए आये। कनकराज, कांतिराज आदि बहिनोई श्रृंगारशून्य होकर अर्ककीर्तिके पास आये, उधर बहिनें अंदर महलमें चली गईं। अर्ककीर्ति उनको देखकर उठा तो उसी समय उन लोगोनें भी दुःखके साथ अश्रुपात करते हुए आलिंगन दिया। एवं सभी बैठगये। अर्ककीर्ति आदिराजको देखकर सांत्वना देते हुए कहने लगे कि मामाजीकी वृत्ति आश्चर्यकारक है। कितना शीघ्र दीक्षा ली। कर्मको जलाया कितना शीघ्र! और साथमें मोक्षको भी कैसे जल्दी चले गये। उनके समान अक्षुण्ण महिमाको धारण करनेवाले और कौन हैं? धन्य हैं।

षट्खंडको वश करते समय मामाजीको कुछ समय लगा। परंतु मोक्षको वश करनेके लिए तो पौने चार घटिका ही लगी। आश्चर्य है!

उस दिन लीलाके साथ राज्यको जीत लिया तो आज लीलासे ही मुक्ति साम्राज्यके अधिपति बने। मामाजी सचमुचमें कालकर्मके भी स्वामी हैं।

लोक सभी जयजयकार करे, इस प्रकारकी अतुल कीर्तिको पाकर मुक्ति चले गये। इस कार्यसे सबको संतोष होना चाहिये। आपलोग व्यर्थ दुःख क्यों करते हैं। संसारमें स्थिर होकर कौन रहने लगे हैं। मामाजी जहां रहते हैं वही स्थिर स्थान है। कुछ समय विश्रांति लेकर अपन सभी मुक्तिके लिए प्रस्थान करेंगे। मामाजी गये तो क्या हुआ। हमें आत्मसंवेदन ज्ञानको देकर चले गये हैं। इसलिए उनके मार्गको ही अनुकरणकर अपन भी जावें, व्यर्थ दुःख क्यों करना चाहिये। इस प्रकार उन लोगोने अर्ककीर्ति व आदिराजको सांत्वना दी। अर्ककीर्तिने भी उत्तरमें कहा कि हमें दुःख नहीं है। थोडासा दुःख था, वह आपलोगोंके आनेपर चला गया। आपलोग बहुत दूरसे आकर थक गये हो। इसीका मुझे दुःख हैं। आप लोग अपने मामाके महलमें वैभवसे आते थे और वैभवसे जाते थे। परंतु आज क्षोभके साथ आकर कष्ट उठा रहें हो। मेरा भाग्य ऐसा ही है।

उत्तरमें उन बहनोइयोंने कहा कि आप दोनोंके रहनेपर हमें तो मामाजीके समान ही आनंद रहेगा। इसलिए आप लोग कोई चिंता मत करो। इस प्रकार कहकर ३२ हजार बंधुवोंनें उनके दुःख शांत करनेका प्रयत्न किया। आदिराजको वहां उनके पास छोडकर स्वयं अर्ककीर्ति अपनी बहनोंको देखनेके लिए महलके अंदर चले गये। वहांपर शोकसमुद्र उमड पडा। कनकावली रत्नावली आदि बहिनोंने अश्रुपात करती हुई अर्ककीर्तिके चरणोमें लोटकर पूछा कि भैया! पिताजी कहां हैं? हमारी मातायें कहां हैं? यह महल इस प्रकार कांतिविहीन क्यों बनगया? भैया! तुम सरीखे मनुमार्गियोंके होते हुए ऐसा होना क्या उचित है?

तुम्हारे लिए जाते समय उन्होने क्या कहा? हमें भूलकर वे क्यों चले गये? हाय! हमारा दुर्दैव है। धिक्कार हो। अर्ककीर्तिका हृदय भी शोकसंतप्त हुआ। तथापि धैर्यके साथ उनको उठाया। एवं अनेक विधसे सांत्वना देनेके लिए प्रयत्न किया।

बहिनो! अब दुःख करनेसे क्या होगा। मुक्तिको जो गये हैं वे छोटकर हमारे साथ पहिलेके सामान क्या प्रेम कर सकते हैं! शोकसे व्यर्थ दुःख करनेसे क्या प्रयोजन है?

उन्होंने शिवसुखके लिए प्रयत्न किया है! भवसुखके लिए नहीं। ऐसी हालतमें हमको आनंद होना चाहिये। अविवेकसे दुःख करनेका कोई कारण नहीं। बहिनो! संपत्तिको छोडकर राज्य करनेवालेके समान देहको छोडकर वे मोक्ष साम्राज्यमें आनंदमग्न हैं तो हमें दुःख क्यों होना चाहिये!

बुद्धिमती बहिनो! नाशशील राज्यको पिताने पालन किया तो उस दिन तुमलोग बहुत प्रसन्न होगई थीं। अब अविनश्वर मुक्ति साम्राज्यको पिता पालन करने लगे तो क्यों नहीं संतुष्ट होती ?। दुःख क्यों करती हैं? अपने पिताकी शक्तिको तो देखो। तपश्चर्यामें भी शक्तिकी न्यूनता नहीं हुई। अर्धघटिकामें ही कर्मोको नष्टकर मुक्ति चले गये। तीन लोकमें सर्वत्र उनकी प्रशंसा हुई।

हमारे पिताजी सुखसे रहे, सुखसे मुक्ति गये, हमारे सर्व बंधु मुक्ति जायेंगे। इसलिए अपनेको अब दुःख करनेकी आवश्यकता नहीं है। सहन करें, अपन भी कल जाकर उनसे मिल सकेंगे।

बहिनो! शोक करनेसे शरीर कृश होता है, आयुष्य क्षीण होता है। तुम लोगोंको मेरा शपथ है, दुःख मत करो। मंगल विचार करो। मंगल कार्य करो। इस प्रकार समझाकर अपनी बहिनोंका दुःख दूर किया। उत्तरमें बहिनोंने भी कहा कि भाई! पहिले कुछ दुःख जरूर था, अब तुम्हारे वचनोंको सुनकर तुम्हारा शपथ है, वह दुःख दूर हुआ। आदिराज और तुम सुखसे जीवो यही हम चाहती हैं। इस प्रकार कहती हुई भाईको सर्व बहिनोंने नमस्कार किया।

तदनंतर सर्व बहिनोंको स्नान देवार्चनादि कराने लिए अपनी स्त्रियोंसे कहकर राजा अर्ककीर्ति अपनी राजसभामें आये। वहांपर अपने ३२ हजार बहनोइयोंको उपचार वचनसे संतुष्ट कर सेवकोंके साथ स्नानगृहमें स्नानके लिए भेजा। आदिराज और स्वयंने भी स्नानकर देवपूजा की। बादमें सभी बंधुवोंके साथ बैठकर भोजन किया। इस प्रकार पितृवियोगके दुःखको सबको भुलाया।

तदनंतर उन बहिनोईयोंसे अर्ककीर्तिने कहा कि हमारे माता पिताओंने हमको छोडकर दीक्षा वनकी ओर प्रस्थान किया, अब महल सूनासा मालूम होता है। इसलिए कुछ दिन आप लोग यहां रहें एवं हमें आनंदित करें। उन लोगोंने भी उसे सम्मति देकर कुछ समय वहींपर निवास किया। गुणोत्तम अर्ककीर्तिने भी उनको व अपनी बहिनोंको बार २ अनेक भोग वस्तुओंको देते हुए उनका सन्मानकर आनंदसे अपना समय व्यतीत किया।

दूसरे दिन भानुराज, विमलराज और कमलराज भी अपने पुत्र कलत्र परिवारके साथ वहांपर आये। ये अर्ककीर्ति आदिराजके मामा हैं, इसलिए अर्ककीर्ति आदिराजने भी उनका सामने जाकर स्वागत किया। विशेष क्या ! उनका भी यथापूर्व यथेष्ट सत्कार किया गया, स्त्रियोंको भी स्त्रियोंके द्वारा सत्कार कराया गया, इस प्रकार कुछ समय वहांपर आनंदसे रहे।

इसी प्रकार अर्ककीर्तिसे मिलनेके लिए आनेवाले बाकीके साडे तीन करोड बंधुवर्गोंका भी उन्होंने अपने पिताके समान ही आदरातिथ्यसे यथायोग्य सत्कार किया।

सबको समादरपूर्ण व्यवहारसे संतुष्ट कर, बहिनों व उनके पतियोंका भी सत्कार कर राजेंद्र अर्ककीर्तिने कुछ समयके बाद उनकी विदाई की। भरतेश्वरके मुक्ति जानेपर लोकमें एक बार दुःखमय वातावरण निर्माण हुआ। परन्तु भरतेश्वरके विवेकी पुत्र अर्ककीर्तिने अपने विवेकसे उसे दूर किया। सम्राट् भरत ऐसे समयमें हमेशा उस गुरु हंसनाथके शरणमें पहुंचते थे। वहांपर सदा सुख ही सुखका उनको अनुभव होता था।

उनकी हमेशा यह भावना रहती थी कि—

हे परमात्मन् ! दुःख, ममकार और विस्मृति सब भिन्न २ भाव हैं, इस विवेकको जागृत करते हुए मेरे हृदयमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन् ! चंद्रको जीतनेकी धवलकीर्तिसे चंद्र और सूर्यके समान विशिष्ट तेजको धारण करनेवाले, चंद्रार्ककीर्ति विजय ! हे मोक्षेंद्र ! निरंजनसिद्ध ! मेरा उद्धार करो !

इति सर्वनिर्वेगसंधिः।

अथ सर्वमोक्षसंधिः ।

प्रतिनित्य आते हुए अपने बंधुवोंका योग्य सत्कार कर राजेंद्र अर्ककीर्ति भेजते रहे। एक दिन राजसभामें सिंहासनासीन थे, उस समय एक नवीन समाचार आया।

विमलराज, भानुराज और कमलराजने अपने पुत्र कलत्रके साथ दीक्षा ली है, यह समाचार मिला। अपने भानजोंको सांत्वना देनेके लिए जब वे अयोध्यामें आये थे, उसी समय महलमें चक्रवर्तिकी संपत्तिको देखकर उन्हे वैराग्य उत्पन्न हुआ था। इसी प्रकार अर्ककीर्तिके बांधवोंमें बहुतसे लोगोंके दीक्षित होनेका समाचार उसी समय मिला। अर्ककीर्ति और आदिराजके हृदयमें भी विरक्ति जागृत हुई। भाईके मुखको देखकर अर्ककीर्ति हसा, और आदिराज भी उसके मुखको देखकर हसा। एवं कहने लगा कि हमारे सर्व बांधव आगे चले गये। अब हमें विलंब क्यों करना चाहिये। हमें धिक्कार हो।

अर्ककीर्तिने भाईसे कहा कि तुम ठीक कहते हो। तुम कोई सामान्य नहीं। कैलासनाथके वंशज हो। मैं ही अभीतक फंसा हुआ हूं। अब मैं भी निकल जावूंगा, देखो! पिताजीकी नवनिधि, चौदह रत्न एवं अपरिमित संपत्ति जब एकदम अदृश्य हुई तो इस सामान्य राज्यपदपर विश्वास रखना अधर्मपना है। मेरे प्रभुके रहते हुए युवराज पदमें जो गौरव था, वह मुझे आज अधिराजपदमें भी नहीं है। इसलिए मेरे इस गौरवहीन अधिराजपदको जलाओ। इसको धिक्कार हो। पहिले षट्खंडके समस्त राजेंद्र आकर हमारी सेवा करते थे। अब तो केवल अयोध्याके आसपासके राजा ही मेरे आधीन हैं। क्या इसे महत्वका ऐश्वर्य कहते हैं? धिक्कार हो! जिस पिताने मुझे जन्म दिया है। उसकी आज्ञाका उल्लंघन न हो इस विचारसे मैने भूभारको धारण किया है। यह राज्यपद उत्तम है, इसमें सुख है, इस भावनासे मैने ग्रहण नहीं किया, अब इसे किसीको प्रदान कर देता हूं। घासकी बडे भारी राशिके समान सोनेकी राशि मौजूद है। घासके बडे पर्वतके समान ही वस्त्राभूषणोंका समूह है। परंतु उन सबको अर्ककीर्तिने घासके समान ही समझा।

सुपारीके पर्वतके समान आभरणोंका समूह है। समुद्रतटकी रेतीके समान धान्यराशि है। परंतु इन सबकी कीमत अब अर्ककीर्तिके हृदयमें एक सूखी सुपारीके अर्धभागके बराबर भी नहीं है।

सुवर्णनिर्मित महल, रत्ननिर्मित गोपुर, नाटकशाला आदि तो अब उसे स्मशानभूमि और कारावासके समान मालुम होरहे हैं।

सौंदर्ययुक्त अनेक स्त्रियां तो अब उसे कुरूपी स्त्रीवेषको धारण करने वाले पात्रोंके समान मालूम होने लगे। राजपट्ट तो अब उसे एक बंदी-खानेके पहरेके समान मालूम होरहा है।

भरतेश्वरके समय सब कुछ महाभाग्यसे युक्त था, परन्तु उसके मुक्ति जानेपर विक्रियासे निर्मित सभी वैभव अदृश्य हुए। हाथी, घोडा, रथ आदि सभी उस समय उसे इंद्रजालके समान मालुए। वैराग्यका तीव्र उदय हुआ। अर्ककीर्तिके पुत्रोंमें बहुतसे वयस्क थे, उनको राज्य-प्रदान करनेका विचार किया तो उन्होंने साफ निषेध करते हुए प्रतिज्ञा की कि हम तो इस राज्यमें नहीं रहेंगे। आदिराजके प्रौढपुत्रोंको पट्ट बांधनेका विचार किया तो उन्होंने भी मंजूर नहीं किया एवं सभी दीक्षाके लिए सन्नद्ध हुए। जब प्रौढ पुत्रोंने राज्यपदको स्वीकार नहीं किया तो छह वर्षके दो बालकोंको अधिराज और युवराज पदमें अधिष्ठित किया।

मनुराज नामक अपने कुमारको अधिराजका पट्ट और भोगराज नामक आदिराजके पुत्रको युवराज पट्ट बांधकर उनके पालन—पोषणके लिए अन्य आप्तजनोंको नियुक्त किया।

इन दोनों कुमारोंके मामा शुभराज, मतिराज नामक सरदारोंको अतिविनयसे समझाकर उनके हाथमें दोनों पुत्रोंको सोंप दिया। बाकीके सभी बांधव मित्र दीक्षाके लिए सन्नद्ध हुए। परंतु सन्मतिनामक मंत्रीको आग्रहसे ठहराया कि तुम ये पुत्र बडे हों तबतक यहां ठहरना, बादमें दीक्षा लेना। साथमें उसका यथेष्ट सत्कार भी किया गया। देश, महल, हाथी, घोडा, प्रजा परिवार, खजाना, निधि आदि जो कुछ भी है उसे आप लोग देखते रहना, और सुखसे जीना इस प्रकार निराशासे उसने उनको कह दिया।

आदिराजसे तपोवनको चलनेके लिए कहनेसे पहिले ही वह उठ खडा हुआ। और दोनों दीक्षाके लिए निकले। सेवकोंने चमर ढोलते हुए दो सुंदर विमानको लाकर सामने रख दिया तो एक विमान पर अर्ककीर्ति चढ गया। दूसरे विमानपर आदिराजको चढनेके लिए कहा। आदिराजने उसको निषेध किया कि मैं सामान्य रूपसे ही आवूंगा। वहांपर उसने कहा कि वह राजनीतिको छोडना नहीं चाहता है। चमर, विमान आदि तो पट्टाभिषिक्त राजाके लिए चाहिए, युवराजके लिए क्या जरूरत है? अविवेकके आचरणको कौन कर सकते हैं। इसे मैं नहीं चाहता हूं।

अर्ककीर्तिने अग्रह किया कि भाई! अब तो अपने मोक्षपाथिक हैं, इसे मोक्षयान समझकर बैठनेमें हर्ज नहीं, तथापि वह तैयार नहीं हुआ कहने लगा कि दीक्षा लेनेतक राज्यांगके संरक्षणकी आवश्यकता है।

बडे भाईके उस विमान और चमरके साथ चलनेपर आदिराजने भी एक पलकीपर चढकर वहांसे प्रयाण किया। महलमें उन छोटे बच्चोंको पालनेवाली दो दासियां रहगई हैं। बाकी सभी स्त्रियां उनके योग्य सुवर्ण पलकियोंपर चढकर इनके पीछेसे आ रही हैं। सारा देश ही निर्वेगरसमें मग्न हुआ है, इसलिए वहांपर रोनेवाले रोकनेवाले वगैरे कोई नहीं है। अतएव विशेष देरी न करके ही राजेंद्र अर्ककीर्ति आगे बढे। नगरसे बाहर पहुंचकर भरतेश्वरने जिस जंगलमें दीक्षा ली, थी उसी जंगलमें प्रविष्ट हुए। और वहांपर एक चंदनवृक्षके समीप अपने विमानसे उतरे। सबलोग जयजयकार कर रहे थे। पलकीसे उतरे हुए आदिराजको भी बुलाकर अपने पास ही खडा करलिया। बाकी सभी जरा दूर सरककर खडे हुए और स्त्रियां भी कुछ दूर अलग खडी होगई।

गुरु हंसनाथको ही अपना गुरु समझकर दूसरोंकी अपेक्षा न करते हुए अपने आप ही दीक्षित होनेके लिए सन्नद्ध हुए। वे भरतेश्वरके ही तो पुत्र हैं।

पिताको दीक्षाके समय जिस प्रकार परदा धरा था उसी प्रकार इनको भी परदा धरा गया। पिताने जिस प्रकार दीक्षा ली उसी प्रकार इन्होने भी दीक्षा ली, इतना ही कहना पर्याप्त है। भरतेशके समान ही

दीक्षा ली। परंतु भरतेशके समान अंतर्मुहूर्त समयमें कर्मोंका नाश उन्होंने नहीं किया। कुछ समय अधिक लगा।

निर्मल शिलातलपर दोनों भाई कमलासनमें बैठ गये। और समऋजुदेहसे विराजमान होकर आंख मींचली एवं चंचलमनको स्थिर किया।

आंखमीचने मात्रसे भाई भाईका संबंध भूल गये। अब वहांपर कोई भ्रातृमोह नहीं है। मनकी स्थिरता आत्मामें होते ही उन्हें शरीर भिन्न रूपसे अनुभवमें आने लगा।

इतरपदार्थका मोह तो पहिलेसे नष्ट. हुआ था। सहोदरस्नेह भी अब दूर हो गया है। इसलिए अब उन योगियोंको परमात्मकलाकी वृद्धिके साथ कर्मका निर्जरा हो रही है।

लोकमें स्नेह (तेल) का स्पर्श होनेपर अग्नि अधिक प्रज्वलित होती है। परन्तु ध्यानाग्नि तो स्नेह [मोह] के संसर्गसे बुझ जाती है। स्नेह जितना दूर हो जाय उतना ही यह ध्यान बढता है, सचमुचमें यह विचित्र है।

बाहिरके लोग समझते थे कि यह बडा भाई है, बडा तपस्वी है, यह छोटा भाई है, छोटा तपस्वी है। परन्तु अंदर न छोटा है और न बडा है। दोनोंके हृदयमें चिदानंदमय प्रकाश बराबरीसे बढ रहा है।

लोकमें वय, शरीर, वंश आदिके द्वारा मनुष्योंमें भेद देखनेमें आता है, परन्तु परमार्थसे आत्माको देखनेपर वहां कुछ भी भेद नहीं है।

हाय! उनके ध्याननिष्ठुरताका क्या वर्णन करना। कपासकी राशिपर पडी हुई चिनगारीके समान कर्मकी राशिको वह ध्यानाग्नि लग गई। वर्णन करते हुए विलंब क्यों करना चाहिये। उन दोनों तपोधनोंने अपने विशुद्ध ध्यानबलके द्वारा घातियाकर्मको एक साथ नष्ट किया। आश्चर्य है, ढाई घटिकामें कर्मोंको नष्ट करनेका महत्व पिताजीके लिए रहने दो, शायद इसीलिए कुछ अधिक समय लेकर अर्थात् साडे पांच घटिकामें उन्होंने घातिया कर्मोंको नष्ट किया।

पिताने दीक्षा लेते ही श्रेण्यारोहण किया। परन्तु पुत्रोंने दीक्षा लेकर चार घटिका तक आत्माराममें विश्रांति लेकर नंतर श्रेण्यारोहण किया। श्रेणिमें तो अंतर्मुहूर्त ही लगा।

कर्मोंको उन्होंने किस क्रमसे नष्ट किया यह भुजबलियोगीके श्रेण्यारोहणके समय गिनाया है, उसी प्रकार समझ लेना चाहिए। कर्मोंके नाश होनेपर भरत बाहुबलीके समान ही गुणोंको प्राप्त किया।

कर्कश कर्मोंके दूर होनेपर अर्ककीर्ति और आदिराज कोटिचंद्रार्क प्रकाशको पाकर इस भूतलसे ५००० धनुषप्रमाण आकाश प्रदेशमें जा विराजे। चारों ओरसे सुर नरोरगदेव जयजयकार करते हुए आये। विशेष क्या? दोनों केवलियोंको अलग २ गंधकुटीका निर्माण किया गया। कमलको स्पर्श न करते हुए कमलासनपर दोनों परमात्मा विराजमान हैं। सर्व भव्य जनोंने आकर पूजा की, स्तोत्र किया। वहां महोत्सव हुआ।

देवेंद्रके प्रश्न पूछनेपर भरत सर्वज्ञने जिस प्रकार उपदेश दिया उसी प्रकार इन केवलियोंने भी धर्मवर्षा की। भरतजिनने जिस प्रकार स्त्रियोंको दीक्षा दी थी, उसी प्रकार इन्होंने भी स्त्रियोंको दीक्षा दी।

उद्दंडमति, अष्टचंद्रराजा, अयोध्यांक एवं कुछ अन्य राजावोंने भी दीक्षा ली। ज्ञानकल्याणकी पूजा कर देवेंद्र स्वर्गलोकको चला गया। परन्तु प्रतिनित्य अनेक भव्यगण, तपोधन आनंदसे वहांपर आते थे एवं केवलियोंका दर्शन लेते थे। श्री कुंतलावती व कुसुमाजी साध्वीको बहुत ही हर्ष हो रहा। अभी उनके हृदयमें पुत्रभावनाका अंश विद्यमान है। इन दोनोंके हृदयमें मातृमोह नहीं है। परंतु मातावोंके हृदयमें अभीतक पुत्रभावना विद्यमान है। यह तो कर्मकी विचित्रता है। वह शरीरके अस्तित्वमें बराबर रहता ही है।

पाठकोंको पहिलेसे ज्ञात है कि बाहुबलिके तीनपुत्र और अनंतसेनेंद्र आदि राजा पहिलेसे ही दीक्षा लेकर चले गये हैं। अर्ककीर्ति और आदिराजने स्वयं ही दीक्षा ली। परंतु उन सबने गंधकुटी पहुंचकर जिनगुरु साक्षीपूर्वक दीक्षा ली है। परंतु ये तो पिताके तत्वोपदेशको बार २ सुनकर पिताके समान ही आत्माको देखते हुए स्वयं दीक्षित हुए। अन्य लोगोंको वह सामर्थ्य क्योंकर प्राप्त होसकता है!

अपने अंतरंगको देखकर जो आत्मानुभव करते हैं, उनको आत्मा ही गुरु है। परंतु जिनको आत्मानुभव नहीं है, उनको दीक्षित होनेके लिए अन्य गुरुकी आवश्यकता हैं। यही निश्चय व्यवहारकला है। स्याद्वादका रहस्य है।

किसी वस्तुके खोनेपर यदि स्वयंको नहीं मिले तो दूसरे अपने स्नेही बंधुओंको साथ लेकर ढूंडना उचित है। यदि वह पदार्थ स्वयंको ही मिल गया तो दूसरोंकी सहायता क्या जरूरत है।

इन सहोदरोंके दीक्षित होनेके बाद कनकराज, कांतराज, आदि सालोने भी दीक्षा ली, इसी प्रकार उनके माता पिता, भाई आदि सभी दीक्षित हुए। एवं सर्व बहिनोंनें भी दीक्षा ली। मावाजी रत्नाजी, कनकावली आदि बहिनोंनें भी अपने पतियोंके साथ ही वैराग्यभरसे दीक्षा ली।

भरतेश्वरके रहनेपर तो यह भरतभूमि संपत्ति वैभवसे भरित थी। परंतु उसके चले जानेपर वैराग्य समुद्र उमड पडा। एवं सर्वत्र व्याप्त होगया।

मोहनीय कर्मका जब सर्वथा अभाव हुआ तभी ममकारका अभाव हुआ। अब तो ये केवली परमनिस्पृह हैं। इसलिए दोनों केवलियोंकी गंधकुटी भिन्न २ प्रदेशके प्राणियोंके पुण्यानुसार भिन्न २ दिशामें चली गई। सब लोग जयजयकार कररहे थे।

पिताने घातियाकर्मोंको नष्ट कर दूसरे ही दिन मोक्षको प्राप्त किया। परंतु इनको घातिया कर्मोंको नष्ट करनेके बाद कुछ समय विहार करना पडा। पिताके समान घातिया कर्मोंको तो शीघ्र नष्ट किया। परंतु अघातिया कर्मोंको दूर करनेके लिए कुछ समय अधिक लगा।

पिताने अपने आयुष्यके अवसानको जानकर दीक्षा ली थी। परंतु इन्होने आयुष्यका बहुतसा भाग शेष रहनेपर भी दीक्षा ली है। इसलिए आयुष्यको व्यतीत करनेके लिए गंधकुटीमें रहकर कुछ समय विहार करना पडा, जिससे जगत्को परमानंद प्राप्त हुआ।

अर्ककीर्ति और आदिराजकेवलीका विहार कलिंग, काश्मीर, लाट, कर्णाट, पांचाल, सौराष्ट्र, नेपाल, मालव, हुरमुंजि, काशि, हम्मीर, बंगाल, बर्बर, सिंधु, पल्लव, मगध, और तुर्कस्थान आदि सभी देशोंमें हुआ एवं सर्वत्र उपदेशामृतको पान कराकर सबको संतुष्ट किया।

जहां तहां भव्योंने उपस्थित होकर केवलियोंकी अर्चा की पूजा की, वंदना की, और आत्महितको पूछनेपर दिव्यध्वनिसे आत्मसिद्धिके मार्गको निरूपणकर उनका उद्धार किया।

विशेष क्या वर्णन किया जाय? बहुत समयतक धर्मवर्षा करते हुए दोनों केवलियोंने विहार किया एवं लोकमें धर्मपद्धतिका प्रकाश किया। अब आयुष्यका अंत समीप आया तो उन्होंने समाधियोगको धारण किया।

अर्ककीर्ति केवलीने रौप्यपर्वतसे अघातिया कर्मोंको नष्ट कर मुक्ति प्राप्त किया। देवेंद्र आया व निर्वाणपूजा कर चला गया। इसी प्रकार कुछ दिनके बाद आदिकेवलीने भी अघातिया कर्मोंको नष्ट कर उसी पर्वतसे मुक्तिको प्राप्त किया। अंतिममंगलविधि तो पूर्वोक्त प्रकारसे ही की गई। वृषभनाथ हंसनाथ आदि भरतपुत्रों एवं बाहुबलिके पुत्रोंने भी जहां तहां गिरिवननदीतटोंमे तपश्चर्या कर मुक्तिको प्राप्त किया।

अर्जिकायोंने घोर तपश्चर्याकर स्त्रीपर्यायको नष्ट करते हुए पुरुष होकर स्वर्गमें जन्म लिया।

आदिप्रभुके निर्वाणके बाद चक्रवर्तिकी माताओंको स्वर्गलोककी प्राप्ति हुई। भरतेशके मोक्ष जानेके बाद उनकी रानियोंको भी स्वर्गलोकमें पुरुषत्वकी प्राप्ति हुई। आदिनाथके नंतर ही कच्छ महाकच्छ योगियोंको मोक्षकी प्राप्ति हुई, और भरतेशके बाद बाहुबलि नमि विनमि व वृषभसेन को मुक्तिकी प्राप्ति हुई। प्रणयचंद्र, गुणवसंतक मंत्रीने आदिचक्रेशकी अनुमतिसे आदिनाथसे दीक्षा ली, एवं तपश्चर्याकर मोक्षको चले गये। दक्षिण नागर आदि भरतेशके आठ मित्र, मंत्री व सेनापति भी दीक्षित होकर मुक्ति चले गये। वे भरतेशको छोडकर अन्य स्थानमें कैसे रह सकते हैं!

अब किस किसका नाम लें? मरीचिकुमारको छोडकर बाकीके सर्व भरतेश्वरके पुत्र व भाई सबके सब मोक्षधाममें पहुंचे।

सम्राट्के जामाताओमें कुछ तो स्वर्गमें और कुछ तो मोक्षमें चले गये, और पुत्रियोंने विशिष्ट तपश्चर्याकर स्वर्गलोकमें पुरुषत्वको प्राप्त किया।

विमलराज, कमलराज और भानुराजने मुक्तिको प्राप्त किया। शेष बांधवोंमें किसीने स्वर्ग और किसीने मोक्षको क्रमसे प्राप्त किया।

देवकुलको दीक्षा नहीं है, इसलिए गंगादेव और सिंधुदेव अपनी देवियोंके साथ घरमें ही रहे। नहीं तो वे भी घरमें नहीं रह सकते थे। इसी प्रकार मागधामरादि व्यंतरेंद्र भी विवश होकर महलमें ही रहे। वे दीक्षित नहीं हो सकते थे, नहीं तो उस गुणोत्तम आदिचक्रेशके वियोग सहन करते हुए इस भूभागमें कौन रह सकते हैं?

वह भरतेश्वर गुरुहंसनाथपर मुग्ध होकर चेतोरंगमें उसे देखते थे तो सागरांत पृथ्वीके प्रजाजन उनकी वृत्तिपर प्रसन्न थे। आत्माराम-पर कौन मुग्ध नहीं होंगे?

उसे जाने दो। वायुकी सामर्थ्यसे वृद्धत्वको प्राप्त न करते हुए सदा जवानीमें रहना क्या आश्चर्यकी बात नहीं है? ९६ हजार रानियोंमें यत्किंचित् भी मत्सर उत्पन्न न होने देते हुए रहनेवाले विवेकीपर कौन मुग्ध नहीं होंगे? परिग्रहोंको त्याग कर सभी मनःशुद्धिको प्राप्त करते हैं। परंतु परिग्रहोंको ग्रहण करते हुए आत्मविशुद्धि करनेवाले कौन हैं? संपत्तिके होनेपर नीचवृत्तिसे चलनेवाले लोकमें बहुत हैं, भरतेश्वरके समान सकलैश्वर्यसे संपन्न होकर गंभीरतासे चलनेवाले कौन हैं? दूरद-र्शितासे विषयको जाननेका प्रकार, बुद्धिमत्तासे बोलनेका क्रम, प्रजा परिवारके पालनका प्रबंध, आजके सुख और कलकी आत्मसिद्धिकी ओर दृष्टि, यह सब गुण भरतेश्वरमें भरे हुए थे। मित्रोंका विनय, मंत्रियोंका परामर्श, सेनापति, मागधामरादिका स्नेह, सत्कवि और विद्वानोंका समादर लोकमें चक्रेशके समान और किसे प्राप्त होसकते हैं?

माता पितावोंकी भक्ति, बहिनोंकी प्रीति, सालोंकी सरसता, पुत्र पुत्रियोंका प्रेम और सबसे अधिक स्त्रियोंका संतोष भरतेश्वरके समान किसे प्राप्त हो सकते हैं। राज्यपालनके समय कोई चिंता नहीं, तपश्च-र्याके समय कोई कष्ट नहीं। संतोषमें ही थे, और संतोषके साथ ही मुक्ति गये। धन्य है।

मुक्तात्मा सभी सदृश हैं। परंतु संसारमें अतुल भोगके बीच रहने-पर भी आत्मशक्तिको जानकर क्षणमात्रमें मुक्तिको प्राप्त करनेवाली

युक्तिके प्रति मेरा हृदय आकृष्ट हुआ। पिताको दो रानियोंके रहनेपर भी हजार वर्ष तपश्चर्या कर मुक्ति जाना पडा, कुछ कम लाख रानियोंके होते हुए भी भरतेश्वरने क्षणमात्रमें मोक्ष प्राप्त किया। यह आश्चर्य है। इसमें छिपानेकी बात क्या है? प्रथमानुयोगमें प्रसिद्ध त्रेसठशलाका पुरुषोमें इस पुरुषोत्तम–भरतेश्वरको सर्वश्रेष्ठ समझकर उसकी प्रशंसा संतोषके साथ मैने की।

भोगोंके बीचमें रहते हुए भी हंसनाथके योगमें मग्न होकर क्षण-मात्रमें मुक्तिको प्राप्त होनेवाले भरतभास्करका यदि वर्णन नहीं करें तो रत्नाकरसिद्ध आत्मसुखी कैसे हो सकता है, वह तो गंवार कहलाने योग्य है।

श्रृंगारके वशीभूत होकर भोगकथाओंको सुनते हुए भव्यगण न बिगडे इस हेतुसे अंगसुखी और मोक्षसुखी भरतेश्वरका कथन श्रृंगारके साथ वर्णन किया।

मैने काव्यमें दुष्ट, दुराचारी व नीच सतियोंका वर्णन नहीं किया है। सातिशय पुण्यशील भरतेश्वर व उनकी स्त्रियोंका वर्णन किया है। जो इसे स्मरण करेंगे उनको पुण्यका बंध होगा।

इस कथानकको मैने जब वर्णन किया तब लोकमें बहुतसे लोगोंको हर्ष हुआ। परंतु ८–४ गुंडोंको बहुत दुःख भी हुआ। मैने कोई लाभ व कीर्तिकी लोलुंपतासे इस कृतिका निर्माण नहीं किया। कीर्ति तो अपने आप आजाती है। परंतु कुछ धूर्त कीर्तिकी अपेक्षा करते हुए उसकी प्रतीक्षा करते हैं। कीर्तिकी कामनासे वे कविता करने लगजाते हैं। परंतु वह आगे नहीं बढती है, और न कानको ही शोभती है। फिर कुछ भी न बने तो "जाने दो, इस नवीन कविताको" कहकर प्राचीन शास्त्रोंमें गडबड करते हैं। वे लोग एक महीनेमें जो शास्त्रका अध्ययन करते हैं वे मुझे एक दिनमें अवगत होते हैं। तथापि उन बाह्यविषयोंके प्रतिपादनसे क्या प्रयोजन है, यह समझकर मैं अंतरंगमें मग्न रहा। बाह्य वाक्प्रपंचोंको छोडकर मैं रहता था। परंतु खापीकर मस्त भट्टारकोंके समान वे अनेक मारोंसे युक्त होनेपर भी भवसेन गुरुके समान बोलते थे।

शरीरमें स्थित आत्माको नग्नकर उसका मैं निरीक्षण करता था। परंतु वे शरीरको नग्नकर आत्माको अंधकारमें रखते हुए दुनियामें फिर

रहे थे। किसी भी प्रयत्नसे भी वे मेरा कुछ नहीं बिगाड सके और उल्टा उनकी ही निंदा लोकमें होने लगी तो उस दुःखसे वे अज्ञानी मेरे काव्यकी निंदा करने लगे। सूर्यको तिरस्कृत करनेवाले उल्लूके समान तर्क पुराण आदिके बहाने मेरी कृतिकी निंदा करने लगे। मैं तो उनकी परवाह न कर मौनसे ही रहा, परन्तु विद्वान् व राजावोंने ही उनको दबाया। ध्यानमें जब चित्त नहीं लगा तो मेरे आत्मलीलाकी वृद्धिके लिए मैंने काव्यकी रचना की, किसीके साथ ईर्षा व स्पर्धाके वशीभूत होकर ग्रंथका निर्माण नहीं किया। इसलिए मौनसे ही रहा।

हंसनाथकी शक्तिसे विरचित काव्यको लोकादर मिलनेमें संशय क्या है। मेरी सूचनाके पहिले ही विद्वान्, मुनिगण व राजाधिराज इसे चाहकर उठाकर ले गये।

कवि—परिचय

मुझे लोकमें क्षत्रिय वंशज, कर्नाटक क्षेत्रका अण्ण कहते हैं, परन्तु यह सब मेरे विशेषण नहीं है, इनको मैं अपने शरीरका विशेषण समझता हूं। मैं सिद्धपदके प्रति मुग्ध हूं, इसलिए रत्नाकरसिद्ध कहनेमें कभी २ मुझे प्रसन्नता होती है।

शुद्धनिश्चय विचारसे निरंजनसिद्ध ही मैं कहलाता हूं। जन्म, मरण रोग शोकादिकसे युक्त माता—पिताके परिचयसे अपना परिचय लोग कराते हैं। परंतु मैं तो श्रीमंदरस्वामीको अपने पिता कहनेमें आनंद मानता हूं। मेरे जीवनमें एक रहस्य है, सिद्धांतके तत्वको समझकर, लोकमें विशेष गलबला न करते हुए उसका मैं आचरण करता हूं। चरित्रमें प्रतिपादित रहस्य कोई विशेष नहीं है। आत्मरहस्य और भी अधिक है। उसे कोई सीमा नहीं है।

मेरे दीक्षा गुरु चारुकीर्ति योगी हैं, मोक्षाग्रगुरु हंसनाथ है। यह अक्षुण्णभव्य रत्नाकरसिद्ध व्यवहार निश्चयमें अतिदक्ष है। देशिगणाग्रणि चारुकीर्त्याचार्यने जब दीक्षा दी तो श्री गुरुहंसनाथने उसमें प्रकाश देकर मेरी रक्षा की। गुरु हंसनाथकी कृपासे सिद्धांतके सारको समझकर आत्म

लीलाके लिए भरतेश–वैभव काव्यकी रचना की, आत्मसुखकी अपेक्षा करनेवाले उसे अध्ययन करें।

जिनको चाहिये वे सुने, जिन्हें नहीं चाहिये वे न सुनें, उपेक्षा करें। मुझे न उसमें व्याकुल है। और न संतोष हैं। मैं तो निराकांक्षी हूं।

भोगविजयको आदि लेकर दिग्विजय, योग विजय, मोक्षविजयका वर्णन किया है। और यह पांचवां अर्ककीर्ति विजय है। यहांपर पंच-कल्याणकी समाप्ति होती है। पंचविजयोंको भक्तिसे अध्ययनकर जो प्रभावना करते हैं वे नियमसे पंचकल्याणको पाकर मुक्ति जाते हैं। यह निश्चित सिद्धांत है।

भरतेशवैभव अनुपम है, भरतेशके समान ही भरतेशके पुत्र भी राज्य वैभवको भोगकर मोक्षसाम्राज्यके अधिपति बने। यह भरतेशके सातिशय पुण्यका फल है।

इस जिनकथाको जो कोई भी सुनते हैं, उनके पापबीजका नाश होता है। लोकमें उनका तेज बढता है, पुण्यकी वृद्धि होती है। इतना ही नहीं, आगे जाकर वे नियमसे अपराजितेश्वरका दर्शन करेंगे।

प्रेमसे इस ग्रंथका जो स्वाध्याय करते हैं, गाते हैं, सुनते हैं एवं सुनकर आनंदित होते हैं वे नियमसे देवलोकमें जन्म लेकर कल श्रीमंदर स्वामीका दर्शन करेंगे।

वृषभमासमें प्रारंभ होकर कुंभ मासमें इस कृतिकी पूर्ति हुई। इसलिए हे वृषभांक, हंसनाथ! चिदंबर पुरुष! परमात्मन्! तुम्हारी जय हो।

हे सिद्धात्मन्! आनंद-नाट्यावलोकमें दक्ष हो। ब्रह्मानंद सिद्ध हो! समृद्ध हो! ध्यानैकगम्य हो! हे मोक्षसंधान! निरंजनसिद्ध! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये, यही मेरी प्रार्थना है।

॥ इति सर्वमोक्षसंधि ॥

अर्ककीर्तिविजय नामक पंचकल्याणं

॥ समाप्तम् ॥

(इति भद्रं भूयात्)